पंजाब लोक-साहित्य परिषद् प्रकाशन

मैं धरती पंजाब की




देवेन्द्र सत्यार्थी

पंजाब लोक–साहित्य परिषद् प्रकाशन

मैं धरती पंजाब की



भारती-भवन

उज्जैन

सम्पादकः—'विक्रम' मालवा

२१-१२-५४

प्रिय नरेन्द्र जी,

पत्र, और पुस्तक के अंश मिले, मैं भेजे हुए १७ पृष्ठों से लेकर ६६ पृष्ठ तक संपूर्ण पढ़ गया हूँ। ये बहुत सुन्दर-अध्ययन पूर्ण, और महत्त्व के हैं, इस रचना से तुम्हारी कीर्ति बढ़ेगी, और पंजाबी-साहित्य में इसका सर्वथा स्वागत होगा, हिन्दी भाषा में पंजाबी पर सार-गर्भित कृति कही जाएगी, मालव-गणों के विषय में लिखा हुआ तुम्हारी रचना का अंश इसमें है। उसमें मतभेद की गुंजाइश रह सकती है। इस मतभेद के बावजूद भी इस कृति के लिए मैं अभिनन्दन ही करूँगा।

आशा है प्रसन्न-स्वस्थ होगे।

तुम्हारा

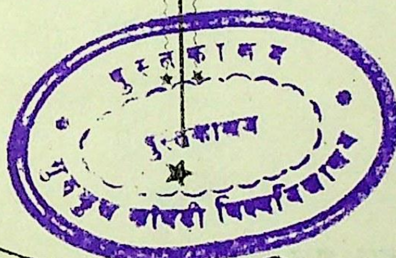
--सूर्य नारायण व्यास




ਸ੍ਰੀ ਵਕਤੀ ਪੰਜਸਖੀ



मैं धरती पंजाब की







पञ्जाब लोक—साहित्य परिषद् प्रकाशन
खन्ना, पञ्जाब

मूल्य:

तीन रुपये आठ आना

प्रकाशक:

क्रान्ति प्रकाशन, खन्ना (पञ्जाब)

मुख्य वितरक:

राजकमल प्रकाशन लिमि०

फ़ैज़ बाज़ार, दिल्ली

मुद्रक:

श्री० रणवीर पुरी

क्रान्ति प्रेस, खन्ना, (पञ्जाब)

प्रथम संस्करण [illegible]



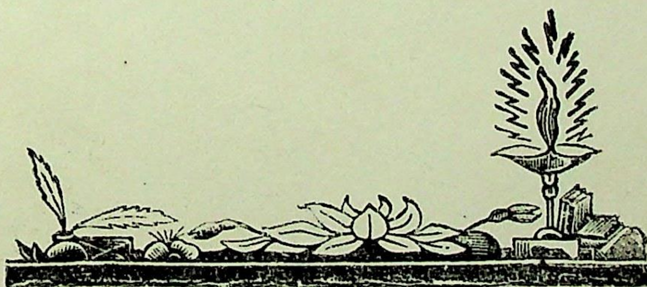
लोक-माता शारदा के पुनीत

चरणों में,

सादर

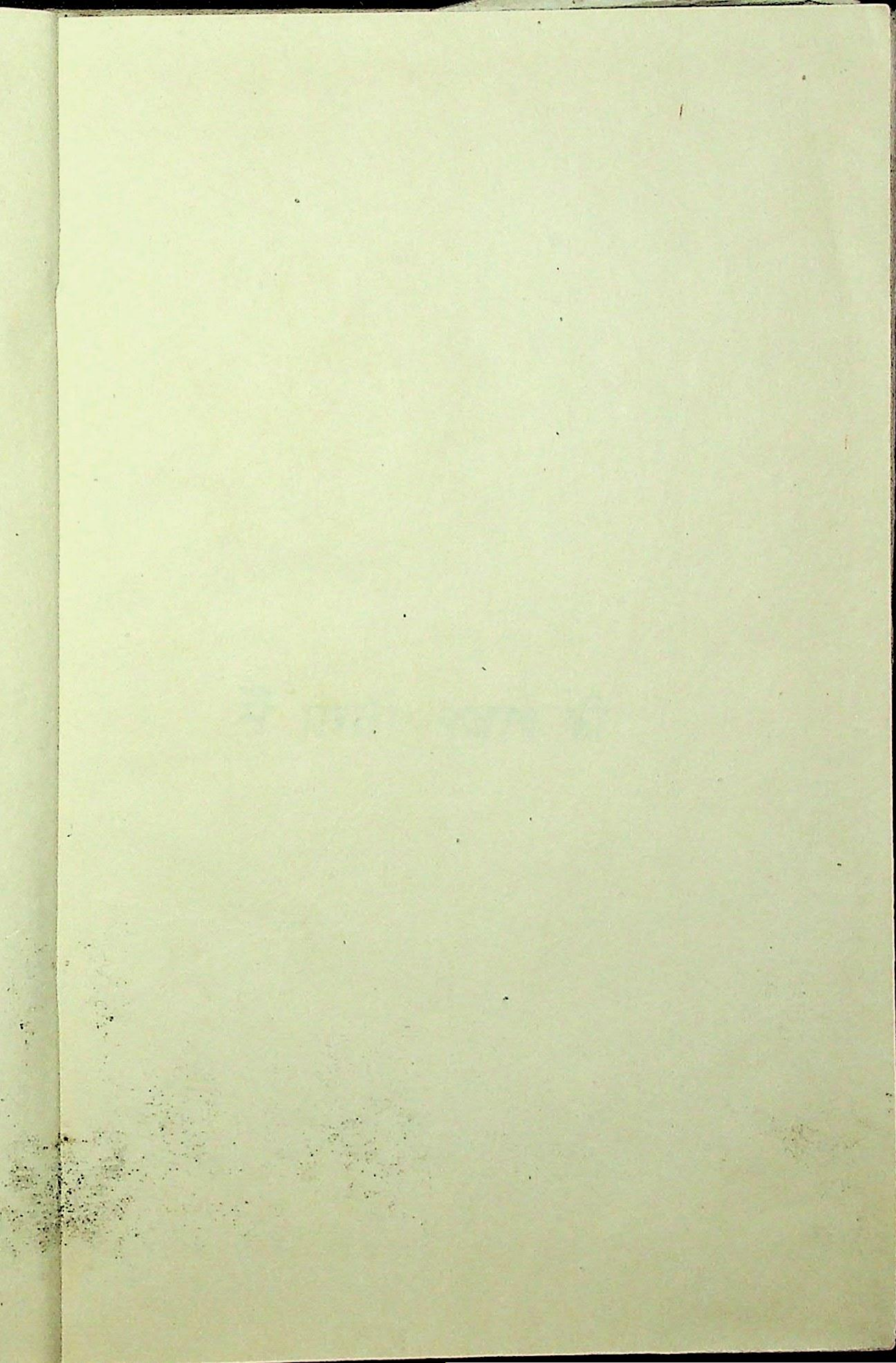
सानुराग

सर्मापत











मैं धरती पंजाब की



प्रकाशकीय

पञ्जाब जैसे अहिन्दी प्रान्त में हिन्दी की पुस्तक का प्रकाशन एक दुःस्साहस ही तो है, पर बहुत देखने पर भी कोई ऐसी हिन्दी पुस्तक नहीं दिखी थी जिसके द्वारा पञ्जाबी का विस्तृत परिचय मिल सके।

श्री नरेन्द्र जी धीर ने अपने जीवन के पाँच वर्ष लगाकर पञ्जाबी में जो शोध-कार्य किया है—यह पुस्तक उसकी भूमिका मात्र है।

विश्वास है साहित्य-जिज्ञासुओं की मानसिक-भूख को यह पुस्तक अवश्य शांत करेगी।

रणबीर पुरी

Folk-Lore Survey of Madhya-Bharat

SHYAM PARMAR
M. A., LT.,

CAMP...SHAJAPUR
3-12-54

'मैं धरती पंजाब की' (श्री नरेन्द्र धीर द्वारा लिखित) अध्ययन पूर्ण एवं पठनीय ग्रन्थ है। श्री धीर ने संक्षेप में सम्पूर्ण पंजाब के इतिहास को छूते हुए उसके उपलब्ध साहित्य की सभी वस्तुओं को मनोयोग से टटोला है। भाषागत वैशिष्ठय की चर्चा करते हुए पञ्जाबी और उसकी उपबोलियों पर महत्वपूर्ण सामग्री संकलित की है। लेखक के मालव एवं मालव जनपद सम्बन्धी मन्तव्य भाषा-शास्त्रियों के लिए नये प्रश्न उपस्थित करते हैं। भाषा के विकास को स्पष्ट करने के लिए यथा-स्थान मौलिक तर्क देते हुए लेखक ने भाषा और उपभाषाओं का एक मान-चित्र भी प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से हिन्दी के क्षेत्र में पञ्जाब जनपद की ओर से यह एक उत्तम ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ है। हिन्दी के जनपदीय आन्दोलन में यह ग्रन्थ अपना उत्तम योग प्रदान करेगा। लेखक के प्रयत्न की सराहना करते हुए मैं बधाई देता हूँ।

—श्याम परमार

अनुवादित

'अमृता' का पत्र

"मैं धरती पंजाब की" में सचमुच यूँ लगता है मानो पंजाब की धरती अपने मुँह से ही अपनी गौरव भरी तथा रोमाञ्चिक कहानी सुना रही हो, अपने लेखक की जुबानी उसने अपनी बहुत अपनत्वभरी तथा घनिष्टता पूर्ण बातें अपने सुनने वालों से की हैं—अपने क्षेत्र-विस्तार की बातें—अपनी उप-भाषाओं की बातें—तथा अपने लोक-साहित्य की अमीरी की बातें.........

बात-बात से धरती की महक आती है, और इस तरह आपने अपने पड़ोसी प्रान्तों के साथ जो पंजाब की जान-पहिचान करवाई है वह बहुत स्वाभाविक तथा असल है।

आप धन्यवाद के पात्र हैं। दो सौ पृष्ठों की छोटी सी पुस्तक में आप ने बड़ी सफलता के साथ पंजाब के व्यक्तित्व, सभ्यता तथा संस्कृति को शीशे के समान स्पष्ट प्रतिबिम्बित किया है!..

--अमृता प्रीतम

(पंजाबी लोक-साहित्य की प्रसिद्ध अन्वेषिका)

एक शुभेच्छा

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः

हिंदी जनपदीय परिषद्

१५, विंडसर प्लेस
नई दिल्ली १

उपकुलपति निवास
हिन्दू विश्व-विद्यालय, काशी

प्रिय धीर जी,

"मैं धरती पंजाब की" के कुछ पृष्ठ पढ़ने का आपने जो सुअवसर प्रदान किया उसके लिये अनुग्रहीत हूँ। जनपदीय भाषाओं और क्षेत्रों के अध्ययन में इस पुस्तक का अपना स्थान रहेगा। एक प्रकार से यह अपने ढंग का अनूठा काम है क्योंकि यह एक पुस्तक है जिसमें एक इकाई की भाषा, साहित्य, इतिहास, कला सब की झांकी इकट्ठी मिल जाती है। पंजाब तो भारतीय साहित्य के लिए सबसे ऊर्वरा भूमि रही है। प्राचीन काल में ही उदोची दिशा के लोगों की बोली सारे देश के लिए आदर्श रही हो सो बात नहीं वर्तमान हिन्दी के रूप निर्माण तथा प्रचार में सधुक्कड़ी भाषा के प्रयोग करने वाले पंजाबी साधु सतों का जो अतुलनीय योग मिला है उसकी तो आज खोज संवार भी प्रारम्भ नहीं हुई है। पंजाब के बारे में हिन्दी में इस प्रकार की सुन्दर पुस्तक निकालने के लिए आप धन्यवाद के पात्र हैं। पंजाब लोक–साहित्य परिषद् की स्थापना का यह मूर्तिमान परिणाम इस बात का साक्षी है कि जनपद आंदोलन किस प्रकार धीरे २ सारे जनपदों को जागृत कर उनमें पारस्परिक एकता का दर्शन करा रहा है और देश की एकता को लोक-मानस के दृढ़ आधार पर संगठित कर रहा है।

आपका

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

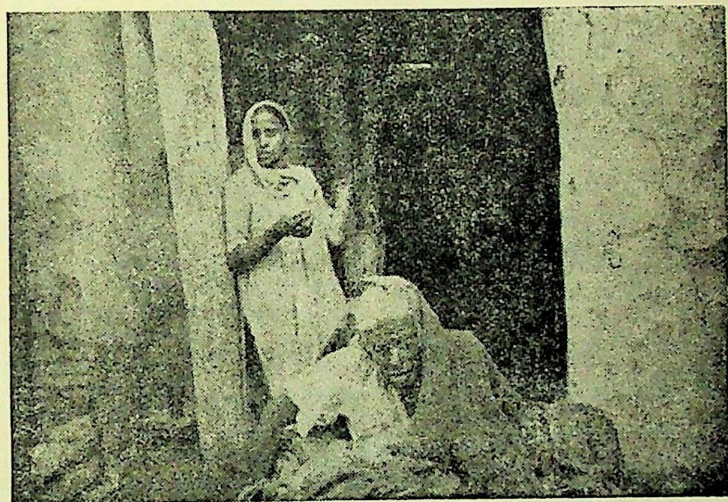
मन्त्री

दो शब्द

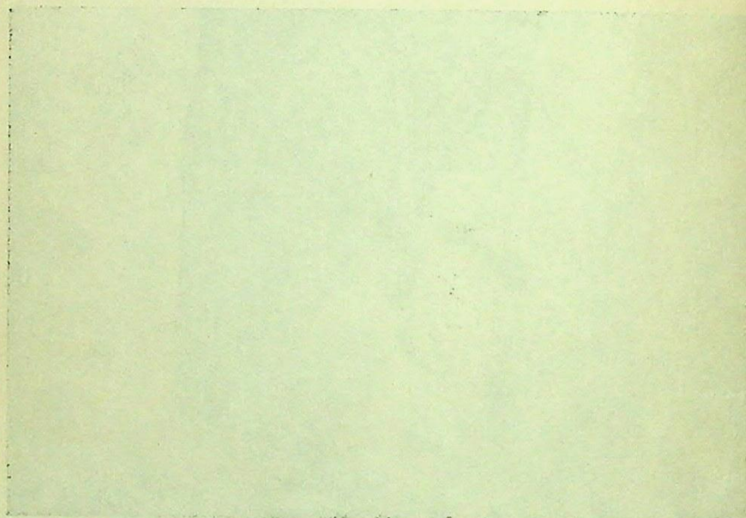
'मैं धरती पञ्जाब की' आपके सामने है, जो मेरे कुछ फुटकर लेखों का संग्रह है। इन लेखों में मैंने पञ्जाबी का परिचय—मात्र ही दिया है—

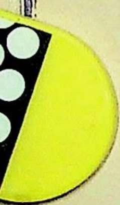
आगे देखिये ······ बस !

क्रम



११३ वर्षीय वह स्वर्गीय वृद्धा माँ जी जिसने लेखक को लगभग तीन हज़ार गीत, लोक-कथायें आदि दीं !





पंजाब जनपद एवं उसका क्षेत्र-विस्तार

पञ्जाब का नाम लेते ही हमारे सामने अनेक साँस्कृतिक कल्पनाएँ आ उपस्थित होती हैं। साँस्कृतिक कल्पना-चित्रों के साथ-साथ ही हमारे सामने पञ्जाब की उर्वरा भूमि वाले उपजाऊ खेत, अमृतदायिनी पाँच नदियाँ, मानव को कर्म करने के लिए प्रेरित करने वाले चौड़े मैदान जो छाती फैलाये मानव द्वारा कर्मामृत-वर्षण के उत्सुक दीख पड़ते हैं— वे चित्र भी साथ ही सामने आ उपस्थित होते हैं। मनोकल्पित नेत्रों के सामने आने वाले चित्रों में पञ्जाब का वह 'गबरू' जवान भी आता है जो भारत का प्रहरी बन आततताइयों से जूझने के लिए तत्पर रहता है और भारत की भूख मिटाने का बीड़ा उठाए खेतिहर बना प्रातः से सायं और सायंकाल से लेकर सूर्य की प्रथम किरण के उदय होने तक परिश्रम, उल्लास, त्याग एवं उदार भावनाओं का प्रतीक बन खेतों की मिट्टी से जूझता रहता है।

दिन रात के परिश्रम के बाद भी वह थकता नहीं, हिम्मत नहीं हारता, अपना समय राग रङ्ग एवं हँसी खेल में गाता-हँसता और परिश्रम करता हुआ निकालता है। इसी पञ्जाब जनपद को किसी समय ईसा से लगभग २५०० वर्ष पूर्व 'सप्त-सिंधु' के नाम से पुकारा जाता रहा है। सप्त-सिंधु का अर्थ है—'सात नदियों की भूमि'। आर्यों के पुरातन ग्रन्थ ऋग्वेद में इन सातों नदियों के नाम निम्न थे--सिन्धु (सिंध), वितस्ता (झेलम), अश्विनी (चिनाब), इरावती (रावी), विपाशा (व्यास), शतद्रू (सतलुज) तथा सरस्वती (घग्घर)। सरस्वती कहीं थानेश्वर की समीपवर्ती भूमि पर बतलाई जाती है जोकि कालान्तर में सूख गई। कुछ विद्वानों का मत है कि वर्तमान नदी घग्घर ही किसी समय सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध थी।

ईरानियों ने इस भूमि को 'अवेस्ता' या 'हप्त हिन्दू' भी कहा है क्यों कि वे लोग 'स' का उच्चारण 'ह' में परिवर्तित कर देते हैं, जिसका प्रभाव पञ्जाब की तथा मालवा की बोली पर भी पड़ा है। यूनानी लोगों ने सिन्ध के पार की भूमि को 'इण्डो' या 'इण्डियो' कहा जिससे पश्चिमी देशों में भारत का नाम 'इण्डिया' प्रसिद्ध हो गया।

सप्त-सिन्धु में अफ़गानिस्तान का भी कुछ भाग सम्मिलित था जोकि कभी गांधार नाम से पुकारा जाता था। कालान्तर में गांधार लुप्त हो गया। काश्मीर जो किसी समय पञ्जाब का ही एक भाग माना जाता था—भी समय की पर्तों के नीचे दब कर पञ्जाब से विलग कर दिया गया। धीरे धीरे उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश भी पञ्जाब से विलग हो गया और पञ्जाब केवल पाँच नदियों का एक छोटा किन्तु समृद्धिशाली प्रदेश बनकर रह गया।

ठीक तौर से यह नहीं कहा जा सकता कि इस प्रान्त का नाम पञ्जाब कब से पड़ा और किसने इसका नामकरण किया। सप्त-सिन्धु के बाद इसे 'पञ्चापु' या 'पंछाप' भी कहा गया। सिन्ध में पञ्चनद नामक एक नगर है, बहुत सम्भव है किसी समय पञ्चनद का पञ्जाब से विशेष सम्बन्ध हो, किन्तु इसका ऐतिहासिक कोई प्रमाण अभी तक प्राप्त नहीं हो पाया। वैसे कुछ विद्वान इतिहासकारों ने पञ्जाब की भूमि को 'पञ्चनद' तथा यहाँ के राजाओं को 'पञ्चनद के राजा' के नाम से भी सम्बोधित किया है † कुछ लोगों का मत है कि 'पञ्जाम्बु' से बिगड़ कर 'पंजाब' बना।

पञ्जाब शब्द की रचना पञ्ज+आब (पानी) से हुई है। 'आब' शब्द फारसी का है। इससे यह निश्चय है कि 'पञ्जाब' नामकरण मुसलमानों के समय में हुआ। अकबर के शासन-काल में राजस्थान का एक सोलहवीं शताब्दि का कवि प्राप्त होता है जिसने पञ्जाब शब्द का प्रयोग अपनी रचना में सर्व प्रथम किया, इस कवि का नाम सुन्दरदास था। 'पञ्जाबी' में पञ्जाबी शब्द का उपयोग सर्व प्रथम 'हाफ़िज़ बरखुरदार' (१७०२ ईस्वी) ने किया था............

---

†देखिए 'चन्द्र गुप्त मौर्य तथा एलेग्ज़ेण्डर की भारत में पराजय'—डॉ० हरिश्चन्द्र सेठ एम० ए० पी० एच० डी० प्रोफे० किङ्ग एडवर्ड कालेज, अमरावती।

"हज़रत मोमन दा फरमाया इस विच एह मसायल
तुरत पञ्जाबी आख सुनावीं जे कोइ होवे मायल"

उपर्युक्त के अलावा इसका एक और हवाला भी प्राप्त होता है, देखिए—एडीलिङ्ग की मिथरीडेट्स बर्लिन १८०६–१७ प्रथम खण्ड पृष्ठ १६५ तथा चतुर्थ खण्ड पृष्ठ ४८७ पर। कुछ भी हो, यह निश्चय ही है कि अकबर के शासन काल में पञ्जाब का बटवारा तथा बन्दोबस्त हुआ और पञ्जाब का एक भिन्न प्रान्त भी बना उसी के शासन काल में बहुत सम्भव है राजा टोडरमल द्वारा पञ्जाब का नामकरण हुआ हो।

मुग़लों के शासन के पश्चात् पञ्जाब ने पुनः एक बार अपना स्वर्ण युग देखा और महाराजा रणजीत सिंह ने पञ्जाब की सीमा को विस्तारित कर दिया, किन्तु अंग्रेज़ों के शासन काल ने पञ्जाब को फिर से संकीर्ण कर दिया—यही नहीं, जाते २ अंग्रेज़ी शासन ने पंजाब में जो नरबलि-यज्ञ का श्रीगणेश किया उसने न केवल पंजाब को ही संकुचित किया वरन् भारत के ही दो टुकड़े करा दिए और पंजाब का वह विभाग भी पाकिस्तान में चला गया जो सर्वाधिक उपजाऊ था। पंजाब को इस विभाजन के कारण केवल आर्थिक हानि ही नहीं, वरन् उसकी संस्कृति पर भी एक कठोर आघात पहुँचा। ढेर सा ऐसा साहित्य पाकिस्तान में रह गया जिससे भारत के पुरातन इतिहास का घनिष्ट सम्बन्ध था।

अब भारतीय पंजाब राजनैतिक रूप से एक बहुत छोटा सा प्रान्त रह गया है जिसके उत्तर-पश्चिम में पाकिस्तान--पूर्वोत्तर में जम्मू तथा काश्मीर—दक्षिण-पश्चिम में सिन्धी पाकिस्तान, दक्षिण में राजस्थान, पूर्व-दक्षिण में उत्तर प्रदेश एवम् पूर्व की ओर हिमाचल प्रदेश स्थित हैं। पंजाब के आस-पास के प्रदेश की भाषा पर पंजाबी का पर्याप्त प्रभाव है जिसका उल्लेख हम आगे करेंगे।

सम्राट अकबर के शासनकाल के पूर्व पंजाब को या तो पञ्चनद नाम से पुकारा गया, क्योंकि पञ्चनद का ही भाषान्तर पंजाब है—या पंजाब के विभिन्न प्रान्तों के नाम से भी इसे पुकारा गया जैसे,—लाहौर, मुल्तान, मालवा, गुजरात, पोठोहार इत्यादि। प्रान्तों के नाम से ही पंजाब की बोली

का भी नामकरण हुआ और लाहौर में लाहौरी, मुल्तान में मुल्तानी, मालवा में मलवई, गुजरात में गुजराती, तथा पोठोहार में पोठोहारी बोली जाती रही—का उल्लेख भिन्न स्थलों पर प्राप्त होता है।

पंजाब का क्षेत्र वैसे तो समय समय पर परिवर्तित होता रहा है किन्तु हम यहाँ पंजाब के राजनैतिक क्षेत्र पर मनन करना उचित नहीं समझते वरन् पंजाब की बोली संबंधी क्षेत्र-विस्तार पर ही विचार करना आवश्यक समझते हैं—पंजाब के उत्तर में काश्मीर है जहाँ शारदा, डोगरी या काश्मीरी बोली का प्रयोग होता है—क्योंकि शारदा की उपज भी पंजाबी के समान वैदिक संस्कृत से ही है तथा पंजाब के निवासी पर्याप्त मात्रा में काश्मीर में भी निवास करते रहे हैं तथा उनका आवागमन भी प्रायः बना ही रहता है इस कारण पंजाबी का प्रभाव इन बोलियों पर प्राप्त होता है। पंजाब के उत्तर-पूर्व में जम्मू तथा हिमाचल प्रदेश हैं। जम्मू की बोली पर भी काश्मीर के समान ही पंजाबी का प्रभाव है। हिमाचल प्रदेश में पंजाबी+हिन्दुस्तानी+पहाड़ी बोली का चलन है। इन पहाड़ी बोलियों में पंजाबी ने अपना पर्याप्त स्थान बना लिया है। पंजाब के उत्तर-पश्चिम में सीमा प्रदेश है जहाँ 'लहिंदी' जोकि पञ्जाबी की ही उप-बोली है बोली जाती है—पश्तो का भी चलन है जो कि अफ़ग़ानिस्तान से प्रभावित है। पंजाब के पश्चिम में बिलोचिस्तान है जहाँ बिलूची भाषा का प्रभाव अधिक है। सुलेमान की पर्वत श्रेणियों ने पंजाबी को इस प्रदेश में पैठने के लिए पर्याप्त अवसर नहीं दिया। दक्षिण-पश्चिम में सिन्ध है, जहाँ की सिन्धी भाषा के कई शब्द पंजाबी से साम्य रखते हैं। दक्षिण में बीकानेरी भाषा का चलन है किन्तु इस भाषा पर भी पंजाबी का पर्याप्त प्रभाव है। दक्षिण-पूर्वी पंजाब में हिसार तथा पानीपत का इलाक़ा है जहाँ बांगड़ी, हिसारी या हरियानी बोली प्रचलित है किन्तु ये बोलियाँ भी पंजाबी से अपना परस्पर सम्पर्क स्थापित किए होने के कारण पंजाबी के प्रभाव से अछूती नहीं रह पाईं। पंजाब की पूर्वी सीमा पर संयुक्त प्रान्त है जहाँ हिन्दवी या हिन्दी प्रचलित है। किन्तु सीमाई क्षेत्र में पंजाबी का प्रभाव प्राप्त अवश्य होता है।

'बारह कोस पर बोली बदले'—कहावत के अनुसार पंजाब की बोली

भी अपने में परिवर्तन करती रहती है--उत्तरी पंजाब में यह पोठोहारी, पश्चिमी पंजाब में मुल्तानी या लहिंदी तथा चिनाब के समीप झङ्ग प्रान्त में झाङ्गी कहलाती है, उत्तर-पूर्व में डोगरी, कंडियाली, काँगड़ी तथा भटियाली, पूर्व में पश्चिमी पहाड़ी, कहिलूरी, बिलासपुरी, दक्षिण-पूर्व में घग्घर नदी के आस-पास पुआधी, हरियानी, राठी, भटियानी तथा बागड़ी इत्यादि। इसके साथ २ पंजाब के केन्द्र में भी कई बोलियाँ प्रचलित हैं जिन्हें सुंयुक्त रूप से केन्द्रीय पंजाबी कहा जाता है। केन्द्रीय पंजाबी में माझे तथा लाहौर के पश्चिमी भाग की पंजाबी आती है इसे डॉ० ग्रीयर्सन ने पश्चिमी लाहौरी कहा है, स्यालकोट तथा गुजरांवाले के आस-पास की पंजाबी को वे उत्तर-पश्चिमी पंजाबी कहते हैं। दूसरी बोली जो केन्द्र में प्रचलित है वह दुआबी कहलाती है--यह जलंधर, होशियारपुर तथा कपूरथला में प्रचलित हैं। तीसरी बोली मालवी या मलवई है जो सतलुज के पूर्व की ओर प्रयोग में लाई जाती है इसमें फीरोज़पुर, लुधियाना, फरीदकोट तथा मालेरकोटला सम्मिलित हैं--पटियाला तथा नाभा का भी कुछ भाग इसमें सम्मिलित किया जा सकता है। इनके सिवाय अन्य भी कई उप-भाषाएँ हैं जिनका उल्लेख हम अपने अन्य परिच्छेद में विस्तार पूर्वक करेंगे।

पंजाब का इतिहास सदैव से ही गौरवपूर्ण एवं प्रतिभाशाली रहा है। पंजाब के अनुरूप ही पंजाब की बोली भी सदैव से ही भारतीय ग्रन्थों की श्रीवृद्धि करती रही है। धन्य है वह प्रदेश तथा धन्य है वह बोली जिसमें विश्व के पुरातन ग्रन्थ ऋग्वेद की रचना हुई।

पंजाब के पुरातन निवासी एवं उनकी बोलियों का पंजाबी पर प्रभाव

पंजाब के अर्वाचीन निवासी कौन थे, यह निश्चित् रूप से नहीं कहा जा सकता। किन्तु हड़प्पा ज़िला मोंटगोमरी की तथा महिंजोदड़ो (१९२४) की खोजों से ज्ञात हुआ है कि ईसा से ५.००० वर्ष पूर्व कोई द्रविड़ जाति पंजाब में निवास करती थी जो कि पर्याप्त मात्रा में सुसंस्कृत एवम् सभ्य थी। वे लोग शिव एवम् शक्ति के उपासक थे तथा किसी ऐसी लिपि का उपयोग करते थे जो सचित्र थी—अभी तक यह निश्चय नहीं हो पाया है कि वह लिपि कौन सी थी एवम् उस लिपि का उपयोग कैसे होता था।

जब द्रविड़ भारत में भली भांति बस गए और व्यापार आदि करने लगे तब उन पर एक दूसरी जाति के लोगों ने अफ़ग़ानिस्तान के दर्रों से होकर आक्रमण किया। इन लोगों का नाम 'आर्य' था। परन्तु भिन्न भिन्न देशों में बसने के कारण उनकी भाषा तथा चालढाल में बहुत परिवर्तन हो गया था। इस कारण यूरोपीय विद्वानों ने इन्हें 'इण्डो आर्यन' या भारतीय आर्यों के नाम से सम्बोधित किया।

निश्चित् रूप से यह कोई नहीं कह सकता कि आधुनिक पंजाबी किन लोगों की सन्तान हैं, क्योंकि इनमें कई जातियों का रक्त मिल गया है। पंजाब में अनेक जातियों के मनुष्य आए और वे ऐसे हिल मिल गए कि अब प्रत्येक जाति का निरूपण करना कठिन हो गया है। परन्तु इतना कहना पर्याप्त होगा कि साधारणतया भारत में दो प्रकार के मनुष्य पाए जाते हैं। एक वे जो लम्बे, गोरे, लम्बी नाक वाले रूपवान होते हैं। ये लोग आर्यों

के वंशज हैं और पंजाब तथा उत्तरी भारत में अधिकता से पाए जाते हैं। दूसरे प्रकार के वे लोग हैं जो डीलडोल में छोटे, काले चपटी नाक वाले और रूपहीन हैं। कोल, भील, साँसी, सिकलीगर, बाजीगर और अन्य जङ्गली जातियाँ इन्हीं लोगों में से हैं। दक्षिण के अधिकांश लोग भी ऐसे ही हैं। पंजाब में जो खानाबदोश, जङ्गली, सिकलीगर, बाजीगर, या साँसी आदि पाए जाते हैं वे इन्हीं लोगों में से हैं--ये ही भारत के मूल निवासी कहे जा सकते हैं।

विद्वानों का कथन है कि ये काले, चपटी नाक वाले और रूप-हीन मनुष्य, जिनका ऊपर वर्णन किया गया है, भारतवर्ष के मूल निवासियों की सन्तान हैं। इन्हें आर्यों ने पराजित कर पंजाब से निकाल दिया। ऋग्वेद की रचना जब पंजाब में हुई तब ये लोग अपने को आर्य कहते थे। इन्हीं लोगों का रक्त ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य इत्यादि उच्च वर्णों में अभी तक प्राप्त होता है। आर्य जब सर्व प्रथम भारत में आए वे पंजाब में ही बसे जिसे उस समय 'सप्त-सिन्धु' कहा जाता था। धीरे-धीरे वे गङ्गा, यमुना के किनारे २ आगे बढ़े और समस्त उत्तरी भारत में फैल गए। ज्यों ज्यों आर्य आगे बढ़ते गए, उन्होंने यहाँ के मूल निवासियों को पराजित किया, जिन्हें वे लोग 'दस्यु' या 'पिशाच' कहते थे।

आर्यगण महाकान्तार वन के कारण दक्षिण की ओर न जा सके, वे नर्मदा तक ही फैल कर रह गए, परन्तु उनके आचार विचार दक्षिण के लोगों में भी फैल गए तथा वे भी इनका अनुकरण करने लगे।

द्रविड़ लोगों की भाषा का प्रभाव आधुनिक पंजाबी पर न पड़ा हो--यह बात नहीं है अभी भी कई ऐसे शब्द मिलते हैं जो कि द्रविड़ भाषाओं से साम्य रखते हैं। पंजाब के ज़िला मुल्तान में बोली जाने वाली मुलतानी के कुछ शब्द द्रविड़ भाषा से अभी भी साम्य रखते हैं; जैसे—

मुलतानी	द्रविड़ भाषा	अर्थ
घिन आ	घेना	लेना

मुलतानी ही नहीं बहावलपुरी तथा सिंधी में भी यही शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। यदि भाषा शास्त्री खोज करें तो ऐसे अनेक शब्द प्राप्त

हो सकते हैं जो कि द्रविड़ भाषा के हैं किन्तु पंजाबी से साम्य रखते हैं ।

दाढ़ी रखने का चलन भी बहुत सम्भव है द्रविड़ लोगों की ही देन है, इसके साथ साथ शिव-शक्ति की उपासना भी द्रविड़ों से ही आर्यों ने सीखी प्रतीत होती है । यह निश्चय है कि आर्यों की सभ्यता, रीति-रिवाज या अन्य चलनों का जहाँ द्रविड़ों पर पर्याप्त असर हुआ वहाँ द्रविड़ों की भी कई चीज़ों का प्रभाव आर्यों पर भी पड़ा जिनमें कि पंजाब के आर्य भी सम्मिलित थे ।

आर्य जाति के लोग जिस भाषा का प्रयोग करते थे वह संस्कृत कही जाती है । इसकी उत्पत्ति वहीं से है, जहाँ से लैटिन, ग्रीक, अंग्रेज़ी, फ़ारसी या अन्य भाषाओं की है । विद्वानों का मत है कि भारत के शिक्षा-शास्त्रियों ने ही सर्व-प्रथम विश्व के समक्ष अपनी भाषा का सुघड़ एवं निखरा हुआ रूप रखा एवं उसे वैज्ञानिक तौर से व्याकरण-बद्ध किया । पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय ने अपनी पुस्तक "हिन्दी भाषा तथा साहित्य का इतिहास" में लिखा है कि "यथार्थक तथा वैज्ञानिक प्रणाली के अनुसार बोली की चर्चा सर्वप्रथम भारत में ही हुई इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है कि सबसे पुराना भाषा-वैज्ञानिक 'शांकटायन' हुआ जिसने आज से लगभग ३००० वर्ष पूर्व शब्दों की उत्पत्ति की खोज की । 'यासिक' ७०० ई० पूर्व, पाणिनि ५०० ई० पूर्व जिसने 'खरोश्ती' लिपि का उल्लेख किया है । 'कात्यायिन' ३५० ई० पूर्व, 'पातांजलि' १५० ई० पूर्व तथा हेमचन्द्र भी ईसा से पूर्व ही हुआ । इस सम्बन्ध में Prof. Sayce. का कथन है कि—*

"हिन्दुस्तानी व्याकरणाचार्यों ने बहुत पहिले ही संस्कृत की ध्वनियों

---

* "The native grammarians of India had at an early period analysed both the phonetic sounds & vocabulary of Sanskrit with astonishing precision and drawn up for more scientific system of grammer than the philologists of Alexendria or Rome had been able to attain."

"Introduction to the Science of Language" Vol. 1 Page 38.

तथा शब्दों का विचित्र ढङ्ग से सही प्रयोग कर लिया था तथा इन लोगों ने अलेक्ज़ेण्ड्रिया तथा रोम के भाषा वैज्ञानिकों से सुन्दर एवम् पूर्ण व्याकरण बना लिया था। यद्यपि उनकी खोज की सीमा एक ही बोली—संस्कृत तक ही सीमित थी, तथापि उच्चारण के स्वरूप के विषय में उनकी खोज अत्यन्त ही वैज्ञानिक एवम् तर्क-युक्त तथा शोध-पूर्ण थी।"

संस्कृत जो कि पंजाब की आदि भाषा थी, को विद्वान वैदिक संस्कृत भी कहते हैं। वैदिक संस्कृत इसे इस लिए कहा जाता है क्योंकि विश्व का आदि-ग्रन्थ ऋग्वेद इसी भाषा में लिखा गया था। वैदिक संस्कृत ही तत्कालीन लोक-भाषा थी। वेदों के मनन करने से ज्ञात होता है कि वेदों में लोक-साहित्य भी संग्रहित था, वेदों के 'कुन्तापसूक्त' (२०/१२७—१३६) खिल या परिशिष्ट कहे गए हैं—इन्हें कई विद्वान लोक-साहित्य मानते हैं जिस की चर्चा एवम् विवेचना हम आगे किसी परिच्छेद में करेंगे। कहने का तात्पर्य यह कि वैदिक भाषा अवश्य ही किसी समय लोक की बोल-चाल की भाषा भी रही—तभी तो वेदों में तत्कालीन लोक-साहित्य का संग्रह हुआ। कालान्तर में वैदिक भाषा लौकिक संस्कृत से भिन्न हो गई और लौकिक संस्कृत का उपयोग लोक में होने लगा। निश्चय ही उस काल में कुछ अन्य जातियाँ भारत में आईं। उन्होंने अपना शब्द-भण्डार वैदिक संस्कृत को दिया और लौकिक संस्कृत का निर्माण हुआ। यही लौकिक संस्कृत वर्तमान काल में 'आधुनिक संस्कृत' या केवल 'संस्कृत' के नाम से प्रसिद्ध है।

जैसा हम ऊपर कह चुके हैं कि आर्य अफ़ग़ानिस्तान के उत्तर पश्चिमीय दर्रों से आये, किन्तु अनेक भारतीय विद्वान इस मत के पोषक नहीं हैं। स्व० बाल गङ्गाधर तिलक की धारणा है कि आर्यों की जन्मभूमि मध्य एशिया नहीं, वरन् कहीं उत्तरी ध्रुव के समीप थी। वे लिखते हैं कि ऋग्वेद में ऐसे प्रमाण हैं जिनसे सिद्ध होता है कि वह ईसा से ४००० वर्ष पूर्व के हैं, किन्तु अधिकतर विद्वान इस मत को मिथ्या ही प्रमाणित करते हैं।

आर्यों का ही एक दल मेसोपोटामिया, फ़ारस तथा एशियाई कोचक में मध्य एशिया से गया था। धीरे २ इन्होंने एशियाई कोचक के कुछ भाग पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इन्हीं में से एक जन-समूह के लोग

यूरोप में भी गए और वहाँ रहने लगे। इन्हीं आर्यों का एक जनसमूह मिस्र तथा बेबीलोन के इतिहास में 'मिटानी' नाम से प्रसिद्ध है। मिस्र में कुछ ऐसे प्राचीन लेख मिले हैं जिससे प्रकट होता है कि आर्यावर्त के राजा दशरुत्त (दशरथ) और मिस्र के सम्राट में परस्पर पत्र-व्यवहार होता था। इन लेखों से यह भी प्रकट होता है कि मिटानी जाति के लोगों के धार्मिक विचार भारतीय आर्यों के समान ही थे। वे भाषा भी ऐसी ही बोलते थे जो भारतीय आर्यों की भाषा से समानता रखती थी।

पूर्व की ओर जो आर्य गए वे कुछ दिनों के बाद दो भागों में विभक्त हो गए! उनमें से एक तो वे थे जो फ़ारस और निकटस्थ देश में रहने लग गए और दूसरे वे थे जो पंजाब में बस गए। फ़ारस पर जब मुसलमानों ने आक्रमण किया तब बहुत से आर्य अपना देश छोड़ कर भारतवर्ष में चले आए। कालान्तर में ये लोग पारसी कहलाए+।

एक अन्य जाति और भारत की सीमाओं में आई, यह जाति मङ्गोल कही जाती है। ये लोग मध्य एशिया से भारत में आए। ये लोग दाढ़ी नहीं रखते थे, इनके रङ्ग में कुछ पीलापन था, छोटी-चौड़ी इनकी नाक थी, छोटा ही चेहरा होता था; ये लोग भी भारत में आकर आर्यों से मिल गए इनकी सन्तानें अभी तक पञ्जाब, बङ्गाल और आसाम में पाई जाती हैं। इन लोगों की बोली ने संस्कृत को परिवर्तित करने में पर्याप्त हाथ बँटाया।

मङ्गोल जाति के आने के पश्चात् बहुत सम्भव है कुछ और लोग भी भारत में आए हों किन्तु उनका उल्लेख कहीं प्राप्त नहीं होता।

पेशावर तथा रावलपिण्डी के आस-पास के प्रदेश को गांधार कहा जाता था। गांधार पर ५५८—५३० ई० पू० पुक्कुसती का राज्य था। पुक्कुसती ने मगध के राजा से पत्र-व्यवहार भी किया तथा अपना राजदूत भी भेजा। यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उसने पत्र-व्यवहार क्यों किया था। किन्तु यह सत्य है कि Achaemenian Empire of Persia के प्रवर्तक Cyrus (558—530 B. C.) ने भारत पर आक्र-

+देखिए 'भारतवर्ष का इतिहास'—डा० ईश्वरीप्रसाद एम० ए० एल० एल० बी० डी लिट० पृष्ठ २३।

मण किया और काबुल के समीप कुम्भा नदी पर स्थित प्रसिद्ध नगर कपिशा को तहस-नहस कर दिया और सिंध के पश्चिमी विभाग पर अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया, तदुपरान्त स्कायलेक्स (Skylax) के सैनापतित्व में एक बड़ी सैना ने राजपूताना का भी कुछ भाग अपने में सम्मिलित कर लिया किन्तु उनका प्रभाव अधिक काल तक न रह सका हाँ, कुछ लोग अवश्य पञ्जाब में भी चले आए जो कालान्तर में यहाँ के लोगों में ही घुल-मिल गए।†

चौथी शताब्दी ईसा पूर्व 'टक' जाति द्वारा स्थापित किया गया नगर तक्षशिला विद्या का केन्द्र रहा; यह उन दिनों एक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र भी था। साथ ही यह मध्य एशिया से आने वाले मार्ग पर अवस्थित था इस कारण विभिन्न देशों की बोलियाँ तक्षशिला में पहुँचती थीं जहाँ कि पञ्जाब के विद्यार्थी विद्याध्यन करते थे। तक्षशिला संस्कृत का केन्द्र था, धीरे २ संस्कृत में अन्य भाषाओं के शब्द भी मिलने लगे और जनता में 'पाली' का चलन प्रारम्भ हुआ बौद्ध काल में तो पाली ही लोक भाषा बन चुकी थी। भगवान् बुद्ध के श्रद्धालु पाल वंश ने इन दिनों में पर्याप्त प्रचार इसी भाषा में किया इसी कारण इसका नाम 'पाली' पड़ गया।

३२६ ई० पूर्व मेसीडन के राजा फ़िलिप के पुत्र सिकन्दर ने ऐशियाई कोचक, सीरिया, मिस्त्र, ईरान इत्यादि देशों पर विजय प्राप्त कर भारत की ओर प्रस्थान किया। सिकन्दर की सैना में विभिन्न देशों के सैनिक थे। उन में से कई भारत में भी रह गए होंगे यह निश्चित है। उनकी बोली का प्रभाव यहाँ की बोली पर भी होना स्वाभाविक था। 'स' को ईरानी लोग 'ह' कहते हैं। निश्चय ही पञ्जाबी तथा मध्य भारतीय मालवी ¶ में 'स' को 'ह' कहने की प्रथा भारतीय जनपदों ने ईरानियों से ही ली जैसे—पैसा को पैहा, सप्ताह को हफ़ता, साँस को साँह तथा ससुर को सहुरा इत्यादि।

---

†देखिए—Advanced History of India.—डा० काली किङ्कर दत्त एम० ए० पी० एच० डी० पृष्ठ ६४।

¶ मध्य भारतीय मालव-गण उस समय पञ्जाब में ही निवास करते थे। विवरण के लिए देखिए इसी पुस्तक का अन्य परिच्छेद—"पञ्जाबी तथा मालवी में समानता"

सिकन्दर के पश्चात् सिल्यूकस भारत में आया किन्तु चन्द्रगुप्त से सन्धि करके लौट गया तथा अपनी पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त से कर दिया—इस प्रकार विदेशियों की यातायात होने लगी और परस्पर बोलियों का भी आदान प्रदान होने लगा। इस समय पञ्जाब में निश्चय ही पाली का तथा प्राकृतों का चलन प्रारम्भ हो चुका था। संस्कृत से पाली या प्राकृत के बनने का मूल कारण विदेशी शब्दों का संस्कृत में प्रवेश ही था।

सिकन्दर के पश्चात् यूनानी राजा डिमिट्रिअस तथा उसके पश्चात् उसके पुत्र मेनेण्डर ने भारत पर १७५ ई० पूर्व आक्रमण किया। इनका युद्ध पुष्यमित्र शुङ्ग से हुआ। मेनेण्डर तो भारत में ही बस गया।

मेनेण्डर ने अपनी राजधानी वर्तमान स्यालकोट को बनाया जिसे उस समय सकला या सङ्कलदीप भी कहा जाता था। इसी काल में पार्थिया के राजा मैथ्रेडिटीज़ प्रथम ने पञ्जाब के पश्चिमी भाग को जीत कर अपने राज्य में मिलाया। इस प्रकार पार्थिया की तथा यूनानियों की बोली का भी पञ्जाब की बोली पर प्रभाव पड़ा।

कुछ समय पश्चात् यूनानियों को सीथियन जाति के लोगों ने, जिन्हें भारतवासी 'शक' कहते थे बैक्ट्रिया से निकाल दिया। उन्होंने पञ्जाब और अफ़ग़ानिस्तान पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया। धीरे धीरे सीथियनों की एक शाखा ने जिसे 'यूची' कहते थे, १५० ई० पू० के लगभग बैक्ट्रिया को जीत लिया और वहाँ वह पाँच जन-समूहों में विभक्त हो गई। इनमें से एक ने जिसे 'कुशान' कहते थे—ने सारी जाति का संगठन कर लिया और अफ़ग़ानिस्तान तथा पञ्जाब पर अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया। सीथियन अथवा शकों ने सौराष्ट्र अवन्ती (म० भारत), मथुरा, तक्षशिला आदि देशों में भी अपना अधिपत्य स्थापित किया। इस प्रकार एक साथ ही शक तथा कुशान लोगों की बोली का प्रभाव पञ्जाब की बोली पर पड़ा और यहाँ की अपभ्रंश 'अभीरी' भाषा में परिवर्तित हो गई। मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् यूनानियों तथा अन्य विभिन्न जातियों के भारत में आ जाने से कई विदेशी बोलियों का समावेश हुआ।×

×केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया—प्रोफेसर कीथ—पृष्ठ ६७

यह वही काल था जब पाताञ्जलि जैसा व्याकरणाचार्य अपने व्याकरण की रचना कर रहा था। यूनानियों के आ जाने से भारत की प्राकृतों पर और भी अन्य बोलियों का प्रभाव पड़ा जिसके फल-स्वरूप 'अपभ्रंश' प्रचलित हुई—पाताञ्जलि वह प्रथम व्यक्ति है जिसने सर्व प्रथम–अपभ्रंश बोली का उल्लेख किया है। उसके मतानुसार अपभ्रंश वह है जिसके कई उच्चारण तथा कई रूप हों।

कात्यायन तथा पाताञ्जलि के भाष्य एवम् व्याकरण का ही इस काल में निर्माण नहीं हुआ वरन् मनुस्मृति का भी नवीन संस्करण हुआ। वैद्यक तथा रसायन शास्त्र की भी उन्नति हुई। यह निश्चित् सत्य है कि इस काल में भारत पर बाह्य देशों की विभिन्न बातों का विशेष प्रभाव पड़ा। केवल बोली पर ही बाह्य देशों की बोलियों का प्रभाव पड़ा हो यह बात नहीं वरन् कई विद्वानों ने कुछ अनुवाद भी किए, सिंचाई का प्रबन्ध भी यवनों के हाथ में दिया गया, ग्रीक के शिल्पियों ने भी अपना प्रभुत्व भारतीय जनपदों पर पर्याप्त मात्रा में स्थापित किया बाह्य देशों के विद्वानों ने भारतीय ऋषियों की भी पर्याप्त प्रशंसा की है ‡। इन सभी बातों से स्पष्ट होता है कि भारत

‡ Embassies were exchanged with the Hellenic (yavan) powers by the sovereigns of Magadha & Avanti. Indian Philosophers, traders and adventurers were to be found in the intellectual circles of Athens & in the markets of Alexanderia. The first of the Mauryas had entered into a marriage contract with a Greek Pontentate. His son was eager to secure the services of a Greek sophist. The third & the greatest of the Maurayas entrusted the Government of a wealthy province & the execution of important irrigation works to a Yavan Chief. The services of Greek engineers seem to have been requisitioned by the greatest of the Kushans in the

पर अन्य देशों की बोली का निश्चित प्रभाव पड़ा और संस्कृत धीरे धीरे अप-भ्रंश बन गई।

५वीं शताब्दी में, समुद्र गुप्त के पश्चात् भारत में एक और अन्य जाति मध्य एशिया से आई बताई जाति है जिसे 'हूण' कहा गया। आर्यों के समान इस जाति का भी निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि ये लोग कहाँ से आए। विद्वानों का अधिकतर प्रामाणिक मत यही है कि ये लोग कहीं समर-

---

early Centuries of the Christian era. Greek influence of Indias coinage & iconography is unmistakeable.

A Greek orator, Dion Chrysostom, informs us that the poetry of Homer was sung by the Indians, who had translated it into their own language and modes of expression so that even Indians were not unacquainted with the woes of Priam, the weeping & wailing of Andromache & Achilles & Hector. The reference may be to Mahabharata, but the possibility of an actual translation of the Greek epic is not entirely excluded. Indian writers bear testimony to the proficiency of the Greeks in the sciences & one author admits that they were honoured as though they were Rishis (Sages)......On the other hand Greek authors speak with admiration of the Sages of India. Hellenic rulers & statesmen listened with respectful attention to Indian Philosophers... Greek meridarches are mentioned in Kharoshthi inscriptions as establishing Budhist relics & sanctuaries ....“An Advanced History of India”—Kalikinkar Dutta M. A. PH. D. Page 142—143

कन्द, बुखारा से आए और भारत के विभिन्न भागों में फैल गए। केवल भारत में ही नहीं, वरन् ये लोग रोम में भी गए प्रतीत होते हैं। भारत में जब ये सर्व-प्रथम आए तो इनका युद्ध स्कन्दगुप्त से हुआ; उसने इन्हें मार भगाया; किन्तु उसके पश्चात् ही ये लोग पुनः आगे बढ़े और उसके राज्य पर पुनः हावी हो गए। पाँचवी शताब्दी के अंतिम चरणों में हूण लोग देश के विभिन्न भागों में फैल गए। पञ्जाब तथा गान्धार में ५२० ई० में हूणों का उल्लेख मिलता है। सौंगयन नामक चीनी यात्री ने हूणों के राजा 'गोलास' से भेंट की थी। ह्वेनसाँग चीनी यात्री तथा कल्हण ने भी हूण सरदार तोरमाण तथा मिहिरकुल के सम्बन्ध में लिखा है। वे लिखते हैं कि वह कट्टर शैव था। उसने सैंकड़ों बौद्ध मत के स्तूपों तथा विहारों को तुड़वाया; यद्यपि वह पहिले स्वयं भी बौद्ध मत का ही अनुयायी था। जैन मत की गाथा कल्कि राज में भी इनके शौर्य का वृत्तांत मिलता है। पंडित गौरी शङ्कर ओझा के मतानुसार राजपूताना, गुजरात आदि देशों में पाए जाने वाले कुनबी लोग जो बड़े चतुर कृषक होते हैं हूण जाति के ही माने जाते हैं। निश्चय ही है कि पञ्जाब के निवासी 'कमोः' भी हूण ही हैं।*

महाकाव्य काल के आस-पास काबुल के समीप 'अश्वक' राजों का राज्य था 'अश्वक' संस्कृत के 'अश्व' तथा फ़ारसी के 'अस्प' शब्द से बना प्रतीत होता है—कालान्तर में इस राज्य के राजाओं को 'अश्वपति' भी कहा गया इनका राज्य गांधार में था—कालान्तर में ये लोग तक्षशिला तक भी अपनी पहुँच रखने लगे। छठी शताब्दी के आसपास इन्हीं अश्व-पतियों के उत्तराधिकारी 'मुखारी' कहलाए ५५४ ई० के लगभग इनके एक राजा ईश्न-वर्मन ने महाराजाधिराज की उपाधि ग्रहण की तथा पञ्जाब के मार्गों से ही होते हुए ये लोग मगध तक पहुँचे जहाँ इन्होंने शासन भी किया। पञ्जाब में थानेश्वर के राजा प्रभाकरवर्धन की पुत्री तथा राज्यवर्धन की बहिन जयश्री से 'मुखारी' के अंतिम राजा अवन्तिवर्मन के पुत्र ग्रहवर्मन ने विवाह भी किया। इस प्रकार गांधार या अफ़ग़ानिस्तान के निवासियों की पहुँच पञ्जाब में हुई और अपभ्रंश में और भी विदेशी शब्दों की भरमार होने लगी।

---

* राजपूताना का इतिहास, पृष्ठ १३०

आठवीं शताब्दी के आरम्भ में जब कि उत्तरी भारत के राजा आपस में लड़ रहे थे, मुसलमानों ने आक्रमण करना प्रारम्भ किया। अरब में ५७० ई० में मुसलमानों के पैग़म्बर हज़रत मोहम्मद का जन्म मक्का में हुआ। इस के बाद इनके ख़लीफ़ाओं की दृष्टि भारत पर पड़ी। मोहम्मदबिनकासिम ने ७१२ ई० में सिन्ध के मार्ग द्वारा देवल पर आक्रमण किया। देवल का राजा दाहिर हार गया, किन्तु अरब लोग अधिक काल तक भारत में नहीं टिक पाए। सबसे पहिला मुसलमान जिसने पञ्जाब पर आक्रमण किया वह सुबुक्तगीन था। ९८६ ई० में उसने पञ्जाब पर आक्रमण किया। भटिण्डा पञ्जाब का राजा जयपाल पर्याप्त शौर्य से लड़ा किन्तु पराजित हुआ। उसके पश्चात् महमूद ग़ज़नवी ने भारत पर १७ बार आक्रमण किए तथा पञ्जाब एवम् सिंध के कुछ भाग पर अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया। गज़नी ने अपना सोलहवाँ आक्रमण गुजरात में सोमनाथ पर किया था और वहाँ से दो करोड़ दीनार लूट कर ले गया। लौटते समय जाटों § ने उसकी सैना पर आक्रमण किया और उसका कुछ माल-असबाब लूट भी लिया। जाटों के व्यवहार से अप्रसन्न होकर उसने सत्रहवीं बार आक्रमण किया और मुलतान के समीप उन्हें भी पराजित किया।

पञ्जाब पर सन् ११८६—८७ ई० तक महमूद के वंश का अधिपत्य रहा। परन्तु इस वंश का अंतिम बादशाह खुसरो मलिक अशक्त एवं विलास प्रिय होने के कारण अवनति को न रोक सका। सन् ११८७ ई० में शहाबुद्दीन ने लाहौर पर आक्रमण किया और खुसरो मलिक को युद्ध में पराजित किया। इस प्रकार पञ्जाब ग़ौर वंश के हाथ में आ गया।

मुसलमान शासकों के हाथ में पञ्जाब आ जाने पर पंजाब में मुसलमानों की संख्या पर्याप्त मात्रा में हो गई। उनकी मातृ भाषा फ़ारसी या अरबी

§ 'जाट' लोगों को कुछ इतिहास कार यूनानी मानते हैं, उनका मत है कि यूनान की JATE जाति ही भारत में आने के पश्चात् 'जाट' बन गई। यद्यपि इसका ऐतिहासिक प्रमाण कोई भी प्राप्त नहीं होता, तथापि यह विचार न्याय-सङ्गत एवम् युक्ति युक्त प्रतीत होता है। प्रसिद्ध इतिहासकार टाड भी इसी मत का पोषक है—देखिए, 'टाड का राजस्थान'।

रही यही कारण है कि पंजाबी पर इन दोनों भाषाओं का पर्याप्त प्रभाव रहा। पंजाब में मुसलमानों का राज्य नवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक रहा। यही कारण है कि पंजाबी बोली पर इन दोनों बोलियों का पर्याप्त प्रभाव है। अरबी तथा फ़ारसी के कई शब्द तो पंजाबी में इतने विलीन हो गए हैं कि उनका वर्गीकरण करना ही दुर्लभ प्रतीत होता है। कौन कह सकता है कि अरबी भाषा से पञ्जाबी ने 'कहवा' तथा 'हलवा' जैसे शब्द लिए होंगे। तुर्की लोगों से हमने कलगी, कैंची, गलीचा, चाकू तथा तोप इत्यादि शब्द लिए। इसी प्रकार 'बाबा' अरबी में ज्येष्ठ या पिता को कहा जाता है, भारत में आकर यह 'बाबा' पिता के ही अर्थों में प्रयुक्त हुआ। अरबी में 'अमीर' शब्द का प्रयोग मुखिया या नेता के लिए होता है, पञ्जाब में आकर यह शब्द धनवान के लिए प्रयुक्त हुआ। फ़ारसी के तो ऐसे सहस्रों शब्द हैं जो पञ्जाबी में प्रयुक्त होते हैं—एवम् जिन्हें पञ्जाबी के विद्वान् साहित्यिक शुद्ध पञ्जाबी मानते हैं।

मुसलमानों के पश्चात् भारत में पुर्तगाली भी आए। फ्रांसिसी भी आए और आधुनिक युग से लगभग एक शताब्दी पूर्व तो पञ्जाबी ने ऐसे कई शब्दों को अपने में समा लिया जोकि विभिन्न विदेशी भाषाओं के शब्द थे।

अभीर या अहीर, गुर्जर—गूजर, जाट, गक्खड़, कैकेय, नट, यूनानी, सीथियन, हूण, शक, कुशान, मुखारी, अरबी, तुर्की, मुग़ल तथा अन्य मुस्लिम जातियों के विभिन्न शब्दों को पञ्जाबी ने पचाया है—यही नहीं कहीं कहीं तो अनेक परिवर्तनों ने आकर शब्दों के रूप को इतना परिवर्तित कर दिया है कि उनकी उत्पत्ति तथा परिवर्तनों का इतिहास ही ज्ञात होना कठिन हो जाता है।

पञ्जाब जनपद में कितनी जाति के एवम् कितने देशों के लोग समा गए हैं यह निश्चय पूर्वक कहना कठिन ही नहीं असम्भव भी है। सम्भवतः ही कोई ऐसी जाति प्राप्त हो जो पूर्णतयः शुद्ध आर्य कही जा सके। निश्चय है कि पञ्जाब भारत का उत्तरीय प्रवेश द्वार होने के कारण विभिन्न संस्कृतियों, वर्णों, जातियों, रीतिरिवाजों, बोलियों एवम् भाषाओं का सामूहिक प्रदेश बन गया। किन्तु, इतने सम्मिश्रण के पश्चात् भी इसमें वे पुरातन शक्ति-पुञ्ज अभी भी निहित हैं जिन पर पञ्जाब-जनपद का लोक स्वयं को गर्वोन्नत अनुभव करता है।

पंजाबी एवम् उसकी उप-भाषाओं की उत्पत्ति तथा विकास

किसी जाति, राष्ट्र, देश या कौम की उन्नति, सभ्यता, संस्कृति या उसके मानवीय विकास को परखने की कसौटी उसकी बोली ही है। राष्ट्र या जाति की उन्नति उसका साहित्य ही कर पाता है। प्रश्न यह उठता है कि राष्ट्र, कौम, देश या जाति में क्या अन्तर है। यदि मोटे हिसाब से देखा जाए तो भारत एक राष्ट्र है, भारत निवासी एक कौम के हैं एक देश के हैं—और एक विशेष जाति के—जिस जाति को 'भारतीय' के नाम से पुकारा जाता है। 'मार्क्सवाद तथा राष्ट्रीय प्रश्न' नामक पुस्तक में सोवियत रूस के नेता स्टालिन ने लिखा है—"राष्ट्र ऐतिहासिक तौर पर एक सूत्र में बद्ध वह कबीला या जाति है जो भूगोलिक तथा आर्थिक दृष्टि से एक इकाई वाले प्रदेश में बसती हो तथा जिसकी सामूहिक तौर से समान संस्कृति, सभ्यता तथा सभ्याचार हों। वे उसकी अंतरप्रदेशीय बोली से स्पष्ट झाँक उठते हैं।" यदि मनन किया जाए तो हम यही पायेंगे कि किसी भी देश की बोली वास्तव में उसकी सभ्यता, संस्कृति एवम् पुरातन वैभव की प्रतीक होती है।

मानव के मानसिक उद्गारों को उसकी बोली–शब्द, स्वर एवम् अभिव्यक्ति देती है, जिससे उसके चारों ओर एक ऐसा वातावरण बन जाता है कि जिसमें एक विशेष आकर्षण होता है और वह वातावरण उसके 'लोक' का प्रतीक होता है जो उसका सहायक बन उसमें जीवन सञ्चार कर उसे उठाता

है—बढ़ाता है, और सभ्यता एवम् संस्कृति का एक नया अध्याय जोड़ने में सहायक बन जाता है।

जिस व्यक्ति को भाषा की या बोली की देन प्रकृति ने नहीं दी है उस के विचारों, या भावाभिव्यक्ति के अभाव में, हम किसी प्रकार के भी विचार उसके लिए नहीं बना सकते। विचारों के न बनने से वह व्यक्ति समाज से दूर होता जाता है और असामाजिक प्राणी बन विश्व की कृपा-दृष्टि का पात्र बन जाता है। यदि उसी व्यक्ति को भाव, भाषा एवम् बोली मिल जाए तो वह अपने विचारों का बल पाकर अपनी सभ्यता, संस्कृति एवम् आचार विचारों का प्रदर्शन कर समाज का सम्माननीय व्यक्ति बन जाता है और एक सामाजिक प्राणी बन उचित आदर पा लेता है।

जो राष्ट्र आज उन्नत एवम् अपनी समृद्धि के द्योतक हैं उनकी उन्नति एवम् वैभव का मूल कारण एवम् अंतर्भेद यही है कि उन्होंने श्रेष्ठ से श्रेष्ठ ऐसे व्यक्तियों को जन्म दिया जिन्होंने अपनी बोली के द्वारा बोल कर या भाषा के द्वारा साहित्य रचना कर स्वयं को ही गौरवान्वित नहीं किया वरन् उस राष्ट्र को, देश को, जाति को या कौम को भी विश्व के श्रेष्ठ विचारकों की दृष्टि में सर्वोन्नत किया; और अपनी योग्यता का, सभ्यता का, संस्कृति का, साहित्य का एवम् दर्शन—विज्ञान आदि का फरेरा उन्नत कर विश्व की श्रेष्ठतम जातियों में अपना नाम अङ्कित करवाया।

हमारे आदि पुरुष जब पञ्जाब की उत्तरीय ऊँची ऊँची पहाड़ियों को पार कर खुले मैदानों में आए तो उन्हें वे लोग मिले जिन्हें हमारी धार्मिक पुस्तकें 'पिशाच' नाम से पुकारती हैं। आर्यों ने उन 'पिशाचों को अपने शक्तिबल से अधिक काल तक नहीं रहने दिया और उन्हें दक्षिण की ओर धकेल दिया। क्योंकि आर्यों को पञ्जाब की भूमि में आकर पर्याप्त संघर्ष करना पड़ा इस कारण उनका सहज मोह इस भूमि से हो गया और वे पर्याप्त समय तक यहाँ ही निवास करते रहे आगे नहीं बढ़े। मानव का स्वभाव है कि जिस वस्तु को वह विशेष प्रयत्नों से प्राप्त करता है उससे उसका लगाव भी विशेष हो जाता है—इसी प्रकार पञ्जाब की प्रशंसा में प्यार भरे गीत तत्काल ही गाये गए जो कहीं २ ऋगवेद में प्राप्त भी होते हैं।

विद्वानों का मत है कि जब मनुष्य को व्यक्त करने के लिए भाव एवम् विचार मिले तो उसकी वाणी फूट पड़ी और जब वाणी या बोली वैज्ञानिक तौर से निश्चित् हो गई तब उसमें स्मरण शक्ति की न्यूनता होने के कारण उसे लिपि की आवश्यकता हुई। मानव की प्रारम्भिक लिपि चित्रों से परिपूर्ण थी, अभी तक विद्वान् उसे भली-भाति पढ़ नहीं पाए हैं; किन्तु विद्वानों का अनुमान है कि ध्वनियों के अनुसार ही शब्दों का निर्माण हुआ; जैसे 'उल्लू' बोलने के लिए उन्हें 'उ' तथा 'ल' की आवश्यकता थी; सम्भवतः उन्होंने 'उ' का रूप उल्लू पक्षी के समान ही बनाया प्रतीत होता है; इसी प्रकार 'ल' के लिए उन्होंने लोमड़ी का रूप बना दिया क्योंकि यह टाँगों वाला जानवर था—इसी प्रकार 'ल' की भी टांगें हैं; इसी प्रकार उन्होंने स्वरों या व्यञ्जनों को या तो किसी एक विशेष नाम के या विचार के अनुसार बनाया होगा—प्रतीत होता है। ध्वनियों के भिन्न २ स्वरूपों के चित्र-चिन्ह तो पर्याप्त समय पाकर ही बने होंगे यह निश्चय ही है।

जब ध्वनियों ने रूप पा लिया तब मनुष्य वृक्षों के तनों पर या उनकी छालों पर, पशुओं की चमड़ी पर, ताम्र पत्रों पर, पत्थरों पर या भोज-पत्रो पर लिखने लगा। भोजपत्रों पर लिखने का वैज्ञानिक तरीका—उस पर तेल लगा कर अच्छी तरह घोटने के पश्चात् चिकना बना कर लिखने का नियम तो सम्भवतः मनुष्य ने कई शताब्दियों बाद खोज पाया होगा। आज भी हमें अनेकों शिलालेख, ताम्र-पत्र, भोज-पत्र तथा स्तम्भादि पर पुरातन काल की लिपियाँ मिलती हैं जिन्हें भली प्रकार विद्वजन पढ़ नहीं पाए हैं। पुरातन भाषा के नमूने प्रायः भट्टाक्षरी, ब्राह्मी एवम् संस्कृत में ही प्राप्त होते हैं। पंजाबी का उद्गम वैदिक संस्कृत से ही माना जाता है जो कि ऋग्वेद की भाषा थी एवम् विश्व की प्राचीनतम भी।

जैसा कहा जाता है कि 'प्रत्येक बारह कोस पर बोली बदलती है'—वही कहावत पंजाबी के लिए भी चरितार्थ होती है। अन्य बोलियों के समान ही पंजाब की बोली में भी कुछ २ अन्तर पर पर्याप्त अन्तर होता जाता है। अम्बाला के आसपास जो बोली है वह लुधियाना से भिन्न है, लुधियाना में जिस बोली का प्रयोग होता है उसका पटियाला में नहीं; पटियाला या लुधि-

याना में जो बोली बोली जाती है उसका प्रयोग अमृतसर में नहीं होता—इसी प्रकार होशियारपुर, फ़िरोज़पुर, बटाला, पठानकोट, लायलपुर तथा अन्य विभागों की बोलियों में भी कुछ २ अंतर पर थोड़ा अंतर होता जाता है।

पंजाब के क्षेत्र के संबंध में हम अन्यत्र लिख चुके हैं यहाँ उसके संबंध में पुनः लिखना अनुपयुक्त ही प्रतीत होता है। केन्द्रीय पंजाबी अमृतसर के आसपास के प्रदेश में बोली जाती है। शेष विभागों की पंजाबी एक दूसरे से अंतर रखती चली गई है। पंजाब की राजनैतिक सीमा यद्यपि दिल्ली तक है किन्तु सरहिन्द से दिल्ली तक, थोड़े से 'पोआध' के इलाके को छोड़ कर शेष प्रदेश हरियाना कहलाता है वैसे, राठी, भटिया'नी तथा 'पुआधी' बोलियाँ भी इस प्रान्त में बोली जाती हैं। इसी प्रकार शिमला के आसपास का प्रदेश भी पजाब से संलग्न है जहाँ कहिलूरी, बिलासपुरी इत्यादि बोलियों का चलन है। इसी प्रकार राजस्थान का भी कुछ भाग पंजाब से मिलता है जहाँ राजस्थानी भाषा की ही उपबोली बीकानेरी का प्रयोग होता है जिसमें पंजाबी के विभिन्न शब्दों ने अपना स्थान बना लिया है।

अन्य बोलियों या भाषाओं के समान पंजाबी भी संस्कृत के पर्याप्त निकट की भाषा है। यही नहीं यदि हम यह कहलें कि पंजाबी का ही प्रारम्भिक रूप वेदों में है तो भी अतिशयोक्ति न होगी। आज से लगभग ५. हज़ार वर्ष पूर्व जब आर्यगण भारत में आए तो उनका निवास निश्चय ही सर्व प्रथम पंजाब की ही पवित्र भूमि में रहा। विद्वानों का मत है कि विश्व का आदि-ग्रन्थ ऋग्वेद पंजाब की ही पंचामृतीय भूमि पर रचा गया था। उस समय पंजाब यद्यपि सप्त-सिंधु नाम से पुकारा जाता था किन्तु यह निश्चय है कि ऋग्वेद की वितस्ता, विपाशा, इरावती, अश्विनी तथा शतद्रू नामक कल २ नाद करती हुई किल्लोलिनी सरितायें इसी भूमि पर थीं जहाँ ऋग्वेद के संहिता-कार ने उन्हें आदिग्रंथ में सँजोया। ऋग्वेद—कालीन लोक कितना महान था, सांस्कृतिक था, कलामय था कि उसका 'साहित्य' आज भी अजर-अमर है और विश्व में अपनी पुरातनता की धाक जमाए हुए है।

केवल भारतीय विद्वान ही नहीं वरन् यूरोपीय विद्वान् भी इस सत्य से

इनकार नहीं कर सकते कि विश्व की प्राचीनतम भाषा संस्कृत है--यही नहीं एक वह भी समय था जब अखिल विश्व की भाषा ही संस्कृत थी।

"किसी समय संस्कृत सम्पूर्ण संसार की बोल-चाल की भाषा थी।"

—मि० बाप ‡

"निस्सन्देह मनुष्य की मूल भाषा एक ही थी।"

—मेक्समूलर

यह निश्चय ही है कि मानव की अर्वाचीन एवम् प्रारम्भिक संस्कृति वैदिक थी। वैदिक संस्कृति के पूर्व ऐसी कोई भी संस्कृति हमें प्राप्त नहीं होती जो कि पूर्ण हो या जिनकी भाषा या बोली का हम किसी प्रकार का भी अनुमान लगा सकें। वेदों की भाषा तत्कालीन लोक भाषा थी या साहित्यिक या नागरिक भाषा। इस पर भी पहिले विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है। हमारे लिए यह जान लेना अत्यावश्यक है कि वेदों की भाषा लोक-भाषा ही थी। इस संबंध में "पाली प्रकाश" पृष्ठ २७-२८ पर बङ्गाल के प्रसिद्ध एवम् प्रकाण्ड विद्वान् विधुशेखर शास्त्री लिखते हैं--"परिवर्तनशीलता बोलचाल की भाषा का स्वभाव है। वह चिरकाल तक एक भाव से नहीं रहती। देश, काल और व्यक्ति भेद से भिन्न २ रूप धारण करती है। वैदिक भाषा में भी यही बात पाई जाती है। उस समय कोई 'क्षुद्रक', कोई कहता है 'क्षुल्लक'। एक बोलता है 'युवाम्' और दूसरा 'युवम्'। किसी के मुख से 'पश्चात्' सुनते हैं तो दूसरे के द्वारा 'पश्चा', कोई 'युष्मासु' कहता है और कोई 'युष्मे' कहता है। इसी प्रकार 'देवा:'—'देवास:' 'श्रवण'—'श्रोणा', 'अवद्योतयति' अव 'ज्योतयति' इत्यादि भिन्न प्रकार का व्यवहार होता है। कोई किसी स्थान पर प्रतिपादक शब्दों के पश्चात् विभक्तियों का प्रयोग बिलकुल नहीं करता, जैसे-'परमेव्योमन्' और कोई करता है। कोई किसी शब्द का कोई अंश लोप करके उसका उच्चारण करता है; जैसे-'त्मना' कोई ऐसा नहीं करता। कोई विशेष्य के अनुसार विशेषण के लिङ्गादि को भी ठीक करके उसका व्यवहार करता है, कोई उसकी चिंता नहीं करता, जिसमें उसे सुविधा होती है, जैसे-'बहुला पृथूनि भुवनानि विश्वा', कभी कोई संयुक्तवर्ण के पूर्व-स्थित दीर्घ स्वर

‡ Edinburgh Rev. Vol. XXXIII, 3. 43

को ह्रस्व करके उच्चारण करता है, जैसे—'रोदसिप्राम्' और अनेक अवस्थाओं में ऐसा नहीं करता है। एक मनुष्य किसी अक्षर को जैसे उच्चारण करता है, दूसरा उसका दूसरी प्रकार से उच्चारण करता है। एक 'ड' किसी स्थान पर 'ल' और कहीं 'ल्' उच्चारित होता है (देखो ऋ० प्रा० १–१०–११) पदान्त में वर्ग के तृतीय वर्ण को उच्चारण करते हैं। जिनका वैदिक भाषा से थोड़ा परिचय है वे भली-भांति जानते हैं कि वैदिक भाषा में इस प्रकार प्रयोगों की कितनी भिन्नता है। यह बात भली भांति प्रमाणित करती है कि वैदिक भाषा बोल चाल की भाषा थी।"

सम्भव है कि एक मत से विभिन्न विद्वान इस मत में अपनी सहमति न दें किन्तु यह तो नितान्त सत्य ही है कि वेदों का रचित साहित्य तत्कालीन लोक-साहित्य ही है। वेदों को 'श्रुति' भी कहते हैं जिसका अर्थ 'सुना हुआ' है, इससे यह निस्कर्ष निकलता है कि वेदों में लोकसाहित्य भी संग्रहित है। सम्भव है कुछ विद्वान यह भी कहें कि संसार की प्रारम्भिक एवं अर्वाचीन भाषा संस्कृत नहीं थी; यदि उनसे पूछा जए कि उनकी मूल भाषा क्या थी—तो वे सिवाय इसके कि वैदिक मंत्रों की ओर संकेत करें—और क्या कह सकते हैं। निश्चय ही ऋग्वेद संसार का प्रारम्भिक एवम् अर्वाचीन ग्रंथ है एवम् संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषा। यदि यह भी मान लिया जाए कि वैदिक भाषा तत्कालीन बोलचाल की भाषा नहीं थी वरन् साहित्यिक भाषा थी; तो भी यह निश्चय है कि साहित्यिक या नागरिक भाषा में बोलचाल की भाषा या लोक-भाषा का प्रभाव निश्चित् रहता है। साहित्यिक होने से किसी भी भाषा का रूप पूर्णतयः परिवर्तित नहीं होता वरन् उसकी विशेषतायें उसमें निहित रहती हैं; अन्यथा वह उस भाषा की रचना हो ही नहीं सकती। लोक भाषा या ग्रामसाहित्य में आप देखेंगे कि उस भाषा का वास्तविक रूप उसमें निश्चित् रूप से स्पष्ट झलकता है। वरन् हम यहाँ तक कह सकते हैं कि लौकिक भाषा ही साहित्यिक भाषा की जननी होती है तथा लौकिक भाषा हृदय की गहराई को अधिक स्पर्श कर लेती है।

कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि वेदों की भाषा संस्कृत नहीं थी वरन् प्राकृत थी। वैदिक का अर्थ प्राचीन मानते हैं तथा उसे प्रकृति की देन

मानते हुए स्वाभाविक तौर से उसका नाम प्राकृत ही रखते हैं। उनके मतानुसार प्राकृत (वैदिक) से संस्कृत का निर्माण हुआ जो कि कालान्तर में विद्वानों की, साहित्यिकों की या नागरिकों की भाषा बन गई। वाल्मीकि रामायण के सुन्दर काण्ड के ११वें सर्ग में संस्कृत (द्विज भाषा) के अलावा एक और लोक-भाषा का भी संकेत मिलता है—महर्षि ने हनुमान तथा सीता के साक्षात् के समय हनुमान जी द्वारा कहलवाया है कि यदि वे संस्कृत में बोले तो सीता जी उन्हें ब्राह्मण समझ लेंगी इस कारण वे संस्कृत में नहीं बोलते वरन् तत्कालीन लोक-भाषा में ही उससे वार्त्तालाप करते हैं।

"सर्व-ज्ञात भाषाओं में से संस्कृत अतीव नियमित है, और विशेषतयः इस कारण अद्भुत है कि उसमें यूरोप की अद्यकालीन भिन्न-भिन्न भाषाओं और प्राचीन भाषाओं के धातु हैं।*" यह निश्चय ही है कि संस्कृत भाषा से वैदिक अभिप्रेत हैं न कि लौकिक-संस्कृत। संस्कृत ही विश्व की विभिन्न भाषाओं की जननी मानी जाती है मि० एडलिंग के मतानुसार—"यह देख कर कि भाषाओं की एक बड़ी संख्या का प्रारम्भ संस्कृत से है, या यह कि संस्कृत से उसकी समधिक समानता है, हम को बड़ा आश्चर्य होता है, और यह संस्कृत के बहुत प्राचीन होने का पूरा प्रमाण है। रेडियर नाम के एक जर्मन लेखक का यह कथन है कि संस्कृत सौ से अधिक भाषाओं और बोलियों की जननी है। इस संख्या में उसने बारह भारतवर्षीय, सात मीडियन फ़ारसी दो अरनाटिक अलबानियन, सात ग्रीक, अट्ठारह लेटिन, चौदह इस्क्लेवानियन और छः गेलिक केल्टिक को रखा है।"

लेखकों की एक बड़ी संख्या ने संस्कृत को ग्रीक और लेटिन एवम् जर्मन भाषा की अनेक शाखाओं की जननी माना है! या इनमें से कुछ को संस्कृत से उत्पन्न हुई, किसी दूसरी भाषा द्वारा निकला पाया है, जो कि अब नष्ट हो चुकी हैं। सर विलियम जोन्स और दूसरे लोगों ने संस्कृत का लगाव पारसी और ज़िन्दभाषा से भी पाया है। हालहेड ने संस्कृत और अर्बी शब्दों में समानता पाई है, और यह समानता केवल मुख्य मुख्य बातों या विषयों में ही नहीं वरन् भाषा की तह में भी उन्हें मिली है। इसके अतिरिक्त इण्डोचाइनीज़

* "Lectures on the Natural Sciences"—मि० क्यूविर

और उस भाग की दूसरी भाषाओं का भी उसके साथ घनिष्ट सम्बन्ध वे मानते हैं। ¶

इसी प्रकार साहित्यमनीषि पंडित अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' नामक पुस्तक में संसार की आर्य जातीय भाषाओं के साथ वैदिक भाषा का सम्बन्ध प्रगट करने के लिए कुछ शब्द दिए हैं, जो इस प्रकार हैं। इससे उन्होंने सिद्ध किया है कि प्राचीनतम भाषा संस्कृत ही है—

संस्कृत	मीडी	यूनानी	लैटिन	अंग्रेज़ी	फ़ारसी
पितृ	पतर	पाटेर	पेटर	फ़ादर	पिदर
मातृ	मतर	माटेर	मेटर	मदर	मादर
भ्रातृ	ब्रतर	फाटेर	फेटर	ब्रदर	बिरादर
नाम	नाम	आनामा	नामेन	नेम	नाम
अस्मि	अह्मि	ऐमी	एम	ऐम	अस

उपर्युक्त शब्दों का मनन करके तथा इनका साम्य देख कर यह बात माननी पड़ेगी कि वैदिक भाषा अथवा आर्य जाति की वह भाषा जिसका वास्तविक एवम् व्यापक रूप हमें वेदों में उपलब्ध होता है, आदि-भाषा अथवा मूल भाषा है। आजकल के परिवर्तित और नूतन विचारों के अनुसार यदि संसार भर अथवा यूरोपीयन भाषाओं की जननी उसे न भी माने तब भी आर्य परिवार की जितनी भाषायें हैं, उनकी आधारभूता और जन्मदात्री तो उसे हमें मानना ही पड़ेगा।

वेदों को हम भारतवर्ष के धार्मिक एवम् आदि-ग्रंथ मानते हैं यदि वे धार्मिक न होते तो यह निश्चय ही था कि उनका अस्तित्व ही न रहता। अच्छा ही हुआ कि वे धार्मिक होने के कारण भारतीय जनता के सम्मान की वस्तु बने रहे अन्यथा तत्कालीन लोक-गीतों को जो कि पञ्जाब-जनपद की अमूल्य

¶ देखिए—"Adeling's Sanskrit Literature" P. P. 30–40

निधि थी का अस्तित्व ही नहीं मिलता और पञ्जाब एवम् पञ्जाबी यह गर्व न कर पाते कि विश्व का आदिग्रंथ उनकी ही पुरातन भाषा में, उनके ही आदि पुरुषों ने एवम् उनकी ही पवित्र भूमि पर रचा गया है।

कुछ लोग इस बात को मिथ्या मात्र ही मानेंगे किन्तु ऐसे अनेक शब्द पञ्जाबी में प्राप्त होते हैं जो वैदिक भाषा से सीधे पञ्जाबी में आ गए हैं; जैसे—पिण्डा, कलावा, कूण्डा, पिंजरा, पिता, हाला, फुल्ल, पुञ्ज, लट्ठ, पट्ट, दोहत्रा, कज्जल, अङ्गार, गाँ, चङ्गा, हड्ड, लघना, वल्ल, पिंजना, निसरना, गच्छना, अच्छना, तुरना, सज्जा, काणा, काला इत्यादि। ऐसे शब्द तो सहस्रों मिल सकेंगे जो कुछ थोड़े से परिवर्तित होकर नित्य प्रति पञ्जाबी में प्रयुक्त होते हैं।

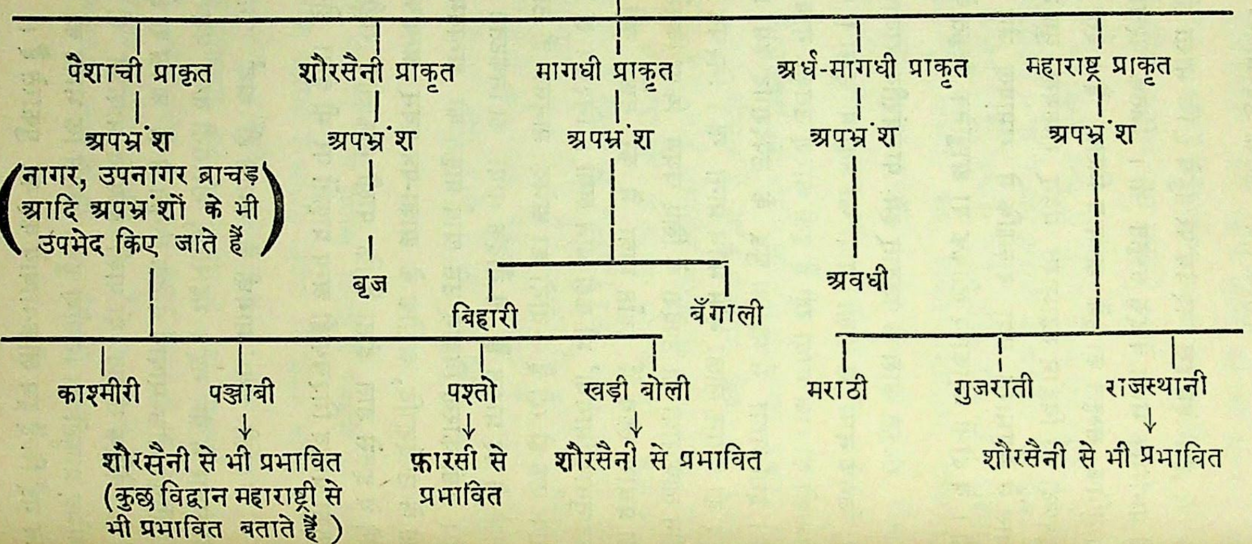
यही नहीं शब्दों के अलावा भी दोनों बोलियों की वाक्य रचना के नियम भी समान ही हैं। प्रायः संस्कृत में नाम, सर्वनाम क्रिया का प्रयोग भिन्न नहीं होता; वरन् शब्द में ही कोई परिवर्तन करके या कोई शब्द जोड़ कर काम निकाला जाता है; जैसे 'रामने' के स्थान पर 'रामेण', 'राम को' के स्थान पर 'रामम्' 'राम का' के स्थान पर 'रामस्य' इसी प्रकार पञ्जाबी की वाक्य रचना भी संस्कृत के समान ही होती है जैसे 'बाज़ार से' कहने की बजाय 'बाज़ारों', 'दूकान के बीच में से' की बजाय 'दुकान्नों', 'राम ने मारा' कहने की बजाय 'रामे मारिया', अमुक वस्तु 'काहे में पड़ी है' कहने की अपेक्षा किस्च पई है ?" इत्यादि।

इसके अलावा और भी कई ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वैदिक भाषा पञ्जाबी के अधिक निकट थी किसी अन्य भाषा के नहीं, देखिए ऋग्वेद ५/८५, ४/६/३, ७/८६/१/५ तथा ८५, १/४८/३ तथा १०/५४ इत्यादि जिन में क्रमशः बार शब्द द्वार के लिए 'दुलभ' शब्द दुर्लभ के लिए, 'भूम' शब्द भूमि के लिए, 'क्राणा' शब्द कराने के लिए तथा 'साकम' शब्द रिश्तेदारी के लिए प्रयोग में लाए गए हैं। पञ्जाबी में ये शब्द 'बार', 'दुलभ', 'भूम', 'कराणा', तथा 'साक' इत्यादि ज्यों के
में आते हैं।

ऊपर हम इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि भारत की और प्रधानतः पञ्जाब की प्रारम्भिक भाषा वैदिक संस्कृत थी। जिसके पश्चात् लौकिक संस्कृत या आधुनिक संस्कृत का हमें आभास मिलता है। ईसा से लगभग पाँच-छह शताब्दी पूर्व विद्वान महाभारत एवम् रामायण युग मानते हैं जिसमें महर्षि व्यास ने महाभारत तथा बाल्मीकि ने रामायण जैसे महाकाव्यों की रचना की। ये दोनों महाकाव्य लौकिक या आधुनिक संस्कृत के श्रेष्ठ नमूने हैं।

संस्कृत काल के पश्चात् हमें पालवंशीय राजाओं का शासन मिलता है, जिनके नाम से पाली भाषा का उद्गम हुआ। पाली भाषा पालवंशीय राजाओं की राज भाषा रही है इसी कारण उसका नाम पाली पड़ा प्रतीत होता है। इसी भाषा में महात्मा बुद्ध के उपदेशादि हमें प्राप्त होते हैं। भगवान् बुद्ध की प्रधान लीला भूमि मगध प्रान्त थी। निश्चय है कि उन्होंने तत्का-लीन लोकभाषा को उपदेश के लिए चयन किया जिससे कि वे अपने विचारों का प्रचार लोक में पर्याप्त मात्रा में कर सकें। यही पाली कई विद्वानों के मतानुसार 'मागधी' भी कही जाने लगी। निश्चय ही 'पाली' एवम् 'मागधी' भाषा एक ही रही है—दोनों का अभेद मानना ही उचित प्रतीत होता है। पाली ही वह प्राकृत है जो वैदिक भाषा की निकटतम भाषा कही जा सकती है। इसी कारण विद्वान् उसे आर्ष प्राकृत का अन्यतम रूप मानते हैं। बौद्ध मत के उपदेशादि, अशोक के आज्ञा-पत्र एवम् अन्य कार्य क्योंकि पाली में ही होते थे इससे ज्ञात होता है कि पाली तत्कालीन राष्ट्रीय भाषा बन गई थी; इसका प्रभाव निश्चय ही अन्य प्राकृतों पर भी हुआ होगा।

पाली तथा मागधी के समान ही अर्द्ध मागधी तथा बौद्ध मागधी कालान्तर में बन गई। महाराष्ट्री, शौरसैनी तथा पैशाची प्राकृतें भी विभिन्न प्रान्तों की लोक-भाषायें वैदिक संस्कृत से ही अपभ्रंश हो कर बनीं। निश्चय है कि वैदिक संस्कृत या पाली इत्यादि भाषाओं की टूट-फूट या मिश्रण से विभिन्न प्राकृतों का निर्माण हुआ जिनसे कि भारत की विभिन्न प्रान्तीय भाषायें बन गईं जिन्हें हम लोक-भाषायें कह कर पुकारते हैं।



वैदिक संस्कृत
लौकिक संस्कृत या आधुनिक संस्कृत
{कई विद्वान् पाली को भी मागधी आदि के साथ प्राकृत का ही छठा भेद मानते हैं}
पैशाची प्राकृत
शौरसैनी प्राकृत
मागधी प्राकृत
अर्ध-मागधी प्राकृत
महाराष्ट्र प्राकृत
अपभ्रंश
अपभ्रंश
अपभ्रंश
अपभ्रंश
अपभ्रंश
(नागर, उपनागर ब्राचड़ आदि अपभ्रंशों के भी उपभेद किए जाते हैं)
बृज
बिहारी
बँगाली
अवधी
काश्मीरी
पञ्जाबी
पश्तो
खड़ी बोली
मराठी
गुजराती
राजस्थानी
शौरसैनी से भी प्रभावित (कुछ विद्वान महाराष्ट्री से भी प्रभावित बताते हैं)
फ़ारसी से प्रभावित
शौरसैनी से प्रभावित
शौरसैनी से भी प्रभावित

पञ्जाबी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों के दो मत हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि पञ्जाबी की उत्पत्ति शौरसैनी प्राकृत से हुई तथा कुछ का मत है कि पैशाची प्राकृत से पञ्जाबी की उत्पत्ति हुई। पञ्जाबी के विद्वान डॉ० मोहन सिंह के मतानुसार तो पञ्जाबी पर महाराष्ट्र प्राकृत का भी प्रभाव है। विभिन्न विद्वानों के विचारों का प्रतिपादन करते हुए हमें निश्चित् परिणाम पर पहुँचना है कि वास्तव में पञ्जाबी किन किन प्राकृतों से बनी है। प्रसिद्ध भाषा शास्त्री डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी के मतानुसार * "सारे उत्तर भारत में जिस समय प्राकृत या प्रादेशिक बोलियाँ प्रचलित हुईं, उस समय प्राकृतों के अन्तर्वेद—विशेषतया ब्रह्मर्षिदेश या कुरुपांचाल की प्राकृत शौरसैनी सर्व श्रेष्ठ मानी जाती थी……………ईसवी सदी के प्रारम्भ से संस्कृत के बाद उत्तर में शौरसैनी भद्र-समाज में बोली जाती थी, इस का प्रभाव दूसरी प्राकृत बोलियों पर भी पड़ा। भाषा तत्व के विचार से ग्रियर्सन आदि पंडितों ने राजस्थान, गुजरात, पञ्जाब और अवध की प्राकृत बोलियों पर शौरसैनी का विशेष प्रभाव स्वीकार किया है। राजस्थानी, गुजराती और अवधी के विकास में शौरसैनी ने बहुत काम किया है।"

डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी से एक क़दम और आगे बढ़ कर श्री० हरिऔध कहते हैं—

"पश्चिमी भारत की वर्त्तमान भाषाओं का सम्बन्ध नागर अपभ्रंश से है, उसका ही एक रूप शौरसैनी है और दूसरा 'आवन्ती'। शौरसैनी का का विस्तार पश्चिमी हिन्दी और पञ्जाबी में देखा जाता है; और आवन्ती का प्रभाव राजस्थानी और गुजराती में। कहा जाता है पञ्जाब से लेकर नैपाल तक के पहाड़ी प्रदेशों में जो भाषा इस समय बोली जाती है, उसका सम्बन्ध भी उज्जैन प्रान्त की 'आवन्ती' भाषा के अपभ्रंश से ही है, क्योंकि राजस्थानी भाषाओं का ही अन्यतम रूप इन पहाड़ी भाषाओं में पाया जाता है।"

इसी प्रकार डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी ने इस अपभ्रंश भाषा के लिए कहा है—

* "Indo-Aryan & Hindi" by Dr. Suniti Kumar Chaterjee 1942.

"ईसवी प्रथम सहस्र वर्षों के बीच में प्राचीन भारतवर्ष में एक नवीन राष्ट्र या साहित्यिक भाषा का उद्भव हुआ। यह अपभ्रंश भाषा थी, जो शौरसैनी-प्राकृत का एक रूप थी। अपभ्रंश भाषा—अर्थात् यह शौरसैनी अपभ्रंश पञ्जाब से बङ्गाल तक और नैपाल से महाराष्ट्र तक साधारण शिष्ट भाषा और साहित्यिक भाषा बनी। लगभग ई० सन् ८०० से १३ या १४ सौ तक शौरसैनी अपभ्रंश का प्रचार काल था। गुजरात और राजपूताने के जैनों के द्वारा इसमें एक बड़ा साहित्य बना। बङ्गाल के प्राचीन बौद्ध-सिद्धाचार्य-गण इसमें पद रचते थे जो अन्त में भोट (तिब्बती) भाषा में उलथा किए गए। इसके अतिरिक्त भारत में इस अपभ्रंश में एक विराट-लोक साहित्य बना। जिसके टूटे-फूटे पद और गीत आदि हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण और प्राकृत पिंगल और छन्दों के, ग्रन्थ में पाए जाते हैं। शौरसैनी अपभ्रंश की प्रतिष्ठा के कई कारण थे। ईसवी प्रथम सहस्रक की अंतिम सदियों के राजपूत राजाओं की सभा में यह भाषा बोली जाती थी, क्यों कि यह भाषा उसी समय मध्य देश और उसके संलग्न प्रान्तों में, आधुनिक 'पछाँह' में—साधारणतया घरेलू भाषा के स्वरूप में इस्तेमाल होती थी। द्वितीय कारण यह है कि इस समय गोरखपंथी आदि अनेक हिन्दू समुदाय के गुरु लोग जो पञ्जाब और हिन्दुस्तान से नव-जागृत हिन्दू धर्म की वाणी लेकर भारत के अन्य प्रदेश में गए, वे भी इसी भाषा को बोलते थे, इसमें पद आदि बनाते थे और इसी में उपदेश देते थे। उसी समय उत्तर भारत के कन्नोजिया आदि ब्राह्मण बङ्गाल आदि प्रदेश में ब्राह्मण-आचार और संस्कृति ले उपनिविष्ट हुए। इन सब कारणों से आज से लगभग एक हज़ार वर्ष पूर्व, जिसे हम हिन्दी का पूर्व-रूप कह सकते हैं, वही शौरसैनी अपभ्रंश ठीक उसी प्रकार जैसे आजकल हिन्दी राष्ट्रभाषा बनी है, एक राष्ट्रीय, साहित्यिक तथा धार्मिक भाषा हुई थी।

उक्त विद्वानों के उद्धरणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस प्रकार शनैः शनैः वैदिक संस्कृत परिवर्तित होती हुई आधुनिक प्रान्तीय भाषाओं के रूप में अवतरित हुई। उपर्युक्त विद्वानों के मतानुसार पञ्जाबी शौरसैनी से ही अपभ्रष्ट होकर बनी है। यही विचार प्रसिद्ध भाषा शास्त्री

ग्रीयर्सन के भी हैं ‡। उनके मतानुसार भी पञ्जाबी शौरसैनी का ही बिगड़ा हुआ रूप है।

दूसरे मत का समर्थन भी कई विद्वान् करते हैं, डॉ० आर० जी० भण्डारकर के मतानुसार पैशाची–प्राकृत आर्य जाति के उस कबीले की भाषा है जो अपनी जाति वालों के साथ बहुत देर तक रही। जैसे मैदानी तथा पहाड़ी या जङ्गल की बोली में अन्तर है–इसी तरह पैशाची तथा अन्य प्राकृतों में अन्तर है। पंजाब के निवासियों के साथ भी उक्त तर्क सही प्रतीत होता है, अतएव उनकी भाषा पर भी सम्भवतः पैशाची प्राकृत का पर्याप्त प्रभाव है। पैशाची भाषा के कई शब्द पंजाबी में प्राप्त होते हैं।

उपाध्याय जी के मतानुसार—पैशाची भाषा उस आर्य दल की भाषा है जो उत्तर से आए एवम् वे आर्यों के दूसरे दल के लोग थे जो कुछ काल पश्चात् आए। ये लोग आगे नहीं बढ़े यहीं आकर बस गए, इसी कारण सम्भवतः मध्य देश के लोग इन्हें पैशाच कहते हों। विद्वानों ने पैशाची के दो रूप मुख्य माने हैं—(१) शुद्ध पैशाची, (२) मिश्रित पैशाची। शुद्ध पैशाची के सात भेद हैं—[१] कैकेय [२] शौरसैनी [३] पाचार [४] गौड़ [५] मागधी [६] व्राचड़ [७] पैशाचिका (सूक्ष्म भेद) §।

श्री हार्नेल (१८८० ई० Grammer of the Eastern Hindi) का मत है कि आर्यों के भारत में दो दल आए, एक पहिले आया और दूसरा बाद को। जो दल पहिले आया, वह मध्य देश में आकर वहीं बस गया। इस दल के बाद जो दूसरा दल था वह पहिले दल से अधिक प्रबल था। अतएव इन्होंने अपने सजातीय प्रथम दल को मध्य देश से निकाल बाहर किया। मध्य देश से निकाले गए आर्य उसके चारों ओर फैल गए और वहीं बस गए। नवागत आर्य 'बहिरङ्ग' कहलाए। अंतरङ्ग आर्यों में ही वैदिक संस्कृत और ब्राह्मण कालीन विचारों का वृहद विकास हुआ। 'अंतरङ्ग' आर्यों की भाषाओं में पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी पंजाबी, राजस्थानी

‡ Linguistic Survey of India Vol. IX Chapter 1. Grierson.

§ विस्तार के लिए देखिए "शब्द चमत्कार"—प्रो० रामसिंह पृष्ठ २९२-२९३

गुजराती और पश्चिमी पहाड़ी आती हैं। 'बहिरङ्ग' आर्यों की भाषाओं में मराठी, उड़िया बिहारी, बङ्गाली, आसामी, सिंधी तथा पश्चिमी पंजाबी आती हैं। इस सिद्धांत को प्रायः सभी भाषा शास्त्री आदर की दृष्टि से देखते हैं एवम् अपना मत निर्धारण करते हैं।

ऊपर हमने देखा कि कुछ विद्वानों के मतानुसार पंजाबी का निकास शौरसैनी प्राकृत से हुआ है, तथा कुछ विद्वान् इसका सम्बन्ध पैशाची से जोड़ते हैं। साथ ही डॉ० मोहन सिंह अपना एक अलग से यह भी मत प्रगट करते हैं कि पंजाबी पर महाराष्ट्र प्राकृत का भी पर्याप्त प्रभाव है†। उक्त विचारों का मनन कर हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि पश्चिमी पंजाब की ओर तो जहाँ 'अंतरङ्ग' आर्यों का निवास रहा पंजाबी पर पैशाची प्राकृत का प्रभाव रहा। इस प्रदेश में लहँदी जो कि सीमा प्रान्त की बोली थी—भी सम्मिलित है प्रसिद्ध भाषा शास्त्री ग्रियर्सन ने इस लहिंदी को पंजाबी से भिन्न बताया है, जो न्याय संगत प्रतीत नहीं होता। वास्तव में 'लहिंदी' पंजाबी की ही उप-भाषा है। लहिंदी का अर्थ है 'अस्त होती हुई दिशा' अर्थात् पश्चिम। नीचे हम मुलतान के कवि अलीहैदर की एक 'सिहरफ़ी' देते हैं जो 'लहिंदी' पंजाबी के समीप ही नहीं वरन् पंजाबी का ही एक अङ्ग है—

"तोए तलब मैंडी हक पाक वल्लों
तोड़े नाल गुनाहाँ दे अट्ठी हाँ मैं
मक्खणे दी हम-साई हाँ मैं
तोड़े छाह निमानड़ी खट्टी हाँ मैं
अलीहैदर जान शराब दी दाँ
तेंड़े ख़ाक निमाणी दी मट्टी हाँ मैं"

उक्त सिहरफ़ी से हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि 'लहिंदी' पंजाबी ही है। 'लहिंदी' को अधिकतर विद्वान् पिशाची मानते हैं जो कि 'अंतरङ्ग' आर्यों की भाषा थी। अतएव यह निश्चय है कि पश्चिमी पंजाब में बोली जाने वाली पंजाबी पर पैशाची का समुचित प्रभाव था।

डॉ० मोहन सिंह का जो कथन है कि महाराष्ट्री प्राकृत का भी पंजाबी

† देखिए 'साहित्य-सरोवर' पृष्ठ ७२; डॉ० मोहन सिंह एम०ए०, पी०एच०डी०

पर प्रभाव है, यह तर्कयुक्त प्रतीत नहीं होता क्यों कि यदि पञ्जाबी में कहीं २ ऐसे शब्द मिल भी जाएँ जो कि महाराष्ट्री प्राकृत के हैं तो यह कह देना कि महाराष्ट्री प्राकृत का समान प्रभाव पंजाबी पर है उपयुक्त नहीं है। महाराष्ट्री प्राकृत में 'लाने' के अर्थ के लिए 'घेना' शब्द का प्रयोग होता है। पञ्जाबी के मुलतान आदि प्रदेश में तथा 'सिंधी' या बहावलपुरी बोली में यही शब्द 'घिन' बन कर प्रयुक्तहोता है। इसी प्रकार 'स्त्री' के अर्थ में महाराष्ट्री प्राकृत में 'रनु' का प्रयोग होता है जो कि पंजाबी में 'रन्न' बन गया है। ऐसे ही उंगलियों पर गिने जाने योग्य कुछ शब्द और भी मिल जायेंगे जिनके आधार पर यह कह देना कि महाराष्ट्री प्राकृत का भी प्रभाव पञ्जाबी पर है, अनुपयुक्त ही है।

बहिरङ्ग आर्य जो कि पंजाब के पूर्वी भाग में बसे उनकी भाषा पर शौरसैनी का प्रभाव है। शौरसैनी प्राकृत के सहस्रों शब्द पञ्जाबी में मिलते हैं। पंजाबी के अधिकतर विद्वान् भी इसी मत के हामीदार हैं। पञ्जाबी में जो थोड़े परिवर्तन हो गए हैं वे इस प्रकार हैं-रक्त से रत्त, सत से सत्त, अष्ट से अट्ठ, मनुष्य से मनुक्ख, हस्त से हत्थ इत्यादि।

हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि पंजाबी पर जितना प्रभाव पैशाची प्राकृत का है उतना ही लगभग शौरसैनी का, अतएव यह मानना ही तर्क-पूर्ण एवम् न्याय-सङ्गत होगा कि पंजाबी पर दोनों प्राकृतों शौरसैनी तथा पैशाची का समान प्रभाव है। किसी समय जिस प्रकार वैदिक भाषा में साहित्य-रचना हुई, उसी प्रकार कालान्तर में लौकिक या आधुनिक संस्कृत में साहित्य-रचना हुई। धीरे २ पाली में साहित्य-रचना प्रारम्भ हुई और पाली के पश्चात् विभिन्न प्राकृतों में भी साहित्य-रचना प्रारम्भ हो गई। यह निश्चय ही है कि देश में प्रायः दो भाषायें प्रचलित रहीं एक नागरिक या साहित्यिक—दूसरी लौकिक-भाषा। जब साहित्यिक-भाषा प्राकृतें बनीं तब लोक-भाषा अपभ्रंश बन गई थी।

प्राकृत-भाषाओं के बिगड़े हुए रूप को ही 'अपभ्रंश' नाम से पुकारा जाने लगा। प्रथम शताब्दी के विद्वान् पातञ्जलि ने अपने 'महाभाष्य' में सर्व प्रथम 'अपभ्रंश' का उल्लेख किया है। वे अपभ्रंश की परिभाषा देते हुए लिखते हैं कि—'अपभ्रंश' वह भाषा या शब्द है जिसके कई प्रकार

के उच्चारण तथा रूप हों।" अपभ्रंश ही आधुनिक प्रान्तीय भाषाओं की जननी है। अभीर-भाषा, पिशाच-भाषा, भूत-भाषा, अवहट-भाषा, जटकी इत्यादि सभी पंजाब की अपभ्रंश भाषाओं के नाम हैं।

ऊपर हमने पातञ्जलि की अपभ्रंश भाषाओं से सम्बन्ध में व्याख्या देते हुए कहा था कि अपभ्रंश वह शब्द होते हैं जिसके कई उच्चारण हों तथा कई रूप हों। यदि हम प्रान्तीय बोलियों की परिभाषा दें तो भी हमें उक्त व्याख्या को ही दोहराना होगा—मेरा अपना मत है कि "बोलियों का मुख्य भेद उच्चारण ही है" जैसे--पंजाबी में कुछ शब्दों का उच्चारण भिन्न है जैसा कि अन्य बोलियों में नहीं। घ, झ, श, ध तथा भ का उच्चारण भिन्न २ स्थानों पर परिवर्तित होता रहता है जैसे—

पंजाबी में	हिन्दी में
ग्होड़ा	घोड़ा
ग्हड़ा	घड़ा
ग्हगरा	घगरा
बग्घी	बग्घी
बाघ	बाघ
वगिहाड़	बघियाड़
ज्हगड़ा	झगड़ा
ज्हाड़	झाड़
बुज्झ	बुझ
रांज्हा	रांझा
बुझाउणा	बुझा उणा
ड्होल	ढोल
ड्हेर	ढेर
बुड्ढाः	बुड्ढा
कोड़्ह	कोढ़
बुढ़ेप्पा	बुढ़ेपा
बढ़ःई	बढ़ई

द्होबी	धोबी
द्हमकी	धमकी
अन्नाह	अन्धा
किद्दर	किधर
बद्हाई	बधाई
सुद्हार	सुधार
प्हाई	भाई
प्हगत	भगत
लाभ	लाभ
गरभ	गरभ
सम्हाल	सम्भाल

यही नहीं पंजाबी के अनेक विद्वानों ने उच्चारणों के सम्बन्ध में विषद खोज की हैं जो उल्लेखनीय हैं। विशेष कर लुधियाने के ईसाई पादरियों ने पंजाबी शब्द-कोष तथा व्याकरण छपवाए ‡ जिनमें उच्चारणों की सही व्याख्या देने के प्रयत्न भी किए किन्तु वे पूर्णतयः सफल न हो पाए। सन् १८७३ में जौन बीम्स (John Beams) नामक अंग्रेज़ विद्वान् ने "A comperative Grammer of the modern Aryan Languages" लिखी, जिसमें हिन्दी, सिंधी, गुजराती, पंजाबी, मराठी तथा बङ्गाली आदि बोलियों का तुलनात्मक व्याकरण बनाया तथा उच्चारणों के भी पर्याप्त अन्तर की व्याख्या की। सन् १८८७ में श्री० टिसडल (Tisdall) ने पञ्जाबी व्याकरण छपाया इसमें उच्चारणों के सम्बन्ध में पर्याप्त लिखा, इसी प्रकार १८६८ में फैगन (Fagan) ने 'हिसार गज़ेटियर' में भी उच्चारणों के सम्बन्ध में लिखा तथा सन् १६१४ में डा० ग्राहम बेली ने 'पंजाबी फोनेटिक रीडर' में भी पर्याप्त लिखा है। विस्तृत अध्ययन के लिए ये पुस्तकें विशेष लाभ-दायक भी हैं। भारतीय विद्वानों में डा० सुनीति कुमार चटर्जी, प्रो० पी० डी० गुने, डा०

‡ मि० केरी ने "A Grammer of Punjabi Language" (1812 A. D.) मि० रेअर्ज़ ने English-Punjabi Dictionery (1829 A. D.)

तगारे, प्रो० कातरे, डा० सिद्धेश्वर वर्मा, डा० धीरेन्द्र वर्मा, नलिनी मोहन सान्याल, आचार्य श्यामसुन्दरदास, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी तथा राहुल सांकृत्यायन ने भी पर्याप्त लिखा है। पञ्जाबी के विद्वान् भी इस दिशा में पीछे नहीं रहे हैं—पं० शरधाराम फ़िलौरी 'पंजाबी बात-चीत', प्रो० दुनीचन्द लला की 'हिन्दी-पंजाबी भाषा विज्ञान' (१६२५), प्रो० रामसिंह ने 'शब्द चमत्कार' (१६२६), डा० बनारसी दास जैन ने 'लुधियाना फोनेटिक रीडर' (१६३४) तथा फोनोलॉजी ऑफ़ पंजाबी' भी लिखी।

ऊपर हमने बताया कि बोली में यदि कोई विशेष भेद है तो वह केवल उच्चारण का ही है। अब हम आगे यह बताना चाहेंगे कि बोलियों के मुख्य भेद कहाँ क्या-क्या हैं। वैदिक भाषा से बनने वाली देशी भाषाओं को कई विद्वान् आर्य भाषाओं के नाम से भी पुकारते हैं। यह जान लेना अत्यावश्यक प्रतीत होता है कि यह आर्य भाषायें अधिकतर कहाँ २ बोली जाती हैं।

मध्य देशीय भाषा उत्तरी भारत के मध्य में और उसके चारों ओर फैली हुई है, साधारणतया इसे पश्चिमी हिन्दी कहा जाता है—बाँगरू, बृजभाषा, कन्नौजी और बुन्देलखण्डी भाषायें इसके अन्तर्गत हैं। बाँगरू भाषा यमुना के पश्चिम् में पूर्व-दक्षिणी पञ्जाब की भाषा है। यह मिश्रित भाषा है, जिसमें हिन्दी, पंजाबी और राजस्थानी सम्मिलित हैं। पश्चिमी हिन्दी ही वर्तमान काल की खड़ी बोली कहलाती है। बाँगरू बाँगर प्रान्त की बोली है। इसे हरियानी भी कहा जाता है। कर्नाटक में यही बोली 'जाटू' कही जाती है क्योंकि वहाँ जाट लोग इसी बोली को बोलते हैं।

हम देख चुके हैं कि अपभ्रंश भाषायें वर्तमान बोलियों की जननी हैं। पञ्जाब प्रान्त की बोलियों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि पञ्जाब में जो भाषा प्रचलित थी उस पर अभीर-अहीर, गुर्जर-गूजर, जाट, गक्खड़, कैकेय, नट तथा अनेक यूनानी, सीथियन, हूण, शक, कुशान, ईरानी आदि लोगों की बोलियों का प्रभाव पड़ा। जब मुसलमानों के आक्रमण हुए उस काल में तो पञ्जाबी का रूप और भी परिवर्तित हो गया तथा पञ्जाबी में तुर्की, अरबी, फ़ारसी, बिलूची इत्यादि कई भाषाओं के शब्द आ गए। पुर्तगालियों, फ्रांसिसियों, डचों तथा

अंग्रेज़ों के भी कई शब्द पञ्जाबी ने अपने में समा लिए और आज की पञ्जाबी इन सभी बोलियों की मिली जुली एक संयुक्त भाषा बन गई।

पञ्जाबी भाषा हिन्दी के उत्तर पश्चिम की ओर बोली जाती है। पूर्वी पञ्जाब में हिन्दी से मिली-जुली पञ्जाबी है और पश्चिमी पञ्जाब में 'लहिंदी' है जो बहुरङ्गों से सज्जित है। पंजाबी के वर्ण राजपूताने की महाजनी, काश्मीर की शारदा तथा यूनानी लिपि से पर्याप्त मेल खाते है। पंजाबी लिपि में स्वर तीन हैं तथा व्यंजन अनेक जो विभिन्न प्रकार से लिखे जाते हैं। सिक्खों के द्वितीय गुरु अङ्गद देव जी ने इसका निर्माण अथवा संशोधन सोलहवीं शताब्दी में किया। इसी कारण इसे गुरुमुखी कहा जाता है। पंजाबी लिपि सभी जगह समान ही है, बोली में अन्तर अवश्य है। अमृतसर के चारों ओर जो बोली बोली जाती है उसे ही श्रेष्ठ या केन्द्रीय पंजाबी कहा जाता है।

अमृतसर के ज़िले की बोली को 'माझी' भी कहा जाता है। यही वह ठेठ पंजाबी है जिसमें विभिन्न मुसलमान कवियों ने भी साहित्य-रचना की है। मुसलमानों की लिपि प्रायः उर्दू ही रहती थी किन्तु उनका साहित्य श्रेष्ठ पंजाबी का अनुपम नमूना है। अधिकर मुसलमान साहित्यकारों ने ज़िला गुजरात तथा गुजरानवाला में बोली जाने वाली भाषा में साहित्य की रचना की है, इनकी भाषा भी हिन्दू साहित्यिकों से अधिक मँजी हुई वह ठेठ है। इनकी रचनाओं में पश्चिमी हिन्दी का रङ्ग भी पाया जाता है।

प्रश्न उठता है कि इस प्रान्त का नाम पंजाब तथा बोली को 'पंजाबी' कब से पुकारा जाने लगा। इसके सम्बन्ध में भी विद्वानों के विभिन्न मत हैं। सन् १५९६ में सुन्दरदास नामक एक राजस्थानी कवि ने सर्व-प्रथम इस प्रदेश को 'पंजाब' नाम से पुकारा किन्तु उस समय भी यहाँ की बोली को पंजाबी नहीं पुकारा गया—अधिकतर लोग यहाँ की बोली को मुलतानी, लाहौरी, पोठोहारी, माझी, झाँगी, मलवई या लहिंदीं इत्यादि विभिन्न नामों से याद करते रहे। विद्वानों की काव्य-रचना में तो पर्याप्त समय बाद तक भी यहाँ की भाषा को 'हिन्दी' ही पुकारा जाता रहा। ई० सन् १७०८ में अब्दुलकरीम नामक कवि ने 'निज़ातुल मोमनीन' नामक पुस्तक में लिखा है—

फ़र्ज़ मसाइल फ़िक्का दे हिन्दी कर तालीम
कारन मर्दा ओ' मियाँ जोड़े अब्दुलकरीम

ई० सन् १७११ में हाफ़िज़ मोइउद्दीन 'नबीना' नामक कवि ने एक अरबी क़सीदे का अनुवाद करते हुए लिखा है—

अब अरबी थीं हिन्दी कीजे सभे ख़लक़ सुखल्ले लीजे
ख़ान सादला ने फ़रमाया क़सीदा शेर अमाली है

इसी प्रकार 'गुलज़ार आदम' नामक पुस्तक में मौलवी मुहम्मद मुस्लम ने ई० सन् १८७२ में लिखा है—

इक दिन दिल विच गुज़रया मेरे एह ख़्याल
हिन्दी विच पैग़म्बराँ दा कुझ मैं आखाँ हाल

हमें उपर्युक्त पद्य-खण्डों से ज्ञात होता है कि १८७२ ई० तक पंजाबी को हिन्दी ही कहा जाता था, जब कि दूसरी ओर हम देखते हैं कि इस काल से लगभग १७० वर्ष पूर्व सन् १७०२ ई० में ही हाफ़िज़ बरखुरदार ने अपनी पुस्तक 'मिफ्ताहुल फ़िकेह' में पंजाबी को पंजाबी ही कहना प्रारम्भ कर दिया था—

हज़रत मोमन दा फ़रमाया, इस विच एह ख़्याल
तुरत पंजाबी आख सुनावीं जे कोय होवे मायल।

अतएव यह तो निश्चय ही है कि १७०२ ई० के पूर्व पंजाब का या पंजाबी का नाम-करण हो चुका था चाहे यह नाम पर्याप्त मात्रा में प्रचलित न भी हुआ हो।

हम पुनः आठवीं या नवीं शताब्दी में वापिस जाते हैं तो देखते हैं कि उस समय बौद्ध मत का ह्रास होना प्रारम्भ हो गया था। बौद्ध भिक्षुओं में कुछ ऐसी कमज़ोरियाँ आ गई थीं कि उनका सम्मान जनता से उठ गया। उनके आश्रयदाता तत्कालीन राजा लोग भी उन्हें हेय दृष्टि से देखने लगे, इसी कारण उन्हें भारत के विभिन्न भागों में बँट जाना पड़ा। इधर ब्राह्मणों का प्रभाव दिन प्रतिदिन भारतीय जनपद पर बढ़ने लगा जिसके फल-स्वरूप बौद्धों की महायान शाखा ने सिद्ध योगियों का रूप धारण कर लिया। शीघ्र ही ये लोग तत्कालीन लोक पर छा गए। वैसे तो इस मत के अनुयायियों का

जन्म कई सहस्र वर्ष पूर्व उपनिषदों के काल में ही हो गया था; किन्तु इस नाथ सम्प्रदाय का कवि नागार्जुन हमें ७०२ ई० के लगभग मिलता है—उसके पश्चात् मच्छन्दर, जलन्धर तथा गोरख आदि कई सिद्ध-नाथ हुए। पंजाबी का प्रथम कवि गोरख ही माना जाता। यद्यपि गोरख की रचना में वह विशेषता नहीं थी जिससे कि उन्हें हम पंजाबी का कवि कहें; तथापि उनका जन्म गोरखपुर नामक नगर, तहसील गुज्जरख़ान में हुआ था इसी कारण सम्भवतः उन्हें पजाबी का प्रथम कवि माना गया। निश्चय ही है कि उक्त नगर का नाम गोरखपुर उनके जन्मस्थान होने के कारण ही पड़ा। यह स्थान रावलपिंडी के समीप ही है। नाथ सम्प्रदाय में एक शाख़ा रावल या राउल कहलाती है, ऐसा प्रतीत होता है कि वे लोग रावलपिंडी से ही अपना पूर्व सम्बन्ध रखते होंगे। गोरख के समय पञ्जाब की भाषा मिली-जुली 'सधुक्कड़ी' अपभ्रंश थी। उनकी भाषा पर पंजाबी का पूरा २ प्रभाव प्रतीत होता है, जैसे 'न' के स्थान पर 'ण' का प्रयोग पञ्जाबी में प्रायः पाया ही जाता है। निम्नाङ्कित पंक्तियों में देखिए पंजाबी का कितना प्रभाव है—

"वामा अगे सोइवा जमचा मोगि बासगे न पिउणा पाणी"

"खाए भी मरिये अणखाए भी मरिए"

"आसण पवण उपद्रह करै"

उक्त पंक्तियों में 'पिउणा', 'पाणी', 'अणखाए' 'पवण' तथा 'आसण' में न केवल 'णकार' का ही प्रयोग है वरन् पूर्णतयः ये पंजाबी के ही शब्द हैं। द्वितीय पंक्ति तो सम्पूर्ण पंजाबी की ही प्रतीत होती है। गोरख सम्बन्धी पुरातन ग्रंथों में निम्न पुस्तकें प्राप्त होती हैं—पर कहा यह जाता है कि उन्होंने २५ संस्कृत ग्रन्थ तथा ३ भाषा ग्रन्थों की रचना की थी—गोरख-गणेश गोष्ठी, महादेव-गोरख सम्वाद, गोरख बोध, विराट पुराण, गोरखसार, गोरख नाथ की बानी, योगेश्वरी साखी, दत्त-गोरख सम्वाद, नरवै बोध तथा गोरख नाथ की सत्तरह कलायें। उक्त दस पुस्तकें इनके नाम के साथ जोड़ी जाती हैं, किंतु आधुनिक खोज एवम् विद्वानों के मतानुसार इनमें से साखी और बानी में ही इनकी स्व-रचित रचनायें होंगी; यही अनुमान लगाया जाता है जो कि तर्क-सङ्गत भी प्रतीत होता है।

गोरख का साहित्य हिन्दी, बङ्गाली, गुजराती, मराठी, कनारी तथा नैपाली आदि भाषाओं में पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है, जिससे ज्ञात होता है कि वे आसाम से लेकर बिलोचिस्तान तक तथा कन्धार से लेकर दक्षिण तक प्रसिद्ध थे। आज भी भाषा-शास्त्रियों को या साहित्य के विद्यार्थियों को जहाँ उनका या उनके सम्प्रदाय का विशिष्ट साहित्य पठनीय प्राप्त होता है वहाँ इतिहास वेत्ताओं को या भ्रमणशील मनोवृत्ति के व्यक्तियों को उनकी स्मृति को जगा देने वाले अनेक स्थान भी मिल जाते हैं। जेहलम में गुरु गोरख का टीला प्रसिद्ध है तो पेशावर में गोरख की हट्टड़ी। अबोहर में यदि पूरण या चौरङ्गीनाथ की धूनी मिलती है तो स्यालकोट में पूरण का कुँआ। पेशावर में रतन नाथ का डेरा आज भी प्रसिद्ध है। उज्जैन जाने वाला वहाँ भर्तृहरि की गुहा की साध रखता है तो कोई आश्चर्य नहीं। इसी प्रकार देश के भिन्न-भिन्न भागों में इन नाथ सम्प्रदायी जोगियों की विभिन्न स्मृतियाँ आज भी जागृत पड़ी हैं। कहा जाता है कि गोरख नाथ के गुरू मच्छन्दर नाथ थे जिन्होंने आधुनिक स्यालकोट या भूत-कालीन सकलाद्वीप या सिंहलद्वीप पर शासन किया था, निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि वह स्यालकोट (पश्चिमी पंजाब) था, लङ्का या मध्य भारत। मछिन्दर के शिष्य गोरख ने अपने गुरू को स्त्री से निर्लिप्त रहने की शिक्षा दी। वह वार्त्तालाप कालान्तर में 'रतन ज्ञान' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुआ। कहा जाता है कि रतन नाथ मछिन्दर नाथ के दूसरे शिष्य थे। नागार्जुन की शिष्यावली अगले पृष्ठ पर देखिए—

- नागार्जुन (७०२)
  - मछन्दरनाथ
    - गोरखनाथ (८०६–८४० जन्म)
      - भर्तृहरि
      - चरपटनाथ (६२० के लगभग)
      - चौरङ्गीनाथ (६७० के लगभग)
    - रतन नाथ (१००० के लगभग)
      - धरमदास
      - बिशनदास
      - नरपत
      - गुरुदास
      - जोधाराम
      - मथरादास या सिद्धसवाई
      - साईंदास
      - भवानीदास
      - लछमनदास
      - धरमदास
      - पञ्जाबदास या सिद्धसवाई
      - गुसाईं साइदास
      - ब्रह्मदास—इत्यादि

गोरख आध्यात्मिक कवि थे, उनकी भाषा पर फ़ारसी का प्रभाव भी प्रतीत होता है। गुरु-पूर्णिमा के दिन नैपाल में गोरख तथा मछिन्दर की पूजा होती है। आपके शिष्यों में विशेष राजा गोपीचन्द भर्तृहरि, चौरङ्गी, चरपट-नाथ तथा रतननाथ थे। कुछ लोग रतननाथ को आपका गुरु-भाई भी मानते हैं। आपके जन्म-काल के सम्बन्ध में भी विद्वानों के विभिन्न मत हैं। महा पंडित राहुल साँकृत्यायन उनका जन्म काल ८०६ ई० मानते हैं तथा पञ्जाबी के विद्वान् डॉ० मोहन सिंह ८४० ई० मानते हैं; आचार्यवर हज़ारीप्रसाद द्विवेदी उनका रचना-काल नवीं शताब्दी मानते हैं। कुछ भी सत्य हो; किंतु यह तो सभी विद्वान् एक मत हो मानते हैं कि गोरख नवीं शताब्दी में अपनी साहित्य-रचना करते रहे। उनकी प्रमुख कर्म-भूमि पंजाब; गुजरात तथा मध्य भारत ही रही यह भी निश्चित तौर से सभी विद्वान् मानते हैं।

गोरख के सम्बन्ध में कबीर, सनक, सुनंदना, जयदेव तथा नामदेव आदि तत्कालीन लोक-कवियों ने भी अपनी रचनाओं में चर्चा की है। कबीर गोरख को अवधूत कहते थे। गुरुनानकदेव जी ने भी गोरख को 'औधू' या 'औधो' आदि नामों से स्मरण किया है। गुरुनानक ने 'सिद्ध-गोष्ट' में ही नहीं वरन् रामकली मोहल्ला एक, राग आसा, जपुजी साहब इत्यादि अनेक स्थलों पर गोरख की चर्चा की है। गुरु गोविंदसिंह जी ने भी नाथ—सम्प्रदायी साधुओं के सम्बन्ध में लिखा है।

गोरख की भाषा में फ़ारसी के शब्दों की भी झलक मिलती है, जिससे ज्ञात होता है कि उस समय ये शब्द प्रायः प्रयोग में आना प्रारम्भ हो गए थे; देखिए—

"महल की जब खबर पाई सोध लीने प्राण बाई"

"बाघिनी जिन्द लेई, बाघिनी बिन्द लेई, बाघिनी हमारी काया"

"माया ज़ोर कहे मैं ठाकर, माया गए कहावे चाकर"

"सुनरे बाचा चुनिया-मुनिया, उलट भेद सों उलटी दुनिया"

उपर्युक्त पंक्तियों में महल, जिन्द, ज़ोर, चाकर, बाचा तथा दुनिया आदि शब्द फ़ारसी के हैं।

गोरख नाथ के पश्चात् चरपट का काव्य मिलता हैं। वे दसवीं शताब्दी में पैदा हुए। चम्बा का राजा साहिल वर्मा उनका शिष्य था। चम्बा नगर कहा जाता है कि ६२० ई० के लगभग बसाया गया था। उसने २० वर्ष तक राज्य किया, तदुपरान्त ६४० ई० में अपने पुत्र योगाकरवर्मा को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर स्वयं योगी बन गया। कहा जाता है कि ६२० ई० के लगभग ८४ सिद्ध योगी चम्बा में ब्रह्मपुरा नामक स्थान पर आए; उनमें चरपटनाथ भी थे। इन नाथों का चम्बा पर पर्याप्त प्रभाव रहा प्रतीत होता है। वहाँ के एक सिक्के जिसे 'चकली' कहा जाता है (३ चकली=१ आना) पर अभी भी फटे हुए कान की मूर्ति बनी हुई मिलती है। ई० सन् १००० के लगभग इसी परिवार का एक अन्य प्रसिद्ध राजा शालिवाहन या सलवान भी हुआ है। विद्वानों का कथन है कि सलवान पर उज्जैन के प्रसिद्ध राजा भोज विक्रमादित्य ने (१०७६—११२६) आक्रमण किया था। सलवान ने काश्मीर नरेश की सहायता से उसे पराजित किया। इसी सलवान का पुत्र पूरण था जो कालान्तर में नाथ बन गया और चौरङ्गीनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

चरपटनाथ स्वयं को केवल योगी ही नहीं वरन् आत्मयोगिन् मानते थे। इनकी रचनाओं पर पंजाबी की पूरी २ छाप दृष्टि-गोचर होती है। हास्य एवम् व्यंग्यात्मक ढङ्ग से अपनी बात को संक्षेप में कह देने में चरपट सिद्धहस्त थे।

इनकी काव्य-कला के कई प्रमाण आज भी प्राप्त होते हैं—

तटि तीरथ ब्रह्मण के कर्मा, पुन्न धन खत्री के धर्मा
बञ्ज बेपार बैसनों के कर्मा, सेवा भाव सूदर के धर्मा
चारों वर्ण एहो चारों कर्मा, चरपट प्रणवें सुनहो सिद्धो
मन वस किए जोगी के धर्मा

सो कुछ जरो जे बहुरी ना जरना सो जल तरो जे बहुरि न तरना
ये कसरत जब पावे चरपट प्रण में फिर गर्व न आवे।

चरपट के पश्चात् हमारे सामने नाथ-योगियों में क्रमानुसार चौरङ्गी

तथा रतननाथ की काव्य रचना आती है। चौरङ्गीनाथ चरपट के समकालीन ही थे। कुछ विद्वानों का मत है कि चौरङ्गीनाथ, पूरण या चतरङ्गनाथ एक ही हैं। ये पूरण स्यालकोट के राजा सलवान के पुत्र थे। श्री० आयोध्यासिंह उपाध्याय इन्हें पूरण के ज्येष्ठ भ्राता मानते हैं। अधिकतर विद्वानों का मत है कि चौरङ्गीनाथ, पूरण या चतरङ्गनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनका जीवन-काल ६७० से १०७० के मध्य माना जाता है। इनकी हस्त-लिखित काव्य-रचना पट्टी ज़िला अमृतसर के एक जैन-मन्दिर से प्राप्त हुई है, जिसमें नाथ-वाणी है। इन्होंने एक छोटा सा काव्य भी लिखा जो 'प्राण-सङ्गली' कहा जाता है। इनकी रचनाओं में श्लोक तथा सबद आदि भी प्राप्त होते हैं। इन के द्वारा रचित एक पद्यांश निम्न है जो उदाहरण के लिए दिया जाता है—

मारिबा तो मन मीर मारिबा लूटिबा पवन भंडार
साधिवा तो पञ्चतत्त साधिवा सेइवा तौ निरञ्जन निरङ्कार

माली लौ मल माली लौ सींचे सहज कियारी
उन मनि कला एक पहूपनि पाइले आवा गवन निवारी

चौरङ्गीनाथ के पश्चात् रतननाथ हुए, जिनका जीवन काल १००० से ११२० ई० के मध्य माना जाता है। इनके जन्म के सम्बन्ध में विद्वानों के दो मत हैं। कुछ कहते हैं कि वे भटिण्डा के निवासी थे; तथा कुछ इन्हें नैपाल का क्षत्रिय राजकुमार भी कहते हैं। रतननाथ के अनुयायी केवल हिन्दू ही नहीं थे, वरन् मुसलमान भी इनमें आस्था रखते थे इसी कारण वे हाजी रतन, बाबा रतन या पीर रतन के नामों से भी प्रसिद्ध हैं। आपने न केवल भारत में ही वरन् खुरासान, काबुल तथा ग़ज़नी तक नाथ सम्प्रदाय का प्रचार किया। काबुल का बादशाह आपका शिष्य था। आपने उससे काबुल तथा जलाला-बाद में शिव-मन्दिर की स्थापना भी करवाई थी तथा मन्दिर के नाम जागीर भी लगवाई। आपका स्वर्गवास भी ग़ज़नी में ही हुआ बताया जाता है। पेशावर से लगभग दो मील दूर आपने एक स्थान बसाया था जो 'धर्मशाला' के नाम से प्रसिद्ध है। आपके कुछ फुटकर पंजाबी गीत भी प्राप्त होते हैं; आपने 'रतन-ज्ञान' नामक एक पुस्तक भी लिखी बताई जाती है; जिसमें

मछिन्दरनाथ तथा गोरखनाथ के मध्य हुए वार्त्तालाप को पद्यबद्ध किया गया है; यह पुस्तक 'चश्म-ए-नूर' प्रेस अमृतसर से लीथो में सन् १७०० में प्रकाशित हुई बताई जाती है। इसी पुस्तक से ज्ञात होता है कि रतननाथ मछिन्दरनाथ के शिष्य थे; इसी पुस्तक से ज्ञात होता है कि वे गोरख से प्रथम बार गोदावरी नदी के तट पर मिले थे। कुछ विद्वानों का मत है कि 'रतन-ज्ञान' नामक पुस्तक के रचियता 'ब्रह्मदास' जी थे; किन्तु इसका तर्कपूर्ण निरूपण किसी विद्वान् ने नहीं किया है। रतननाथ के पश्चात् नाथ-सम्प्रदायी कोई प्रसिद्ध नाथ प्राप्त नहीं होता।

राजस्थान एवम् हिन्दी के प्रसिद्ध कवि चन्दबरदाई (१२२५—४६) ने भी लाहौर में ही जन्म ग्रहण किया। २५०० पृष्ठ तथा ७६ समय अथवा सर्गों के प्रबन्धात्मक महा काव्य 'पृथ्वीराज रासो' का रचयिता यही चन्द था जो कि हिन्दी का प्रारम्भिक कवि माना जाता है। वास्तव में 'रासो' राजस्थानी भाषा का ही ग्रन्थ माना जाता है, किन्तु कुछ विद्वान् चन्द का जन्म-स्थान लहावर या लाहौर में होने के कारण उसे पंजाबी मानते हुए कहते हैं कि उसकी भाषा पर पंजाबी की भी छाप थी। विद्वानों का यह निश्चित मत है कि 'रासो' का उत्तरार्द्ध उसके पुत्र जल्हण ने सम्पूर्ण किया था। रासो का रचना-काल और ऐतिहासिक सत्य अभी भी विवादास्पद है। इस ग्रन्थ की भाषा बड़ी ही विचित्र है। इसमें प्राकृत तथा अपभ्रंश प्रमुख हैं। सरसा हिसार के जाट, दिल्ली के राजपूतों की भाषा तथा सन्त भाषा लगभग समान ही हैं; इसी पञ्जाबी के विद्वान् चन्द को पञ्जाबी का भी कवि मानते हैं। उनका मत है कि रासो वास्तव में पंजाबी के ढङ्ग पर लिखा गया है, किंतु उसका वातावरण राजस्थानी है। इस सम्बन्ध में डॉ० मोहनसिंह अपनी पुस्तक "A Short History of Punjabi Literature" में लिखते हैं—

"I have good reasons to believe that the manuscript of "Hamir Raso" and "Prithvi Raj Raso" in the West Punjab University Library to which I drew attention as early as 1933, provides a fairly authentic text of a very much reduced size, which

must have indeed been small, and not what later it became on account of frequent interpolations. A number of Punjab Folk-meters and Desi Words are worked-up in RASO."

चन्द के काव्य में हमें कई पंजाबी शब्द मिलते हैं, उदाहरणार्थ निम्नांकित कुछ विभिन्न पंक्तियाँ देखिए—

"आयो सुगङ्ग तट कञ्ज जग्ग सत्त अट्ठ खण्ड करि अङ्ग अब्बि
ओमे सुअप्पवर मद्धि हत्थ"

"मंग्यो सु ईस यहि बर पसाब, सत अद्ध पुत्त अवतरन काय"

जिस काल का हम वर्णन कर रहे हैं—उस समय मुसलमानों के आक्रमण हो चुके थे और वे अपने पैर जमाने लगे थे। ई० सन् ११७३ से १२६५ के मध्य का काल प्रसिद्ध मुसलमान सूफ़ी कवि बाबा फ़रीद का माना जाता है। ये फ़रीद बाबा या मसूद के नाम से भी प्रसिद्ध थे; फ़रीद शकरगञ्ज भी इन्हें कहा जाता है। ये जाति के अफ़ग़ान थे तथा खोतवाल नामक स्थान पर पैदा हुए थे जो मुलतान में है। आप दिल्ली तथा हाँसी भी रहे। आपने ख्वाजा कुतुबुद्दीन काकी से गद्दी ग्रहण की तथा निज़ामुद्दीन औलिया को अपनी गद्दी का उत्तराधिकारी बनाया। इन्हीं के शिष्य प्रसिद्ध लोक-कवि अमीर खुसरो थे। आप पर हिन्दू-मुसलमान तथा सिख समान रूप से श्रद्धा रखते थे। जब सन् १६०४ ई० में गुरु ग्रंथ साहब की बीड़ का सङ्कलन हुआ तो फ़रीद के काव्य को उसमें सम्मिलित करने का लोभ संवरण न किया जा सका। गुरु ग्रंथ साहब में आपकी वाणी को सम्माननीय स्थान प्राप्त है आपकी लोक-प्रियता इससे स्पष्ट सिद्ध होती है कि आपकी वाणी को लोगों ने हिंदी लिपि में हाथों से लिख कर संग्रहित किया, जिसकी प्रतियाँ अभी भी यदा-कदा जयपुर, जोधपुर आदि के आस-पास प्राप्त हो जाती हैं। फ़रीद ही पंजाबी का वह प्रथम कवि है जिसकी भाषा को हम शत-प्रतिशत पंजाबी कह सकते हैं। 'नसीहत-नामा' आपकी वाणी का अद्वितीय संग्रह है। आज भी आपकी वाणी को अखाणों (आख्यानों) के रूप में पंजाब का लोक बरबस बोल उठता है—

'फ़रीदा माँओं महिंडी कमली, जिन जीवन रखिया नाओं
जाँ दिन पुन्ने मौतदे, ना जीवन ना नाओं''

✿ ✿ ✿ ✿

फ़रीदा ऐसा होय रहो जैसा कक्ख मसीत
पैराँ तले लताड़िए तूँ कदे ना छोड़ें प्रीत

✿ ✿ ✿ ✿

फ़रीदा पैर पसार के अट्ठे पहरहिं सौं
लेखा कोई ना पुच्छई जे विच्चों जावें हों

✿ ✿ ✿ ✿

थियो पुआही दब्ब जे साईं लोड़े सब्ब
इक्क छिज्जे बया लताड़िये ताँ साईं दे दर वाड़िए

बाबा फ़रीद के पश्चात् हमारे सामने हिंदी का प्रसिद्ध लोक-कवि खुसरो आता है जिसके जन्मस्थान के सम्बंध में पंजाबी के विद्वानों को भ्रम है। खुसरो का जन्म पटियाली नामक ग्राम ज़िला एटा, उत्तर प्रदेश में ई० सन् १२५३ में हुआ था किंतु पंजाबी के प्रसिद्ध लेखक डा० मोहनसिंह ने अपनी पुस्तक "History of Punjabi Literature" में उक्त पटियाली ग्राम का संबंध आधुनिक पटियाला से जोड़ने का प्रयास किया है जो निराधार है क्योंकि पटियाला तो 'पट्टी-वाला' से बना प्रतीत होता है। यद्यपि खुसरो हिंदी प्रदेश के ही कवि थे तथापि उनकी 'बुझारतें' (पहेलियाँ) आज भी पंजाबी में प्रचलित हैं। उन्होंने पंजाबी में एक 'वार' या युद्ध-वार्ता भी लिखी जिसमें तुग़लकशाह तथा नासिरुद्दीन खुसरोखाँ के बीच हुए युद्ध का वर्णन है। यह 'वार' पंजाबी की प्रथम 'वार' मानी जाती है। उन्होंने लगभग १२८३ में काव्य-रचना की थी तथा कुल मिला कर ९९ पुस्तकें लिखीं जिनमें से २२ पुस्तकें प्राप्त हो पाई हैं। कहा जाता है कि उन्होंने कई लाख 'शेर' लिखे थे। कुछ लोग उनकी पहेलियों को पंजाबी का ही रूपान्तर मानते हैं किंतु इसका तर्क-पूर्ण निरूपण किसी विद्वान् ने नहीं किया है। उनकी बुझारतों के कुछ उदाहरण देखिए—

चार पुत्तर मेरे अखने-मखने, चार पुत्तर मेरे मिट्टी चखने,
दो पुत्तर मेरे खले मनारे दो पुत्तर विच लशकन तारे=भैंस
वाह ओये रब्बा तेरे कम्म, बाहर हड्डियाँ अन्दर चम्म=नारियल
इक्क नाम करतारो पाइये शौ दरिया दे हेठ
इक्क सौ लड़का पैदा होया दो माँवाँ दे पेट=सीप
दो कलबूतर उड़दे जांदे खम्ब ओहनाँ दे काले
चाल ओहनाँ दी अटकी-मटकी रब्ब ओहनाँ नूँ पाले=आँखें
बाहरों आए दो मलङ्ग, हरियाँ टोप्पियाँ नीले रङ्ग=बैंगन
खूह विच टाँडा सब दा साँझा =हुक्का
इक्क जनावर ऐसा जिहदी दुम ते पैसा =मोर
इक्क जनावर असली जिहदी ना हड्डी ना पसली =जोंक

ऐसी अनेक बुझारतें हैं जो खुसरो की रचित बताई जाती हैं, स्थानाभाव के कारण उन्हें यहाँ देना उचित प्रतीत नहीं होता। खुसरो के अलावा एक और बुझारत-लेखक का भी पता चलता है जिसका नाम 'सुरता पंडित' बताया जाता है। यह पंडित सुरता निश्चय ही गुरुनानक के पूर्व हुआ था, क्योंकि गुरुनानक की वाणी में इस कवि का उल्लेख मिलता है—

"जम्मे जीअ जाणें जे थाऊँ सुरता पंडित ताँका नाऊँ"—(मल्हार; महल्ला १)

बाबा गङ्गासिंह जी बेदी ने सर्व-प्रथम इस बुझारत-लेखक का उल्लेख किया है तथा उसकी अनेक बुझारतें भी एकत्रित की हैं। उनका मत है कि वह ज़िला गुजरात का निवासी था। किंतु, मेरा अपना मत है कि 'सुरता' नाम का पंडित तो कोई नहीं था, वरन् गुरुनानक ने वह पद-खण्ड अन्य अर्थ के लिए लिखा है, जिसका भावार्थ है कि—जो व्यक्ति अपने जन्म-मरण का स्थानादि जानता है वही सुरत वाला अर्थात् चेतनशील पंडित अथवा विद्वान् है। इसके नाम से प्रसिद्ध बुझारतें इस प्रकार की होती हैं जो कि कालान्तर में अखाणों (अख्यानों) के रूप में प्रयुक्त होने लग गई, जैसे—

सौ चाचा ते इक्क प्यो
सौ दारू ते इक्क घ्यो
सौ बेर ते इक्क स्यो

इसी प्रकार—

" कुड़ियाँ-चिड़ियाँ बकरियाँ, त्रेए जात्ताँ अस्थरियाँ "

खुसरो तथा चन्द के पश्चात् हमारे सामने पञ्जाबी का एक और कवि मसूद आता है जिसने बारह माँह, सतवारा तथा अक्षर-ज्ञान आदि के लिए काव्य-रचना की। मसूद का भी पंजाबी में पर्याप्त स्थान है।

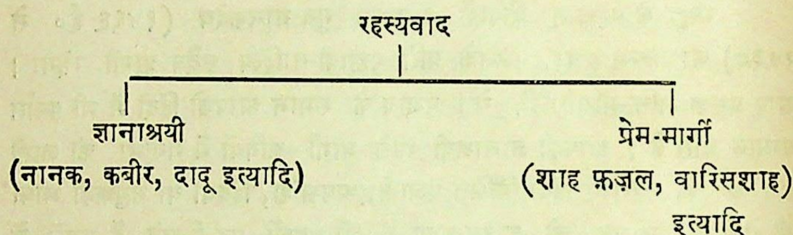
मसूद के पश्चात् सिक्खों के प्रथम गुरु नानकदेव (१४६६ ई० से १५३८) का जन्म हुआ, जिनके प्रति पञ्जाबी-साहित्य सदैव ऋणी रहेगा। आप प्रमुख भक्ति-मार्गी कवि थे। पंजाब के समान आपको हिंदी में भी पर्याप्त सम्मान प्राप्त है। आपकी ज्ञानाश्रयी भक्ति-मार्गी कवियों में गणना की जाती है। आपकी रचनाएँ हिंदी मिश्रित पंजाबी, अपभ्रंश, हिंदवी या सधुक्कड़ी भाषा की होती हैं। नानक की काव्य-कला के हमें सहस्रों पद मिलते हैं उनमें से अधिकांश गुरु ग्रंथ साहब में संग्रहित हैं। कहा जाता है कि सुमेरु पर्वत पर गुरु नानक ८४ सिद्धों से भी मिले थे जहाँ उनका सिद्धों के साथ वार्त्तालाप भी हुआ। यही वार्त्तालाप 'सिद्ध-गोष्ट' में अङ्कित है जो अपना विशेष महत्त्व रखता है। गुरुनानक कबीर के समान हिन्दू–मुस्लिम एक्य के समर्थक थे।

गुरुनानक ने केवल साहित्यिक छन्दों में ही नहीं वरन् तत्कालीन लोक-छन्दों में भी काव्य-रचना की तथा पर्याप्त मात्रा में लोक-साहित्य का निर्माण किया। गुरुनानक का एक श्लोक उदाहरणार्थ देना असङ्गत न होगा—

पवणु गुरु पाणी पिता, माता धरति महतु
दिवस रात दुइ दाई-दाया, खेले सकल जगत
चङ्गियाइयाँ—बुरयाइयाँ, वाचै धरमु हजूरी
करनी आपो—आपनी, के नेड़े के दूरी
जिन्नी नाम धिआइयाँ, गए मसकति घालि
नानक ते मुख उजले, के ती छुट्टी नालि

उपर्युक्त छन्द में हमने देखा कि गुरुनानक की भाषा ठेठ पञ्जाबी न होकर मिली-जुली ही थी। इसी प्रकार की भाषा हमें कबीर की भी मिलती है जिनका रचना-काल १५०७ से १५७५ मिलता है यद्यपि कबीर का जन्मस्थान काशी माना जाता है तथापि उनकी भाषा सधुक्कड़ी होने के कारण पंजाबी से

पर्याप्त मेल खाती है। कबीर का कुछ काव्यांश गुरुग्रंथ साहब में भी संग्रहित है। कबीर, नानक, दादू, रैदास, धर्मदास, सुन्दरदास तथा मलूकदास आदि भक्त-कवि ज्ञानाश्रयी शाखा के माने जाते हैं। लगभग ये सभी कवि रहस्य-वादी माने जाते हैं। रहस्यवाद के भी दो उपभेद हैं; एक ज्ञानाश्रयी तथा दूसरा प्रेम-मार्गी—



नानक तथा कबीर के रहस्यवाद या भक्ति-मार्ग को 'निरञ्जनब्रह्म' भी कहा जाता है। साधारण तौर से निरञ्जन का अर्थ निर्गुण ब्रह्म तथा विशेष रूप से शिव का बोध है—ॐकार के पाँच खण्ड होते हैं जिनमें पाँच देवताओं का वास माना जाता है—

[१] तारक	[२] दण्ड	[३] कुण्डली	[४] अर्धचन्द्र	[५] बिन्दु
ब्रह्मा	विष्णू	रुद्र	ईश्वर	सदाशिव

इसके भी ऊपर निरञ्जन ब्रह्म है जो सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कारण है। यही परमतत्त्व है जो सद्-गुरु की कृपा से ही प्राप्त होता है।

कबीर की उलट-बासियाँ साहित्य का एक विशेष अङ्ग है। योग और तंत्र सम्प्रदाय की रीतियों के अनुसार योगी और तांत्रिक लोग दुनिया के समक्ष अपने सिद्धांतों को उलटे रूपों में रखते थे। विश्व का क्रम है—अर्थ, धर्म, काम-मोक्ष। परन्तु योगियों का क्रम उलटा होने से इसे मोक्ष, धर्म, अर्थ काम इस प्रकार उलटे रूप में ग्रहण किया जाता है। क्योंकि जो श्रेष्ठ है उसे प्रथम स्थान देना ही उचित समझा गया। इसका तात्पर्य यह हुआ कि योगी और तांत्रिक उलटी बात कहने के अभ्यासी होगए। अस्तु—यहाँ इन वादों के अधिक झमेले में जाना अनुपयुक्त सा ही प्रतीत होता है अतएव कबीर के कुछ पद देकर हम उनमें पंजाबी का प्रभाव बता कर आगे बढ़ना ही उचित समझते

हैं—ऊपर हम लिख आए हैं कि कबीर की भाषा पर पंजाबी का प्रभाव स्पष्ट दृष्टि-गोचर होता है। कुछ विद्वानों का मत है कि उनकी भाषा राजस्थानी भी हो सकती है, किंतु ऐतिहासिक सत्य तो यही है कि कबीर पंजाब में भी निवास करते रहे हैं; इसी कारण उनकी भाषा पर पंजाबी का प्रभाव भी रहा। निम्नाङ्कित पदों में पंजाबी की छाप देखिए—

दाता तरवर दया फल उपकारी जीवन्त
पंछी चले दिसावराँ बिरखा सुफल फलन्त

❀ ❀ ❀

कबीर सङ्गत साधु की कदे न बिरफल होए
चंदन होसी बावना नीम न कैहसी कोए

❀ ❀ ❀

कायथ कागद काढ़िया लेखै वार न पार
जब लग साँस सरीर में तब लग राम संभार

❀ ❀ ❀

हर जी यही विचारया साखी कहे कबीर
भवसागर में जीव हैं जे कोई पकड़े तीर

❀ ❀ ❀

ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोय
अपना तन सीतल करे औरन को सुख होए

ऊपर के पदों में अङ्कित शब्द पंजाबी के ही हैं। कबीर को यद्यपि पंजाबी का कवि नहीं माना जाता तथापि उनके काव्य में पंजाबी की पूरी-पूरी छाप है।

कबीर के पश्चात् सिक्खों के नौ गुरू, गुरुगोविंदसिंह के ५२ दरबारी कवि, बाबा श्रीचन्द, सालिसराय जौहरी, भाई गुरुदास भल्ला, दामोदर, हिरदाराम, सुथरा, छज्जूभक्त, जल्हणजाट, वलीराम, पीलो, बाबा लालजी, बाबा दयालदास, कान्हा, कङ्कण, चतरदास इत्यादि विभिन्न भक्तिमार्गी कवि हुए। जिनके संबंध में यहाँ स्थानाभाव के कारण लिखना कठिन है।

इसके पश्चात् हमारे सामने स्वच्छन्दवाद या Romanticism के पोषक कई कवि आते हैं जिनमें प्रमुख शाहहुसेन, वज़ीदपठान, शाह शरफ़, लतीफ़, मुकबल, बरखुरदार, अहमद, कादरयार, सुलतानबाहू, बुल्लेशाह, फ़ाज़ल, अहमद आदि हुए। जिन्होंने अपनी काव्य-रचना का कमाल दिखा कर पंजाबी का कोष भरा। 'ससि-पुन्नू', 'हीर-राँझा', 'यूसुफ़-जुलेखां', 'सोहनी-महीवाल', 'मिरज़ा- सहिबाँ', 'लैला-मजनू' इत्यादि विभिन्न प्रेम-काव्य लिखे गए। जो पञ्जाब जन-पद के अमर काव्य माने जाते हैं। इनके अलावा रसालू, होदी, पूरण, भर्तृहरी, गोपीचन्द, कामरूप-कामलता, नल-दमयन्ती, सिंहासन-बत्तीसी, प्रेम पच्चीसी तथा मालव सम्राट विक्रम एवम् भोज से संबंधित विभिन्न कथायें भी काव्य-बद्ध हुईं। सिकन्दर तथा ग्रीस को लेकर भी दो 'वारें' (युद्ध-कथायें) लिखी गईं। 'वारें' तो और भी अनेक लिखी गईं जिन में से २२ 'वारें' हमें गुरुग्रंथ साहब में भी मिलती हैं।

आधुनिक युग में गद्य, पद्य, नाटक, कहानी, एकाङ्की एवम् आलोचनात्मक ग्रंथों का भी निर्माण हुआ जिनमें विभिन्न लेखकों ने अपनी सुकृतियाँ पंजाबी साहित्य को भेंट कीं जिनकी सूची पृष्ठ ६६ पर दी जा रही है—

[illegible]	गद्य-लेखक	उपन्यास लेखक	कहानी लेखक
भाई वीरसिंह	भाई वीरसिंह	भाई वीरसिंह	भाई वीरसिंह
धनीराम चात्रिक	मोहनसिंह वैद्य	चरणसिंह शहीद	बलवन्तसिंह चतरथ
प्रो० पूरणसिंह	ज्ञानी दित्तसिंह	मोहनसिंह वैद्य	सन्तसिंह सेखों
प्रो० मोहनसिंह	चरणसिंह शहीद	सर जोगिंदरसिंह	अमृताप्रीतम
हरनामकौर 'नाभा'	प्रो० करमसिंह	नानकसिंह	चिरञ्जीतकौर
विधातासिंह 'तीर'	प्रो० पूरणसिंह	करतारसिंह दुग्गल	नवतेज
प्रीतमसिंह सफ़ीर	गुरुबख़्शसिंह	अमृताप्रीतम	संतोखसिंह धीर
दीवानसिंह 'कालापानी'	प्रि० जोधसिंह	सतसिंह सेखों	कुलवंतसिंह विर्क
फ़िरोज़दीन 'शरफ़'	प्रि० तेजासिंह	सुरिन्दरसिंह नरूला	सुरिन्दरसिंह नरूला
गुरुमुखसिंह मुसाफिर	बाबा प्रेमसिंह	जसवंतसिंह कमल	जसवंतसिंह कमल
हीरासिंह दर्द	हीरासिंह दर्द	जसवंतकौर	देवेन्द्र सत्यार्थी
अमृताप्रीतम	लालसिंह 'कमलाअकाली'	एस० एस० अमोल	करतारसिंह दुग्गल
प्रभजोतकौर	एस० एस० अमोल	बलवंत गारगी	गुरुबख़्शसिंह
बावा बलवंत	डा० मोहनसिंह	महेन्द्रसिंह कँवर	महेन्द्रसिंह सरना
प्यारासिंह सहराई	प्रो० साहबसिंह	मे० नरेन्द्रपालसिंह	सुरिंदरसिंह कोहली
दर्शनसिंह आवारा	प्रि० गङ्गासिंह		हीरासिंह दर्द

पद्य-लेखक	गद्य-लेखक	कहानी लेखक
अवतारसिंह आज़ाद	प्रो० करतारसिंह	नानकसिंह
संतोषसिंह धीर	नवतेज	करतारसिंह
हरदयालसिंह 'सिकरी'	डा० शेरसिंह	प्रो० मोहनसिंह
हरिन्दरसिंह 'रूप'	संतसिंह सेखों	अजीतसिंह एम० ए०
सुरजीत रामपुरी	नानकसिंह	गुरुमुखसिंह मुसाफिर
बलजीतकौर 'बल'	गुरुनामसिंह 'तीर'	
सुरिंदरसिंह कोहली	प्रो० वरयामसिंह	
	प्यारासिंह पदम	

नाटक एकांकी लेखक	आलोचनात्मक-साहित्य लेखक	सम्पादक	लोक-साहित्य संग्रहकार
ईश्वरचंद नंदा	बाबा बुधसिंह	भाई वीरसिंह	संतराम बी० ए०

नाटक एकांकी लेखक	आलोचनात्मक-साहित्य लेखक	सम्पादक	लोक-साहित्य सग्रहकार
ईश्वरचंद नंदा	बाबा बुधसिंह	भाई वीरसिंह	संतराम बी० ए०
बलवंत गारगी	फ़ज़लदीन तथा 'कुश्ता'	ज्ञानी दित्तसिंह	रामशरनदास एडवोकेट
संतसिंह सेखों	डा० मोहनसिंह	मोहनसिंह वैद्य	देवेन्द्र सत्यार्थी
गुरुबख्शसिंह	डा० गोपालसिंह 'दर्दी'	गुरुबख्शसिंह नारङ्ग	अमृताप्रीतम
हरचरणसिंह	प्रो० सुरिन्द्रसिंह नरूला	लाभसिंह नारङ्ग	करतारसिंह दुग्गल
रोशनलाल आहूजा	संत सिंह सेखों	प्रि० गङ्गासिंह	हरजीतसिंह
गुरदयालसिंह 'फुल्ल'	प्रो० रामसिंह	गुरुबख्शसिंह	संतोषसिंह धीर
एस० एस० अमोल	प्रि० तेजासिंह	नानकसिंह	हरनामसिंह 'नाज़'
मेजर मक्खनसिंह	प्रो० हरबंससिंह	हरकिशनसिंह	अजाइब 'चित्रकार'
इंद्रसिंह चक्रवर्ती	प्रो० हरदयालसिंह	नवतेज	करतारसिंह 'शमशेर'
गोपालसिंह 'दर्दी'	प्रो० सुरेन्द्रसिंह कोहली	प्यारासिंह 'पदम'	
नानकसिंह	रोशनलाल आहूजा	अजायब 'चित्रकार'	
बलराज 'साहनी'	डा० बनारसीदास जैन	गुरुदित्तसिंह ज्ञानी	
	डा० शेरसिंह	प्रो० मोहनसिंह	
	दुनीचन्द लला	करतारसिंह 'बलग्गन'	
	प्रो० परमिंदरसिंह	हीरासिंह 'दर्द'	
	प्रो० करपालसिंह		

पञ्जाबी साहित्य की उत्पत्ति एवम् विकास पर दृष्टि-क्षेप करने के पश्चात् पञ्जाबी लिपि के सम्बन्ध में भी विचार कर लेना अनुचित न होगा। लिपि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों के दो मत हैं; कुछ विद्वान् पञ्जाबी लिपि को आदि काल से सम्बन्धित मानते हैं तथा कुछ इसका निर्माण सिक्खों के द्वितीय गुरू अङ्गददेव जी के द्वारा हुआ मानते हैं।

पञ्जाबी के उत्कट विद्वान् सरदार जी० बी० सिंह इसकी उत्पत्ति गुरु काल के पर्याप्त पूर्व मानते हैं, तथा अन्य यूरोपीय तथा भारतीय विद्वान् इसकी उत्पत्ति द्वितीय गुरु काल से मानते हैं। यूरोपीय विद्वानों में विशेष खोज डा० ग्रीयर्सन, प्रो० बीम्स, न्यूटन तथा डा० लाइटनर ने की हैं; इनके पश्चात् भारतीय विद्वानों में ला० दुनीचंद, डा० मोहनसिंह, प्रो० रामसिंह, प्रो० करतार सिंह, प्रो० साहिबसिंह, मास्टर करमसिंह गञ्जावाला, डा० बनारसीदास, करतार सिंह दाखा तथा प्रो० जी० बी० सिंह ने भी पर्याप्त खोज की है। लिपि पर विचार करने के पूर्व हम उन विद्वानों तथा उनकी पुस्तकों की अनुक्रमणिका देना अत्यावश्यक समझते हैं जिन्होंने पञ्जाबी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मक अध्ययन किया तथा खोज की। इतने अध्ययन तथा खोज के उपरान्त भी पञ्जाबी का पर्यवेक्षण होना अभी पर्याप्त मात्रा में शेष है जो विद्वानों का प्रधान विषय बना हुआ है—*

* इस अनुक्रमणिका के निर्माण करने में पञ्जाबी विभाग, पटियाला के 'पञ्जाबी-दुनिया' के कार्यवाहक सम्पादक श्री० प्यारासिंह 'पदम' के लेख 'बोली' का पर्याप्त सहयोग प्राप्त हुआ है।

लेखक का नाम	सम्भावित रचना-काल	कृति का नाम
मि० कैरी	१८१२	ए ग्रामर आफ़ पंजाबी लैंग्युएज
मि० हेयर्ज़	१८२६	इङ्गलिश पंजाबी डिक्शनरी
मे० रॉबर्ट	१८३८	ए ग्रामर आफ़ पंजाबी लैंग्युएज
कै० स्टारकी	१८४६	डिक्शनरी आफ़ इङ्गलिश एन्ड पंजाबी
जॉन न्यूटन	१८५१	ए ग्रामर आफ़ दी पंजाबी लैंग्युएज
मि० पेरी	१८५३	हिन्दुस्तानी बोलियों पर लेख लिखा
बिहारी लाल	१८६७	पंजाबी व्याकरण
जॉन बीम्ज़	१८७२	ए कम्परेटिव ग्रामर आफ़ दी मॉडर्न एरियन लैंग्युएजेज़
कृष्ण गोपाल भण्डारकर	१८७७ से १९१४	विलसन फ़िलौलॉजीकल लैक्चर्स
मो० अब्दुलगफ़ूर	१८७९	ए कम्पलीट डिक्शनरी आफ़ दी टर्म्स बाई दी क्रिमिनल ट्राइब्ज़ आफ़ दी पंजाब
पंडित शरधाराम	२८८४	पंजाबी बातचीत
मि० टिज़डल	१८८९	ए सिम्प्लीफ़ाइड ग्रामर एण्ड रीडिंग बुक आफ़ दी पंजाबी लैंग्युएज
आर० मैकोनेकी	१८९०	सिलेक्टेड एग्रीकल्चरल प्रौवर्बस आफ़ दी पंजाब
जार्ज ग्रियर्सन	१८९४—१९२७	११ भाग—लिंग्विस्टिक सर्वे आफ़ इण्डिया (पंजाबी संबंधी भाग ९ है) प्रथम अध्याय
भाई महियासिंह	१८९५	दी पञ्जाबी डिक्शनरी
मुन्शी जवाहर सिंह	१८९५	ए वैक्यूबलरी आफ़ टू थाउज़ेण्ड वर्बस फ्राम इङ्गलिश इन्टू पञ्जाबी
ई० पी० न्यूटन	१८९६	ए गाइड टू पञ्जाबी
शालिग राम	१८९७	एङ्गलो गुरुमुखी डिक्शनरी
ई० पी० न्यूटन	१८९८	पंजाबी ग्रामर

शालिगराम	१६००	एङ्गलो गुरुमुखी बोलचाल
ग्राहम बेली	१६०४	पंजाबी ग्रामर
टी०एफ० कमिंग तथा ग्राहम बेली	१६१२	पंजाबी मैन्यूअल ग्रामर
ग्राहम बेली	१६१४	ए पंजाबी फ़ोनेटिक रीडर
प्रो. पी. डी. गुने	१६१८	इएट्रोडक्शन टू कम्परेटिव फ़िलॉलौजी
एच० ए० रोज़	अज्ञात	कन्ट्रीब्यूशन टू पञ्जाबी लैक्सोकोग्राफ़ी
मि. उब्भाराइन	अज्ञात	मुलतानी ग्लौसरी
सिद्धेश्वर वर्मा	अज्ञात	लहिंदी प्रोनाउन्सियेशन्स
परमानंद बहेल	अज्ञात	इजेक्टिव आफ़ मुलतानी
लाला दुनीचन्द लला	१६२५.	हिंदी पञ्जाबी भाषा-विज्ञान
प्रो० रामसिंह	१६२६	शब्द चमत्कार
डा० बनारसी दास जैन	१६३४	फ़ोनोलॉजी आफ़ पञ्जाबी
डा० बनारसी दास जैन	१६३४	लुधियाना फ़ोनेटिक रीडर
ज्यूल्ज़ ब्लॉक	१६३४	इएडो-आर्यन
डा• सुनीति कुमार चटर्जी	१६४२	इएडो-आर्यन एएड हिंदी
बा० बुद्धसिंह	अज्ञात	हंस-चोग
प्रो. गंडासिंह	१६५१	पञ्जाबी लिपी दी समर्था
जी० बी० सिंह	अज्ञात	गुरुमुखी लिपी दा जन्म ते विकास
जी० बी० सिंह	अज्ञात	गुरुमुखी दे जन्म पर विचार
प्रो. प्रीतमसिंह	१६५२	ख़रोशनी लिपि
प्रि० जोधसिंह	१६५२	गुरुमुखी लिपि
गुरु दित्तसिंह ज्ञानी	अज्ञात	पञ्जाबी दे विकास दा इतिहास

करतारसिंह १९५२ पञ्जाबी हिंदी दा टाकरा
दाखा

........इत्यादि

संत-भाषा-काल एक ऐसा समय था जब भारतवर्ष के प्रत्येक भाग में एक सम्मिलित एवम् सामूहिक बोली पाई जाती थी। इसका श्रेय बहुत करके पञ्जाब के नाथों तथा मुसलमानों को है जोकि पञ्जाब में रहकर भारत के अन्य विभागों में भ्रमण करते रहे और बोली में समानता पैदा करते रहे। विद्वानों का मत है कि उस काल में देवनागरी का चलन अधिकतर था। पञ्जाब में प्रायः शारदा (जिसे पुरानी पञ्जाबी भी कहा जाता है) काश्मीरी लिपि का चलन था यह माना जाता है। गुरु अङ्गददेव जी ने पञ्जाबी लिपि का शोधन किया; तदुपरान्त सिक्ख गुरू इसी लिपि में अपना साहित्य रचने लगे इस कारण इसे गुरुमुखी कहा गया *।

विद्वानों का मत है कि पुरातनकाल में संस्कृत गुरुमुखी लिपि में भी लिखी जाती रही है ‡। उक्त तर्क का प्रति-पादन विद्वान् अशोक के शिला लेखों का हवाला देकर करते हैं तथा कहते हैं कि वह लिपि पञ्जाबी से पर्याप्त मिलती है। गुरु अङ्गद देव के समय में पञ्जाब में शारदा, टाकरी तथा महाजनी का अधिक प्रयोग होता था। जिस प्रकार पालवंश द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली भाषा को पाली कहा जाने लगा उसी के समान काश्मीर के धनी जिन्हें 'ठाकुर' कहा जाता था—के उपयोग में आने वाली लिपि 'शारदा' से 'ठाकरी' तथा 'ढाकरी' से 'टाकरी' कहलाई। इसी प्रकार 'लँडे' जिनका

---

* "Gurumukhi" how ever is not a name for a mere Character as is supposed both by native, including now even the Sikhs themselves, any by Europeans. Entymologically and historically it is the name of Language which flowed from mouth of Guru Nanak"—"History of Indiegenous Education in the Punjab"—Lietner.

‡ "पञ्जाबी दे विकास दा इतिहास"—ज्ञानी गुरुदित्त सिंह

प्रयोग महाजन, धनी–मानी वैश्य करते थे 'महाजनी' नाम से प्रचलित थी। इन्हीं दिनों लिपियों को शुद्ध करके गुरु लोगों ने 'गुरुमुखी' नाम दिया कहा जाता है।

दूसरे मत के विद्वान् इससे भिन्न हैं, उनका मत है कि गुरु अङ्गददेव ने ही शारदा, लँडे तथा हिंदी के कुछ शब्दों को लेकर यह लिपि अपने शिष्यों के लिए बनाई, जो कालान्तर में गुरुमुखी नाम से प्रसिद्ध हो गई। प्रसिद्ध भाषा-शास्त्री ग्रीयर्सन भी इसी मत का समर्थक है। उसका कथन है—'पंजाबी बोली प्रायः गुरुमुखी लिपि में लिखी जाती है। कभी-कभी भ्रम-वश बोली को भी गुरुमुखी कह दिया जाता है। देवनागरी के समान ही गुरुमुखी अक्षरों में कई बोलिएँ लिखी हुई हैं।.........कहा जाता है कि द्वितीय गुरु अङ्गद देव (१५३८–१५५२) के समय में पञ्जाब में लिपि के नाम पर केवल लँडों का ही उपयोग होता था। गुरु अङ्गद देव जी ने यह विचार कर कि 'लँडों' में लिखी गई गुरुवाणी अशुद्ध न पढ़ी जाय (क्योंकि उसमें मात्राएँ नहीं लगाई जातीं) —इसलिए उन्होंने इस लिपि को शुद्ध किया तथा देवनागरी से मात्रादि लेकर इसे नवीन रूप देकर तय्यार किया, जिससे सिक्ख-धर्म की रचनाएँ इसके द्वारा शुद्ध लिखी व पढ़ी जा सकें। जब यह लिपि बन गई तब इसका नाम गुरु-मुखी प्रचलित हो गया, जिसका भावार्थ था—गुरु के मुख द्वारा उच्चारित' †। उक्त कथन से हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि लिपि का निर्माण गुरु अङ्गद-देव ने 'लँडों' को शोध कर किया था तथा 'लँडों' में देवनागरी लिपि की मात्रादि की वृद्धि की।

पंजाबी के कुछ विद्वानों की खोज के अनुसार यह ज्ञात होता है कि गुरुमुखी का निर्माण गुरु अङ्गद देव ने नहीं किया वरन् गुरु नानक के समय भी गुरुमुखी का अस्तित्व था। भाई कान्हसिंह ने भी इस सम्बन्ध में पर्याप्त

---

† लिंग्विस्टिक सर्वे आफ़ इण्डिया, वाल्यूम ६, चैप्टर १—डा० जार्ज ग्रीयर्सन।

खोज की है §। यही नहीं, सरदार जीवनसिंह की खोजों के अनुसार तो गुरु-मुखी लिपि गुरुनानक से भी पूर्व प्रचलित थी ¶।

यही नहीं सरदार जी० बी० सिंह ने तो अपनी पुस्तक 'गुरुमुखी लिपि दा जन्म ते विकास' के दसवें अध्याय में यहाँ तक लिखा है कि ११वीं शताब्दी में जब अलबरूनी भारत के भ्रमण के लिए आया तब उत्तर-पश्चिमीय भारत में 'सिद्ध-मात्तृका' तथा 'अर्ध-नागरी' नामक दो लिपियाँ प्रचलित थीं; आगे वे यह भी स्पष्ट करते हैं कि अर्ध-नागरी आधुनिक देव-नागरी से पूर्णतः भिन्न

---

§ "कई लेखकों ने यह लिखा है कि गुरुमुखी अक्षर गुरु अङ्गद देव जी ने रचे हैं, किन्तु यह मिथ्या है। श्री पञ्चम गुरु अङ्गद स्वामी ने भी प्रचार किया है। श्री० गुरुनानक देव द्वारा रचित पट्टी जो 'आसा' राग में है उसके पठन से संशय दूर हो जाता है कि ३५ अक्षरों की वर्णमाला उस समय भी विद्यमान थी तथा 'ड़' ('ञ') अक्षर जो पंजाबी के अतिरिक्त अन्य किसी भी भाषा में नहीं है, पट्टी में प्राप्त होता है।" देखिए 'गुरु शब्द रत्नाकर महान्-कोष'—द्वितीय भाग, पृष्ठ १२५१–१२५२; भाई कान्हसिंह।

¶ "लोगों में यह बात प्रायः मानी जाती है कि यह लिपि गुरुनानक ने बनाई थी; तो भी यह बात विश्वस्त है कि चाहे उन्होंने अक्षरों का संशोधन ही किया हो : किन्तु अधिकतर अक्षर कुछ न कुछ अन्तर के साथ पर्याप्त पुरातन समय से मिलते आ रहे हैं।"—'गुरुमुखी लिपि दा जन्म अते विकास' —जी० बी० सिंह; पृष्ठ १३५

यही नहीं न्यूटन तथा लाइटनर भी इन्हीं विचारों की पुष्टि करते हैं—देखिए उनकी पुस्तकें क्रमशः 'A Grammer of the Punjabi Language' तथा 'History of Indiegenous Education in the Punjab' न्यूटन का मत है कि ३५ अक्षरों में से लगभग २१ अक्षर पुरातन लिपियों में से भलीभांति पहिचाने जा सकते हैं। इनमें से ६ दसवीं शताब्दी के हैं, ३ पाँचवीं शताब्दी ई० पू० तथा १२ तीसरी शताब्दी ई० पू० के प्रतीत होते हैं।

लिपि थी वे उस समय में 'टाकरी' के होने का भी उल्लेख करते हैं ¶; एवम् इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि सिद्ध-मात्तृक से काश्मीर की 'शारदा' का निर्माण हुआ तथा अर्ध-नागरी से पंजाबी का निर्माण हो गया।

कुछ भी हो, किंतु यह तो निश्चय ही है कि भारतीय लिपियों की जननी अशोक-कालीन ब्राह्मी-लिपि ही पंजाबी की जननी है †। वैसे कुछ विद्वान् पंजाबी के निम्न ७ अक्षर पूर्णतय: यूनानी भाषा से मिलते हैं—

ੳ ਅ ੲ ਖ ਥ ਫ ਰ

ओ अ इ ख थ फ र

निम्न १० अक्षर यूनानी लिपि से कुछ समानता रखते हैं—

ਸ ਹ ਕ ਦ ਨ ਪ ਮ ਯ ਲ ਵ

स ह क द न प म य ल व

इसके अतिरिक्त विद्वानों का यह भी मत है कि मात्रादि भी पंजाबी ने देव-नागरी से ही अपनाई हैं। +

इनके अतिरिक्त कुछ अन्वेषक अपनी खोज इस प्रकार बतलाते हैं—§

¶ "अलबरूनी ने टाकरी का उल्लेख नहीं किया यद्यपि उस काल में इसका प्रचलन सर्वत्र था।"—देखिए, 'गुरुमुखी लिपि दा जन्म ते विकास' दसवाँ परिच्छेद······ले०—जी० बी० सिंह

† देखिए, 'शब्द चमत्कार'—प्रो० रामसिंह पृष्ठ ३०८—३१२ इसमें कई लिपियों के अक्षरों का साम्य भी बताते हैं। उनका कथन यूँ है—'ट' तथा 'ठ' दोनों अक्षर हिन्दी से पूर्णतय: मिलते हैं; इस मत को सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं—

+ देखिए—पंजाबी साहित्य दा इतिहास"—डा० गोपालसिंह दर्दी

§ देखिए 'पंजाबी साहित्य दी उत्पत्ति ते विकाश'—परमिंदरसिंह तथा कृपालसिंह

	टाकरी या ठाकरी	शारदा	देवनागरी
गुरुमुखी में समान अक्षर	१५	७	२
,, में मिलते जुलते	५	१२	५
,, से कुछ मिलते जुलते	६	—	११
,, से नहीं मिलते	८	१६	१४

उक्त विभिन्न मतों को देख कर हम इसी निश्चय पर पहुँचते हैं कि पंजाबी की निकटतम लिपि ठाकरी, टाकरी या टांकरी है; किन्तु इसका पुरातन सम्बन्ध तो भारतीय लिपियों की जननी ब्राम्ही से ही है यह तो निश्चय ही है।

ब्राम्ही लिपि से पंजाबी किस प्रकार बनी इस सम्बन्ध में हम यहाँ कुछ चित्र देना आवश्यक समझते हैं जिनके अनुसार हमें यह स्पष्ट हो जाएगा कि ब्राम्ही-लिपि से पंजाबी लिपि का क्रमिक-विकास किस प्रकार हुआ और धीरे २ किस प्रकार गुरु अंगद देव ने उसे अपना लिया। निश्चय ही है कि जिस ग्रन्थ का संग्रह गुरू अर्जुनदेव जी ने किया वह उस समय इसी लिपि में ही लिखा गया। धीरे २ लिपि का क्रमिक-विकास होता रहा किन्तु, क्योंकि एक विशेष सम्प्रदाय की धर्म-पुस्तक एक विशेष लिपि में संग्रहित कर लिखी गई थी, अतएव आनेवाली पीढ़ियों ने उसी को पवित्र एवम् गुरू के मुख से उच्चारित भाषा तथा लिखित लिपि समझ कर अपना लिया—और धीरे २ तत्कालीन ब्राम्ही का परिवर्तित रूप ही आज की गुरुमुखी लिपि बन गया। अगले पृष्ठ पर दिए गए चित्रों से तो यह शंका और भी पुष्ट हो जाती है कि गुरुमुखी लिपि अन्य कोई नहीं वरन् ब्राम्ही का ही परिवर्तित एवम् संवर्द्धित रूप है। वैसे ईसा की तृतीय शताब्दी तक खरोष्ठी-लिपि भी भारत में प्रचलित रही किन्तु इसका विशेष चलन पंजाब के पश्चिमी विभाग में ही था। वह लिपि क्योंकि ब्राम्ही की भांति वैज्ञानिक न बन पाई थी इस कारण धीरे २ लुप्त हो गई और उसका स्थान ब्राम्ही लिपि ने ही ले लिया।

अगले पृष्ठ पर दिए गए चित्रों के बनाने में महामहोपाध्याय पं० गौरी-शंकर हीराचन्द्र ओझा की पुस्तक प्राचीन-लिपि-माला से पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई है। विस्तार के लिए उसे देखें—

पंजाबी अक्षरों की उत्पत्ति का चित्र

नागरी	पंजाबी	उसकी ब्राह्मी से उत्पत्ति
उ	ੳ	[illegible]
अ	ਅ	[illegible]
इ	ੲ	[illegible]
स	ਸ	[illegible]
ह	ਹ	[illegible]
क	ਕ	[illegible]
ख	ਖ	[illegible]
ग	ਗ	[illegible]
घ	ਘ	[illegible]
ङ	ਙ	[illegible]
च	ਚ	[illegible]
छ	ਛ	[illegible]
ज	ਜ	[illegible]
झ	ਝ	[illegible]
ञ	ਞ	[illegible]

पंजाबी अक्षरों की उत्पत्ति का चित्र

नागरी	पंजाबी	उसकी ब्राह्मी से उत्पत्ति
ट	ਟ	[illegible]
ठ	ਠ	[illegible]
ड	ਡ	[illegible]
ढ	ਢ	[illegible]
णा	ਣ	[illegible]
त	ਤ	[illegible]
थ	ਥ	[illegible]
द	ਦ	[illegible]
ध	ਧ	[illegible]
न	ਨ	[illegible]
प	ਪ	[illegible]
फ	ਫ	[illegible]
ब	ਬ	[illegible]
भ	ਭ	[illegible]

पंजाबी अक्षरों की उत्पत्ति का चित्र

नागरी.	पंजाबी	उसकी ब्राह्मी से उत्पत्ति
म	ਮ	[…] ਮ
य	ਯ	[…] ਯ
र	ਰ	। […] ਰ
ल	ਲ	[…] ਲ
व	ਵ	[…] ਵ

पंजाबी अंकों की उत्पत्ति का चित्र

नागरी.	पंजाबी.	उसकी ब्राह्मी से उत्पत्ति
१	੧	− […] ੧
२	੨	= […] ੨
३	੩	≡ […] ੩
४	੪	+ […] ੪
५	੫	[…] ੫
६	੬	[…] ੬
७	੭	[…] ੭
८	੮	[…] ੮
९	੯	[…] ੯

हिन्दी तथा पंजाबी मात्राओं में साम्य

हिन्दी	पंजाबी
ा	ਾ
ि	ਿ
ी	ੀ
ु	ੁ
ू	ੂ
े	ੇ
ै	ੈ
ो	ੋ
ौ	ੌ
ं	

ऊपर हम पंजाबी बोली के निकास-विकास तथा लिपि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में चर्चा कर चुके हैं। साथ ही हमने लेख के प्रारम्भ में लिखा था कि पंजाबी बोली कहावतानुसार हर बारह कोस पर बदलती जाती है तथा अपने विभिन्न विभागों में विभिन्न उपभाषायें भी बनाती जाती है। साथ ही हमने कुछ उप-भाषाओं का उल्लेख भी किया था—यहाँ उनका वर्गानुसार विश्लेषण करना अनुपयुक्त न होगा।

लगभग प्रत्येक जीवित बोली की उपभाषायें भी कई होती हैं। प्रश्न यह उठता है कि बोलियों की उप-बोलियाँ भी क्या उस बोली के समान ही अपना विशिष्ट साहित्य रखती हैं? देखा गया है कि उप-बोलियों का विशेषतः लोक-साहित्य ही भिन्न होता है; एवम् उनमें शब्दों की, उच्चारणों की तथा उनके उपयोग की भिन्नता होती है। इसके पूर्व कि हम उप-बोलियों का वर्गीकरण या विश्लेषण करें—अधिक उपयुक्त होगा यदि हम उन कारणों पर पहिले विचार-विमर्श करें जिनके द्वारा बोली में परिवर्तन होते हैं।

बोलियों के परिवर्तन का प्रमुख कारण उस विशेष विभाग की भूगोलिक स्थिति है। ऊपर हम जिस कहावत का उल्लेख कर चुके हैं—उसमें सत्यता का पुट है, एवम् वह कहावत उस काल की है जब देश में यातायात के साधनों की कमी थी। रेल, मोटर, तांगे आदि देश में कम पाए जाते थे। लोग प्रायः पैदल या बैल-गाड़ियों के द्वारा इधर-उधर आते जाते थे। वर्तमानकाल में हम छोटे से छोटे कार्य के लिए भी देश-देशान्तर में चले जाते हैं किन्तु उस युग में तो नितान्त आवश्यक कार्य के होने पर ही बारह कोस जितनी दूरी पर जाया जाता होगा—तभी तो तत्कालीन लोक में यह कहावत प्रचलित हो गई कि बारह कोस पर बोली बदलती है। लोग जब अपने प्रदेश को छोड़कर आगे बढ़ते होंगे तो उन्हें लोगों से वार्त्तालाप आदि करते समय जो प्रधान परिवर्तन प्रतीत होता होगा वह बोली का ही था तभी तो वे ऐसी कहावत कहने लगे जो आज तक भी चरितार्थ होती है, यद्यपि शताब्दियाँ बीत गईं जब कि यातायात के साधन मनुष्य ने जुटा लिए हैं। पंजाब का यदि तीक्ष्ण-दृष्टि से पर्यवेक्षण किया जाए तो हम पायेंगे कि मुग़ल-कालीन ऐसी कई सरायें बनी हुई हैं जो किले के समान हैं एवम् जिनमें एक छोटा-मोटा नगर आबाद हो

सकता है। ये सराय आदि प्रायः बारह कोस के घेरे में ही बनी हुई मिलती हैं। निश्चय ही ये उस काल की इलाके-बन्दी के अनुसार यात्रियों तथा सेना के विश्राम-गृह थे। एक बात और जो हमें इसके साथ ही ज्ञात होती है कि उस समय इलाके-बन्दी भी सम्भवतः बोलियों के आधार पर ही थी या यूँ कहा जा सकता है कि इलाकों के आधार पर ही बोलियों के नाम आदि रखे गए थे—जैसे मालवे में मलवई, पोआध में पोआधी, पोठोहार में पोठोहारी तथा झङ्ग में झाङ्गी इत्यादि बोलियाँ थीं। उस काल में हमें पञ्जाबी बोली का उल्लेख प्रायः कम ही मिलता है; इसी कारण पुरातन विद्वानों ने पञ्जाबी का उल्लेख न करते हुए, लाहौरी, पोठोहारी, मुलतानी, झाँगी, मलवई तथा पोआधी का उल्लेख किया है।

ऊपर हमने पुरातन काल में यातायात की कमी के कारण उप-बोलियों की वृद्धि का उल्लेख किया है साथ ही हमने कुछ भूगोलिक कारणों का भी संकेत किया था। नदी, रेगिस्तान, जङ्गल, पहाड़ इत्यादि भी बोलियों के परिवर्तन में अपना पर्याप्त हाथ रखते हैं। भारतवर्ष के प्रान्तों, राज्यों या ज़िलों इत्यादि का बटवारा भी प्रायः उस भू-भाग की भूगोलिक सीमाओं के आधार पर ही हुआ है। निश्चय ही है कि एक नदी दो भू-भागों को यातायात की असुविधा में विलग कर देती है और यदि यातायात की सुविधा हो तो वे एक दूसरे से संलग्न भी रहते हैं, किंतु प्रायः देखने में यह ही आता है कि नदियों के कारण दो भू-भाग एक दूसरे से विलग ही रहते हैं; कभी २ तो दोनों विभागों में न केवल बोलियों का ही अन्तर मिलता है वरन् संस्कृति, रीति-रिवाज और अन्य बातों में भी पर्याप्त अन्तर हो जाता है। केवल नदियों से ही दो भू-भाग एक दूसरे से विलग होते हों यह बात नहीं, वरन् जङ्गलों, पहाड़ों और रेगिस्तानों से भी यही अन्तर हो जाता है। यदि हम यह भी कह दें कि जङ्गल, पहाड़ और रेगिस्तान नदी की अपेक्षा दो विभागों में अधिक अन्तर कर देते हैं तो अतिशयोक्ति न होगी।

प्रायः देखा जाता है कि जिस भू-भाग के चारों ओर जङ्गल हो, तो वह प्रदेश अन्य भू-भागों से विलग हो जाता है, ऐसी दशा में उस भू-भाग की बोली भी अन्य स्थानों से भिन्न होती है। पञ्जाब के पश्चिमीय प्रदेशों में

भी जङ्गली इलाके पाए जाते हैं जिनसे वहाँ की बोली में भी अन्तर आ गया है। इसी प्रकार रेगिस्तान तथा पहाड़ भी एक भाग को दूसरे से भिन्न कर देते हैं।

भूगोलिक कारणों के पश्चात् हमें ऐतिहासिक कारण भी ऐसे कई मिलते हैं जिनके कारण बोलियों में अन्तर हो जाता है। पंजाब भारत का उत्तरी प्रवेश-द्वार होने के कारण आक्रमण-कारियों का केन्द्र रहा है। इसके अलावा, बाहर से आने वाली विभिन्न जातियाँ भी यहाँ बसती रही हैं जिनकी बोलियों का प्रभाव भिन्न २ भागों पर सदैव रहा है।

विशेष भू-भाग की चतुर्सीमा भी उप-बोलियों में अन्तर करती रहती है। जो इलाके सीमान्त पर होते हैं उनकी बोली पर दूसरी बोली का प्रभाव होना स्वाभाविक ही है। ज्यों-ज्यों हम केन्द्र की ओर जायेंगे त्यों-त्यों हमें बोली का मुख्य एवम् ठेठ रूप प्राप्त होगा। अतएव हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि सीमावर्ती भू-भागों की बोली पर निश्चय ही अन्य बोलियों का भी प्रभाव होता है। इस कारण वह उप-बोली विभिन्न ही प्रतीत होती है।

बोली में अन्तर होने का एक और कारण भी हो सकता है जो कि जलवायु के कारण होता है। निश्चय ही पर्वतीय प्रदेशों की बोली मैदानी बोली से भिन्न होती है, इसी प्रकार शीत तथा ऊष्ण जलवायु वाले भू-भागों की बोली में भी अन्तर होता है। जलवायु का अन्तर उच्चारण में भी परिवर्तन ला देता है—यह एक वैज्ञानिक सिद्धान्त है।

कभी २ व्यापारिक केन्द्र बने हुए भू-भागों की बोली भी भिन्न होती है। इसका मुख्य कारण है उस भाग-विशेष में भिन्न २ बोली बोलने वालों का आवागमन। धीरे २ उस विभाग की बोली आस-पास के इलाके से नितांत भिन्न हो जाती है।

इसी प्रकार राजनैतिक महत्त्व के इलाकों में भी बोली का परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक बात है। जिस शासक का शासन होता है उसकी बोली का प्रभाव उस स्थान के लोक पर होना स्वाभाविक ही है। यद्यपि बोलियों में होने वाला परिवर्तन एक दम ज्ञात नहीं हो पाता किंतु समय की खाई उस

अंतर को स्पष्ट कर देती है और एक दिन प्रतीत होता है कि वहाँ की बोली भिन्न हो गई है।

कभी २ हमें ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि एक भू-भाग में ही नहीं वरन् एक ही नगर में भिन्न जातियों के लोग भिन्न बोलियाँ बोलते हैं, यद्यपि वे निवासी उसी नगर के होते हैं। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि उन लोगों का पुरातन निवासस्थान तथा जाति आदि भिन्न थीं तथा वे किसी विशेष समय में उस नगर में आ गए और बसने लगे। बसते २ वे उसी नगर या प्रान्त के कहलाने लग गए। उनकी बोली तो उसी प्रान्त या नगर की ही हो रही, किंतु उस बोली में उनकी अपनी पुरातन बोली का प्रभाव होने के कारण वह उस विशेष बोली से भिन्न प्रतीत होने लगी।

ऊपर हम ने उप-भाषाओं की उत्पत्ति या उनके निर्माण के कारणों पर सविस्तार विचार किया है। हमने पाया कि भूगोलिक, ऐतिहासिक, सीमान्तरिक, जलवायु संबंधी, व्यापारिक, राजनैतिक तथा जातीय अंतरों के कारण इन उप-भाषाओं में परिवर्तन पाए जाते हैं और यही कारण हमारी प्रमुख कहावत को सत्य सिद्ध करने में अपना हाथ बँटाते हैं। अब हमें देखना यह है कि ठेठ पञ्जाबी कौनसी है तथा उसकी सहायक उप-भाषायें कौन-कौन सी हैं तथा कहाँ-कहाँ हैं। जब पञ्जाब की बोली पञ्जाबी नहीं कहलाती थी उस काल में विभिन्न भू-भागों की भाषायें उन विशेष भू-भागों के नाम से ही प्रसिद्ध थीं। प्रसिद्ध भाषा शास्त्री डा० जॉर्ज ग्रियर्सन भी पञ्जाबी का वर्गीकरण इन्हीं नामों से करता है। यही नहीं वह तो पञ्जाब की कई उप-भाषाओं की उपेक्षा भी करता है; जैसे उसने लहिंदी को पञ्जाबी से भिन्न माना है; जो असत्य है। पञ्जाबी की केन्द्रीय बोली लाहौर-अमृतसर में बोली जाने वाली पंजाबी मानी जाती है। पंजाबी के प्रारम्भिक काल में फ़रीद आदि कवियों ने काव्य-रचना लहिंदी में की थी। क्योंकि उस समय केन्द्रीय पंजाबी वही मानी गई थी। कालान्तर में काव्य-रचना लाहौरी या माझी में होने लगी और माझी केन्द्रीय बोली बन गई; किंतु वर्तमान काल में अधिकतर साहित्य-रचना अमृतसर के आस-पास बोली जाने वाली भाषा में होने लगी इस कारण केन्द्रीय पंजाबी अमृतसर की ही मानी जाती है। यद्यपि नागरिक, साहित्यिक या केन्द्रीय पंजाबी अमृतसर

में बोली जाने वाली ठेठ पंजाबी ही नहीं है उसमें कुछ साहित्यिक या सांस्कृतिक शब्द भी हैं; तथापि केन्द्रीय पञ्जाबी की भाषा अमृतसरी बोली से मिलती-जुलती ही मानी जाती है।

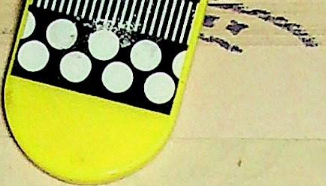
हम उप-भाषाओं की उत्पत्ति या उसका वर्गीकरण केन्द्रीय पंजाबी को ही मुख्य बनाकर कर सकते हैं। प्रधानतय: केन्द्रीय पंजाबी को विभिन्न उप-भाषाओं में बाँटा जा सकता है और प्रत्येक उप-भाषा विभिन्न उप-विभागों में विभिन्न भू-भागों के अनुसार बँट जाती है।

अगले पृष्ठ पर दिए जा रहे मानचित्र से यह वर्गीकरण स्पष्ट दृष्टि-गोचर हो जायेगा—

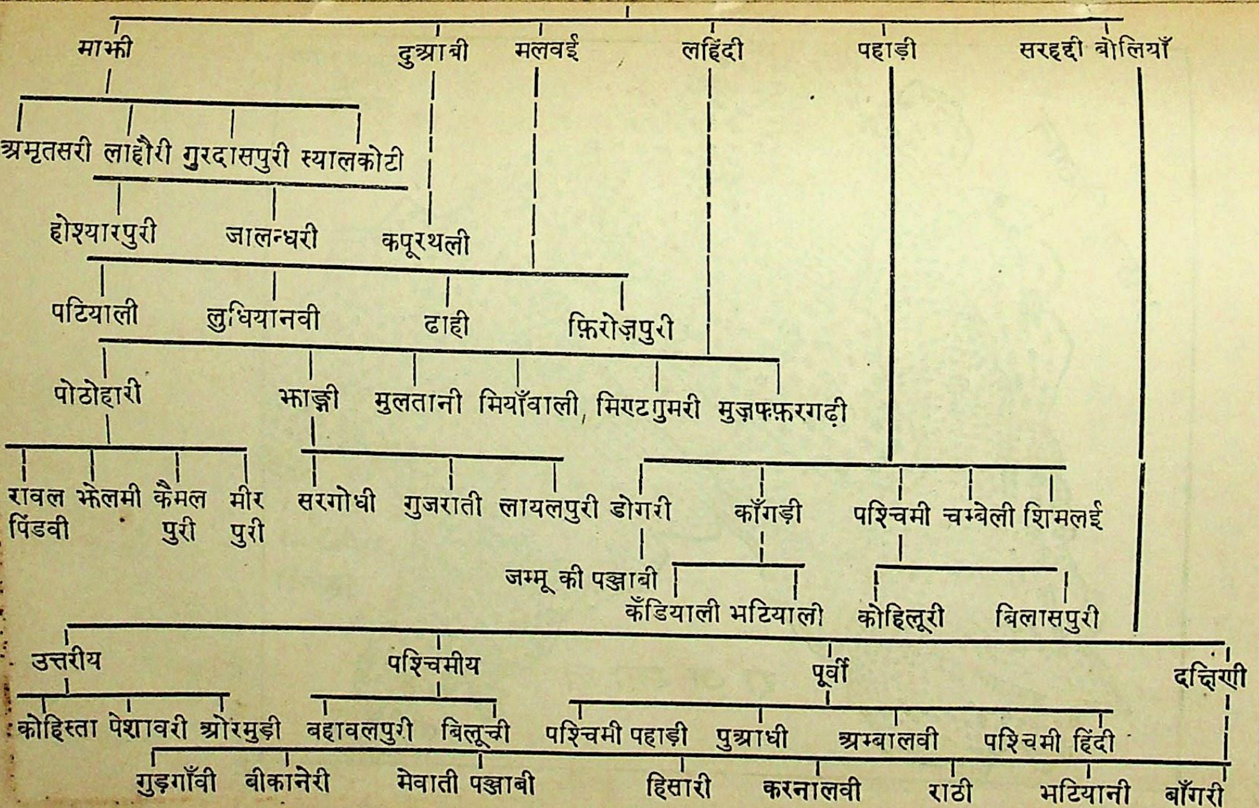
पंजाबी उपभाषाओं का वर्गीकरण

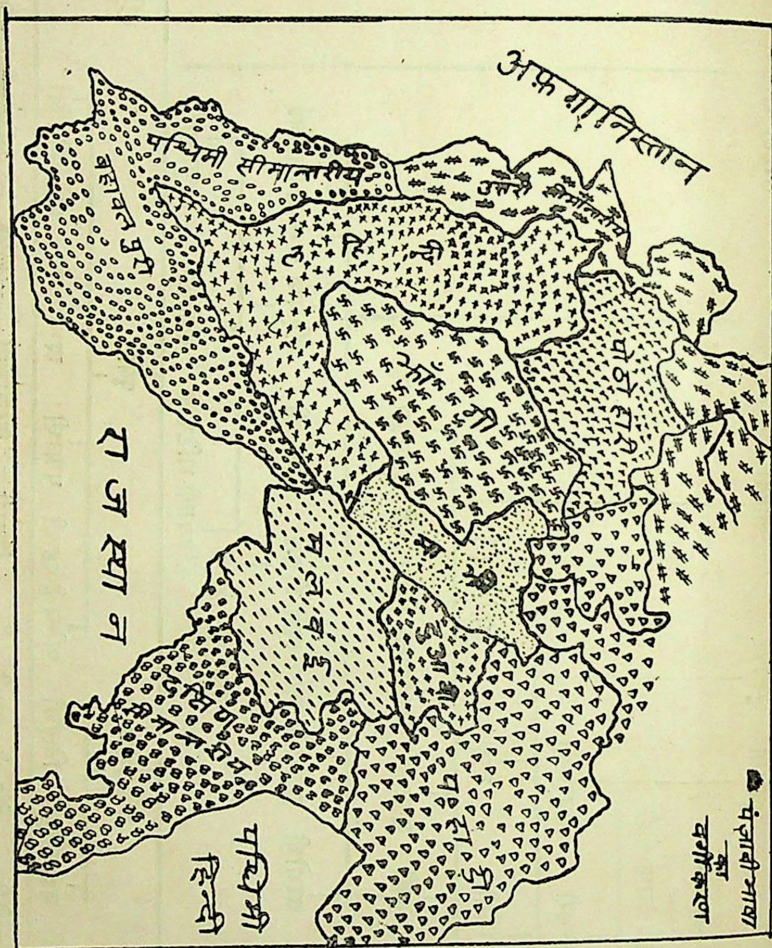
अफ़गानिस्तान
शिना
कश्मीरी
कोहिस्तानी
पगोली
मीरपुरी
रामबाणी
जम्मू
प. पहाड़ी
चम्बेली
काँगड़ी
कैमलपुरी
रावलपिंडी
गुजराती
गुरदासपुरी
ओर मुड़ी
मियाँवाली
सरगोधी
चिनाब
लायलपुरी
लाहौरी
अमृतसरी
भटी
होशयारपुरी
बिलासपुरी
शिमला की पंजाबी
जलन्धरी
ढाही
गढ़वाली
अंबाला की
झंगी
मुजफ्फर गढ़ी
मिन्टगुमरी
रावी
सतलुज
फिरोजपुरी
पटियाली
बाँगरी
करनाल की
बिलोची
बिलोची पंजाबी
मुलतानी
बहावलपुरी
सारस्वती (लुप्त)
बीकानेरी
हिसारी
रोहतकी
पश्चिमी हिन्दी
दिल्ली
ब्रज मिश्रित
अवधी
राजस्थान
सिन्धी
मेवाती
ब्रज

Dr.



माझी दुआबी मलवई लहिंदी पहाड़ी सरहद्दी बोलियाँ


माझी
दुआबी
मलवई
लहिंदी
पहाड़ी
सरहद्दी बोलियाँ
अमृतसरी लाहौरी गुरदासपुरी स्यालकोटी
होश्यारपुरी जालन्धरी कपूरथली
पटियाली लुधियानवी ढाही फ़िरोज़पुरी
पोठोहारी झाङ्गी मुलतानी मियाँवाली, मिएटगुमरी मुज़फ़्फ़रगढ़ी
रावल पिंडवी झेलमी कैमल पुरी मीर पुरी
सरगोधी गुजराती लायलपुरी
डोगरी काँगड़ी पश्चिमी चम्बेली शिमलई
जम्मू की पञ्जाबी
कँडियाली भटियाली
कोहिलूरी बिलासपुरी
उत्तरीय पश्चिमीय पूर्वी दक्षिणी
कोहिस्ता पेशावरी ओरमुड़ी बहावलपुरी बिलूची पश्चिमी पहाड़ी पुआधी अम्बालवी पश्चिमी हिंदी
गुड़गाँवी बीकानेरी मेवाती पञ्जाबी हिसारी करनालवी राठी भटियानी बाँगरी


अफ़ग़ानिस्तान
पश्चिमी सीमान्तीय
बहावलपुरी
राजस्थान
पश्चिमी हिन्दी
पंजाबी भाषा का वर्गीकरण

उपर्युक्त वर्गीकरण से पाठकों को स्पष्ट हो गया होगा कि किस प्रकार केन्द्रीय पञ्जाबी से विभिन्न उप-भाषायें या बोलियाँ भिन्नता रखती हैं। संक्षेप में हम इस वर्गीकरण को और स्पष्ट कर देना उचित समझते हैं, जिससे पाठकों को बोलियों के विशेष अंतर आदि ज्ञात हो सकें और वे उनकी विशेषतायें जान सकें

केन्द्रीय पञ्जाबी की निकटतम भाषा माझी है, जो अमृतसर, लाहौर तथा गुरुदासपुर के भू-भागों में बोली जाती है। यह प्रदेश 'माझी' के नाम से प्रसिद्ध है, तथा यहाँ की बोली 'माझी' कहलाती है। 'माझी' बोली के तीन उप-भेद हैं जो अमृतसरी, गुरुदासपुरी तथा लाहौरी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन प्रदेशों के साथ-साथ शेखूपुरा तथा लायलपुर की पूर्वी तहसीलों में भी यही बोलियाँ प्रचलित हैं। 'माझी' का गढ़ अमृतसर, पट्टी, कसूर, लाहौर तथा तरनतारन माना जाता है। यह प्रदेश 'रचना' के नाम से भी प्रसिद्ध है। 'रचना' रावी तथा चिनाब नदियों का संक्षिप्त रूप है। तात्पर्य है कि—रावी तथा चिनाब के मध्य की बोली।

'अमृतसरी' माझी का उप-भेद है। वास्तव में यह भाषा केन्द्रीय पञ्जाबी कही जाती है। यहाँ की बोली की विशेषता यह है कि 'र' का उच्चारण करते समय 'ह' को 'र' में जोड़ देते हैं जैसे—राम, रोग, रेल इत्यादि का उच्चारण रे:ल रो:ग तथा रा:म इत्यादि होता है। इसी प्रकार यहाँ की बोली में 'ब' का उच्चारण 'व' में परिवर्तित हो जाता है जैसे—'बारी' के लिए 'वारी', 'बाट' के लिए 'वाट'। 'माझी' में 'बैठने' के लिए 'वैहना', 'वर्ष' के लिए 'वरा:' किंतु 'मलवई' में 'बरा:'। इसका निष्कर्ष यह निकला की 'मलवई' का 'ब', 'व' 'माझी' में 'व', 'ब' बन जाता है। 'भाई' को 'भाऊ' कहने का रिवाज भी माझी की उप-बोली अमृतसरी में ही है।

'लाहौरी' माझी का दूसरा उप-भेद है। यह शकरगढ़, स्यालकोट की तहसील डसका तथा गुजराँवाले के कुछ भाग में बोली जाती है। यूँ तो लाहौरी बोली के भी कई उप-भेद हो सकते हैं किंतु विस्तार-भय से यहाँ उल्लेख करना उचित प्रतीत नहीं होता। लाहौरी में विशेष अंतर तो नहीं है किंतु किन्ही-किन्ही शब्दों में अंतर अवश्य है, जैसे—यहाँ 'भाई' को 'भाइया' तथा

'पिता' को भी 'भाइया' ही कहा जाता है। 'पिता' को 'चाचा' तथा 'ताऊ' को 'बावा' कहा जाता है। स्यालकोटी उप-भेद में 'दा' का प्रयोग प्रायः होता है, जैसे—'वह गया है' के लिए पंजाबी में 'ओह गया है' तो स्यालकोटी में 'ओह ग्यादा ए'। 'गुरदासपुरी'—'माझी' का तीसरा उप-भेद है। गुरदासपुर, जण्डियाला तथा लोप्पोंके आदि में इसी उप-भेद का चलन है, यहाँ भाई को 'भा' कहा जाता है। इसके अलावा कहीं-कहीं शब्दों में अंतर आता है अन्यथा ज्यों के त्यों उच्चारणों के साथ यहाँ 'माझी' ही बोली जाती है।

माझी में संस्कृत के ही रूप 'पुत्र', 'सूत्र', 'रात्रि', 'दोहत्रा' इत्यादि को 'पुत्तर', 'सूत्तर', रात्तर', 'दोहत्रा' कहा जाता है। इसी प्रकार श्रावण की 'त्रितिया' के त्यौहार को पञ्जाब में 'तियाँ' कहा जाता है जब कि 'माझी' के लगभग सम्पूर्ण प्रदेश ही में इसे 'साँवें' नाम से पुकारा जाता है।

दूसरी 'उप-भाषा' 'दुआबी' है। जो 'बिस्त' जलन्धर की बोली है। 'बिस्त' बिआस तथा सतलुज नदी का संक्षिप्त रूप है, अर्थात् बिआस और सतलुज के मध्य का प्रदेश। 'दुआबी' में तथा 'माझी' में विशेष अंतर 'व' तथा 'ब' का है; जैसे 'माझी' में 'बहू' के लिए 'वहुटी' तथा दुआबी में 'बहुटी'; 'माझी' में बड़ी' के लिए 'वड्डी' तथा दुआबी में 'बड्डी' 'घुसने' के लिए माझी में 'वड़ना' तथा दुआबी में 'बड़ना' इत्यादि। इसके अलावा 'किस तरह' के लिए माझी में 'किवें' तथा दुआबी में 'किदाँ', 'जैसे' के लिए माझी में 'जिवें' दुआबी में 'जिदां' इत्यादि। इसी तरह घी पिता इत्यादि के लिए यदि माझी में घिओ, प्यो है तो दुआबी में 'घे' तथा 'पे' इत्यादि।

दुआबी के तीन उप-भेद माने जाते हैं। जलन्धरी, होश्यारपुरी तथा कपूरथली।

'जलन्धरी' उप-भेद दसूआ, मुकेरियाँ, नङ्गल (पिंड) तथा रड़ाटाल्ली का माना जाता है। ये लोग पिता को 'पे' या 'बापू' कहते हैं। भाई को 'बीर' भी यहीं कहा जाता है। इसी उप-भेद से मिलती-जुलती बोली भलत्था, निडाला, ढिल्लम, करतारपुर, तथा जाति के भडाल की है यहाँ भाई को कहीं-कहीं 'भ्रा' और 'भाऊ' भी कहा जाता है।

'होश्यारपुरी' उप-भेद में गढ़शङ्कर, नकोदर तहसील तथा फ़िलौर या

सतलुज की बेट भी सम्मिलित हैं यहाँ पूर्व की ओर बीरन या बाकी प्रदेश में 'भ्रा' ही बोलते हैं। 'बेट' के इलाके में 'बाई' भी बोला जाता है। पिता को 'बाई' कहने की प्रथा भी इस प्रदेश में है।

'कपूरथली' उप-भेद की बोली अमृतसर से पर्याप्त मेल खाती है, किंतु इस पर दुआबे की बोली का प्रभाव अवश्य है, इसी कारण यह 'माझी' में सम्मिलित नहीं की जाती।

'मलवई' बोली मालवे में प्रचलित है, जो सतलुल से पूर्व की ओर बोली जाती है। फ़िरोज़पुर, लुधियाना, तवा, धनौला, बठिण्डा, पटियाला, कैथल, नरवाना, जगराओं, रायकोट, समराला तथा खन्ना इत्यादि 'मलवई' बोली का ही प्रदेश है। वैसे 'मलवई' 'दुआबी' से बिलकुल मिलती-जुलती ही बोली है किंतु दोनों के उच्चारणों में अंतर विशेष मिलता है। 'मलवई' के चार उप-भेद हैं 'पटियाली', 'लुधियानवी', 'ढाही' और 'फ़िरोज़पुरी।'

जिस प्रकार 'दुआबी' में 'व' के स्थान पर 'ब' का उच्चारण होता है उसी प्रकार 'मलवई' में भी। यहाँ पुरुष स्त्रियों को तथा स्त्रियाँ पुरुषों को प्रायः 'भाई' नाम से ही सम्बोधित करती हैं। संस्कृत के समान शब्दों को संक्षेप कर बोलने की प्रवृत्ति यहाँ है जैसे 'घर को' के लिए 'घराँ' या 'घर से' के लिए 'घरों' तथा 'एक वेर' (बार) के लिए 'केराँ'। इसी प्रकार प्रायः 'व' को 'म' में परिवर्तित कर दिया जाता है, जैसे—'पावीं' (पहिनना) को 'पामीं', 'नीवीं' (नीची) को 'नीमीं', 'हाँवीं' (हँकार) को 'हाँमीं' तथा 'तीवीं' (स्त्री) को 'तीमी' इत्यादि। इसी प्रकार 'त' का उच्चारण 'थ' में परिवर्तित हो जाता है जैसे—'तुहानूँ' (तुम्हें) को 'थौनूँ', 'उताँह' (ऊपर) को 'उथाँ', 'त्याह' (प्यास) को 'थ्याह' तथा 'तुहाडा' (तुम्हारा) को 'थौड्डा' इत्यादि। इसी प्रकार 'असीं' (हम) के लिए 'आप्पाँ' का प्रयोग होता है। मालवे में श्रावण त्रितिया को 'साँवें' के स्थान पर 'तियाँ' ही कहा जाता है।

'पटियाली' मालवी का क्षेत्र तवा, धनौल्ला, बठिण्डा, मानसा, साब्बो की तलवण्डी, पटियाला, नरवाना तथा कैत्थल है। नरवाना तथा कैत्थल की 'मलवई' पर कुछ 'करनालवी' तथा 'हिसारी' पंजाबी का प्रभाव भी प्रतीत होता है। जहाँ तुझे की बजाय 'तनें', मुझे की बजाय 'मनें' मनुष्य की बजाय

'मानस', इधर को 'इँघे' तथा उधर को 'उँघे' इत्यादि शब्दों का प्रयोग
है; किंतु शेष स्थान मालवा का ही क्षेत्र माना जाता है। यहाँ के लोग
को तथा भाई को 'बाई' का ही प्रायः प्रयोग करते हैं, कुछ लोग 'बापू'
कहते हैं।

यहाँ 'सान्नूँ' (हमें) को 'हमानूँ' (तुम्हें) को 'तुम्हानूँ', हुण (अ
को 'इब', 'विच' (बीच में) को 'विच माँ' इसी प्रकार 'साथ-साथ' को '
गैल' इत्यादि का भी प्रयोग है। लड़के को 'बूजा' तथा लड़की को 'बूजी'
जाता है।

'माँ बाप' के लिए 'बुढ़ा-बुढ़ी' का प्रयोग अधिक होता है। 'श'
उच्चारण 'स' किया जाता है, जैसे—श्री को 'सिरी' तथा शाह को '
इत्यादि। भूत-कालीन वाक्य के अंत में आने वाले 'सी' (था या थी)
लिए 'ती' का प्रयोग होता है।

'लुधियानवी' उप-भेद में जगरावाँ, रायकोट, लुधियाना तथा स
प्रदेश है। यहाँ यद्यपि 'मलवई' की उपर्युक्त ही बोली प्रचलित है, किंतु
कहीं अन्तर अवश्य है। 'नेड़े-तेड़े', 'लाग्गे-चाग्गे' (आस-पास) की
'लबे लाउणे' का प्रयोग होता है। भाई तथा बाप को 'बाई' ही कहा
है।

'ढाही' उप-भेद में समराला, खन्ना तथा माछूवाड़ा के क्षेत्र सम्मि
हैं। यहाँ की बोली पर कुछ थोड़ा सा 'पुआध' की बोली का भी प्रभाव है,
लुधियाने से बिलकुल मिलती-जुलती है। यहाँ पञ्जाबी में प्रयुक्त 'दे' (के
लिए 'के' का प्रयोग कहीं-कहीं पाया जाता है, जैसे 'राम के घर', 'श्या
घर' इत्यादि। ग्रामीण लोगों में 'स' को 'श' में परिवर्तित कर देने का
है, जैसे—'साइकल' को 'शैकल'; 'सिपाही' को 'शिपाही' तथा 'सड़क
'शड़क' आदि; कहीं-कहीं 'स' 'छ' में भी बदल जाता है जैसे—छड़क, छि
तथा छैकल इत्यादि।

'फ़िरोज़पुरी' मलवई में फ़िरोज़पुर का सम्पूर्ण क्षेत्र सम्मिलत है
तहसील फ़ाज़िलका इससे विलग है. जहाँ की बोली पर लहिंदी का थोड़ा
है। यहाँ भी दे (के) की बजाय 'के' का प्रचलन है। शेष खूबियाँ

'मलवई' की ही हैं। 'नहीं' का प्रयोग 'नीं' में हो जाता है। 'दा', 'दे', 'दी' का उपयोग न करते हुए हिन्दी के समान 'का' 'के' 'की' का प्रयोग भी यहाँ होता है।

ऊपर हमने 'माझी', 'दुआबी' तथा 'मलवई' उप-भाषाओं के संक्षिप्त भेद दिए हैं। यहाँ के 'लोक' में भी पर्याप्त अंतर पाया जाता है, जो कि एक 'अखाण' (आख्यान) से सत्य सिद्ध होता है—

"यद्दड़‡ रावी, बोंडी† दुआबा।
बो मारया§ मालवा, ते राठ¶ माझा"

रावी का प्रदेश वचन भङ्ग करने वाला है; अर्थात् रावी के निवासी वचन के पक्के नहीं होते। दुआबे का 'लोक' डरपोक है, मालवा निवासी नशेलची तथा सुगन्धों के पीछे जान देने वाले हैं (यहाँ के सिक्ख तथा जाट भी ५० प्रतिशत नशा करते हैं; इस कारण सिक्ख लोग इन्हें बोमारया कहते हैं क्योंकि वे तम्बाखू पीते भी हैं और सूँघते भी हैं) तथा माझे के लोग हिम्मत-वाले एवम् शक्तिवान होते हैं।

'माझी', 'दुआबी' तथा 'मलवई' के पश्चात् हमारे सामने 'लहिंदी' आती है जो चिनाब नदी के पार की बोली है। यही वह बोली है जो पंजाब की उत्तर-पश्चिमी सीमान्त पर बोली जाती है तथा जो सरहद्दी सूबे को पंजाब से मिलाती है। इस बोली में पोठोहार, झङ्ग, मुलतान, मियाँवाली, मिंटगुमरी तथा मुज़फ़्फ़रगढ़ के प्रदेश सम्मिलित हैं। लहिंदी को भाषा-शास्त्री ग्रियर्सन पञ्जाबी से भिन्न बताता है जो कि क़तई ग़लत है *।

'लहिंदी' बोली अन्य बोलियों के उप-भागों के समान ही ६ उप-भागों में बाँटी जा सकती है। पोठोहारी, झाङ्गी, मुलतानी, मियाँवाली, मिंटगुमरी तथा मुज़फ़्फ़रगढ़ी बोलियाँ एक रूप में लहिंदी कहलाती हैं—प्रत्येक में थोड़ा बहुत अन्तर अवश्य है। यही वह बोली जिसमें सर्व-प्रथम है पञ्जाबी की

‡ वचन के पक्के नहीं, † डरपोक, § नशेलची, ¶ हिम्मतवाले

* इसी परिच्छेद में हम पहिले इस विषय पर पर्याप्त लिख चुके हैं, यहाँ लिखना पुनरावृत्ति ही होगा—लेखक

साहित्य-रचना हुई एवम् जिसके उन्नायक बाबा फ़रीद शकरगञ्ज को माना जाता है।

'लहिंदी' का गढ़ मुलतान, चकवाल, कहूटा तथा तहसील गुजरख़ान आदि माना जाता है। हम पहिले लिख चुके हैं कि 'लहिंदी' के कई शब्द वैदिक भाषा से ज्यों के त्यों मिलते हैं। पहिले हम उन शब्दों का भी उल्लेख कर चुके हैं; जैसे—पिण्डा, अच्छणा, गच्छणा, लंघना, दोहत्रा, दोहत्री, निसरना इत्यादि। इसी समान संस्कृत का प्रभाव पुत्तर, सूत्तर, मूत्तर, पुत्तरी इत्यादि शब्दों पर भी प्रतीत होता है। 'माझी' 'दुआबी', या 'मलवई' में यह बात नहीं है वहाँ 'पुत्त', 'सूत', 'मूत', 'दोहता', 'दोहती' इत्यादि शब्दों का ही प्रयोग है। इसी प्रकार संस्कृत में जिस तरह क्रिया, कर्म, सम्बन्धक या योजक आदि को लगाकर संक्षित रूप बना लेते हैं, उसी प्रकार 'लहिंदी' में भी संक्षिप्त रूप बनाने की परिपाटी है, जैसे—'राम ने मारा' कहने की बजाय 'रामे मारया', 'वह उसे मारता है' को 'मरेन्दा उसु'। इसी प्रकार 'इ' का उच्चारण 'ह' में परिवर्तित होता है: जैसे—इक्क (एक) को वे 'हिक' कहते हैं; 'इह' (यह) को 'हे' इत्यादि। यूनानियों का प्रभाव 'स' को 'ह' में उच्चारित करने का यहाँ भी है जैसे—'सभ' को 'हभ'। 'र' का तथा 'द' का उच्चारण 'ड' में परिवर्तित होता जाता है; जैसे 'तेरा' को 'तेंडा', 'मेरा' को 'मेंडा' तथा 'दही' को 'डही' इत्यादि। संस्कृत का शब्द 'क्षीर' (दूध) यहाँ 'खीर' होकर प्रयुक्त होता है। कहीं-कहीं 'भ' 'ध' में परिवर्तित हो जाता है; जैसे 'लभ्भी' (खोजी) के स्थान पर 'लद्धी'। 'ए' मात्रा का उच्चारण (ऐं) हो जाता है जैसे 'तेरा' 'तैंडा' में बदल जाता है तथा 'मेरा' 'मैंडा' में बदल जाता है।

'पोठोहारी' लहिंदी का मुख्य भेद है। इसको चार उप-भागों में विभाजित किया जाता है। रावलपिण्डी, जेहलमी, कैमलपुरी तथा मीरपुरी। 'रावलपिंडी उप-भेद पोठोहारी का गढ़ माना जाता है। यहाँ की बोली पर पश्तो का प्रभाव भी है क्यों कि यह सरहद्दी सूबे से मिला हुआ है। यहाँ 'मंगवाई' को 'अणवाई' 'वाँग' (समान) को 'हार' कहते हैं। 'दी' के स्थान 'नी' तथा 'ते' की बजाय 'पर' या 'दार'। इसी प्रकार 'नूँ' 'की' बन जाता है।

जेहलमी उप-भेद के पूर्वी विभाग में गुजरात है तथा दक्षिण में

'सरगोधा' जिनकी बोली सरगोधी तथा गुजराती का प्रभाव यहाँ की बोली पर भी है । यहां 'खेस' को 'लुकार', 'उतरने' को 'ढल्साँ' इत्यादि शब्दों का प्रयोग है । भाई को 'आऊ' तथा बहिन को 'भैणूँ' कहा जाता है । शेष विशेषतायें पठोहारी के समान ही हैं ।

'कैमलपुरी' उपभेद ठेठ काबुल, पेशावर आदि से जा मिलता है; इस पर पश्तो का पर्याप्त प्रभाव है । कुछ शब्द तो यहाँ के विशेष हैं—जैसे 'मैंने लिया' के लिये 'मैं गिद्धा', 'ले' के लिये 'घिन' तथा 'पकड़' के लिये 'नप्प' इत्यादि । यहाँ भी भाई 'आऊ' या 'भाउआ' ही कहा जाता है । आवाज़ में एक विशेष बल देकर शब्दों का उच्चारण होता है ।

'मीरपुरी' पोठोहारी का चौथा उपभेद है । यहाँ की बोली पर कुछ पहाड़ी बोलियों का भी प्रभाव है । यह प्रदेश काश्मीर से मिलता जुलता है, इसी कारण पहाड़ी बोलियों का तथा डोगरी का भी कुछ प्रभाव इस बोली पर है । 'मैं' के लिये 'मिग्घी' 'तू' के लिये तिग्घी' यहाँ की ही बोली के शब्द हैं ।

'झांगी' 'लहिन्दी' का दूसरा उपभेद है जिसमें सरगोधा, लायलपुर सम्मिलित हैं । वैसे झंग की बोली से सरगोधा और लायलपुर की बोलियों में भी अन्तर है, इसी कारण 'सरगोधी' तथा 'लायलपुरी' झांगी बोली के उपभेद माने जाते हैं । झंग, चनोट, शोरकोट आदि 'झांगी' के गढ़ हैं । इस बोली पर 'पोठाहारी' तथा 'माझी' का भी कुछ प्रभाव प्रतीत होता है ।

'सरगोधा' उपभेद में रज़ाई को 'सीरक' 'तीखा' का 'त्रिक्खा', 'हौली' (धीरे) को 'मट्ठा' कहा जाता है । 'चढ़ता' कहने की अपेक्षा 'उभरदा' कहना, 'उतरते' को 'लहँदा' कहना 'सरगोधी' बोली की विशेषता है ।

'लायलपुरी' उपभेद में कुछ 'झांगी' का प्रभाव भी है । यहाँ की बोली लगभग 'सरगोधी' से मिलती जुलती ही है । केवल थोड़ा सा अन्तर अवश्य है । 'अब की बार' कहने की अपेक्षा 'त्रोके' कहना 'लायलपुरी' उपभेद की विशेषता है ।

'मुलतानी' 'लहिन्दी' का उपभेद है; यहाँ की बोली पर 'सिन्धी' का भी असर पाया जाता है । लहिन्दी की केन्द्रीय बोली यह 'मुलतानी' ही मानी

जाती है । 'मेरे' को 'मैंडे', 'तेरे' को 'तैंडे', 'मित्र' को 'साईं', 'सान्नू' (हमें) को 'साकू', 'दही' को 'डही', 'दूध' को 'खीर' तथा 'इक' (एक) को 'हिक' यहीं ही बोला जाता है ।

'मियाँवाली', लहिंदी का अन्य उपभेद है । यहाँ की बोली पर कुछ 'झांगी' बोली का भी प्रभाव प्रतीत होता है ।

'मुजफ्फरगढ़ी' उपभेद मुलतानी से मिलता-जुलता ही है । केवल कुछ शब्दों में अन्तर अवश्य है जैसे 'गल्ल' (बात) को 'गाल' कहा जाता है।

'मिएटगुमरी' उपभेद भी 'झाङ्गी' से प्रभावित है वैसे 'लहिन्दी' का ही प्रयोग होता है । कुछ शब्द जैसे लड़के के लिए 'छोहर' लड़की को 'छोहिर' तथा स्त्री को 'स्वानी' इसी प्रदेश में बोला जाता है ।

अब हमारे सामने 'माझी', 'दुआबी', 'लहिन्दी' और 'मलवई' के पश्चात् 'पहाड़ी बोलियाँ' तथा 'सरहद्दी बोलियाँ' ही शेष हैं जिन पर विचार करना है । पहिले हम पहाड़ी बोलियों पर विचार कर लें तदुपरान्त 'सरहद्दी बोलियों' पर मनन करेंगे ।

पहाड़ी प्रदेश पञ्जाब से लगा हुआ है अतएव वहाँ की अपनी बोली पर भी पञ्जाबी का पूरा २ प्रभाव हैं । पहाड़ी प्रदेश पञ्जाब के उत्तर-पूर्व से प्रारम्भ होकर उत्तर-पश्चिम तक है । पञ्जाब के उत्तर में काश्मीर तथा जम्मू का इलाका है जहाँ की बोली डोगरी या काश्मीरी कहलाती है । 'डोगरी' बोली के अलावा जम्मू में बोली जाने वाली पञ्जाबी भी सम्मिलित है । जम्मू को किसी काल में 'डुग्गर' या 'डोगरा' प्रदेश भी कहा जाता था । इसी कारण वहाँ की बोली 'डोगरी' के नाम से प्रसिद्ध हो गई । डॉ० ग्रियर्सन इस बोली को अर्ध-पहाड़ी प्रदेश की बोली मानते हैं; इसकी उप-भाषायें 'रामबाणी' तथा 'पगौली' इसे काश्मीरी बोली से भिन्न करती हैं । 'डोगरी' के दक्षिणी प्रदेश में गुरुदासपुर तथा स्यालकोट हैं जो उस पर 'माझी' बोली का प्रभाव डालते हैं; तथा पश्चिमीय क्षेत्र में 'लहिन्दी' तथा 'पोठोहारी' का प्रचलन होने से उस पर इनका प्रभाव भी अछूता न रह सका है । 'डोगरी' तथा 'जम्मू की पञ्जाबी' कुछ हद तक 'पोठोहारी' से समानता रखती है जैसे 'इ' के स्थान पर 'उ', 'ए' की बजाय 'ऐ' का प्रयोग होता है । 'मुझे' तथा 'तुझे' के

लिए यहाँ भी 'मिग्वी' तथा 'तिग्वी' का प्रयोग है। पञ्जाबी में प्रयुक्त होने वाले 'सी' या 'साँ' (था) की अपेक्षा 'था' का ही प्रयोग होता है। पञ्जाबी 'नूँ' (को) को यहाँ 'की' या 'गी' कहते हैं। डॉ० ग्रियर्सन के मतानुसार 'डोगरी' पञ्जाबी से पर्याप्त समानता रखती है।

'कांगड़ी' पहाड़ी बोलियों में एक प्रमुख भाषा है जिसके दो उपभेद 'कंडियाली' तथा 'भटियानी' भी माने जाते हैं। कुछ विद्वान इसे 'डोगरी' के अधिक समीप मानते हैं, किन्तु वास्तव में यह पंजाबी के अधिक समीप की बोली प्रतीत होती है क्यों कि इसका प्रदेश भी अधिकतर पंजाब से ही अधिक सामीप्य रखता है। यहां भी पंजाबी के 'सी' या 'साँ' (था) को 'था' कहा जाता है 'नूँ' (को) 'को' 'जो' कहने का यहां प्रचलन है।

'पश्चिमी पहाड़ी' में 'कहिलूरी' तथा 'बिलासपुरी' बोलियाँ भी सम्मिलित हैं। इस पर हिन्दी का भी पंजाबी के समान ही प्रभाव माना जाता है।

'पश्चिमी पहाड़ी' के क्षेत्र के पश्चिम की ओर 'कहिलूर' का प्रदेश है जहाँ की बोली 'कहिलूरी' कहलाती है। यह प्रदेश होश्यारपुर के पूर्व की ओर समीप ही है, अतएव यहाँ की बोली पर कुछ 'होश्यारपुरी' दुआबी का भी प्रभाव मिलता है।

'बिलासपुरी' बोली का क्षेत्र भी 'कोहिलूरी' से मिलता जुलता ही है। यहां की बोली कुछ परिवर्तनों के साथ 'कोहीलूरी' के समान ही है।

'चम्बेली' चम्बा की बोली कहलाती है, जो शिमला के समीप ही है। इस बोली पर हिन्दी का पर्याप्त प्रभाव है। पंजाबी के प्रभाव से भी 'चम्बेली' विभिन्न नहीं हो सकी है।

'शिमलई'—शिमला की बोली है जिसमें पहाड़ी पञ्जाबी तथा हिन्दी घुल-मिल गई है। पञ्जाब की ग्रीष्मकालीन राजधानी होने के कारण इसकी पुरातन संस्कृति, भाषा एवम् सभ्यता में पर्याप्त अंतर आ गया है।

सरहदी बोलियों में हम केवल उत्तर-पश्चिमी सीमावर्ती क्षेत्र को ही सम्मिलित नहीं करेंगे वरन् पञ्जाब के सीमावर्ती प्रदेशों में बोली जाने वाली उन उन बोलियों का उल्लेख करेंगे जिन पर पञ्जाबी का पूरा-पूरा प्रभाव विद्यमान है। सर्व-प्रथम हम इन सीमावर्ती बोलियों को चार विभागों में बांटते

हैं—पूर्वीय, उत्तरीय, पश्चिमी तथा दक्षिणीय ।

पूर्वीय सीमावर्ती बोलियों को चार उपभेदों में बाँटा जा सकता है—पश्चिमी पहाड़ी, पुआधी, अम्बालवी तथा पश्चिमी हिन्दी । पश्चिमी-पहाड़ी का उल्लेख हम ऊपर कर ही चुके हैं अतएव पुनरावृत्ति करना असंगत होगा ।

'पुआधी' बोली का अर्थ कुछ विद्वान पूर्व की ओर की बोली बताते हैं; किन्तु मेरा अनुमान है कि 'पुआधी' 'पूर्वार्ध' का संक्षिप्त रूप है । यह बोली 'पुआध' प्रदेश में बोली जाती है जो सरायबंजारा से प्रारम्भ होता है तथा सरहिन्द एवम् राजपुरा, खरड़, रोपड़, कुराली इत्यादि तक अम्बाला के क्षेत्र में जा मिलता है । यहाँ की बोली पर पञ्जाबी, बाँगरी तथा हिन्दी का समान प्रभाव है । 'साथ' को 'गोयरे', 'तुझे' को 'तन्नें' 'मुझे' को 'मन्नें' यहाँ बोला जाता है । पञ्जाबी के 'अग्गे' या 'अगाँह' को यहाँ 'आगे' कहा जाता है । इसी प्रकार पञ्जाबी के 'आखणा' (कहना) को यहाँ 'कहना' ही कहा जाता है ।

'अम्बालवी' बोली पर 'पुआधी' तथा खड़ी बोली का अधिक प्रभाव है । कहीं-कहीं बाँगरू बोली का प्रभाव भी दृष्टिगोचर हो जाता है ।

'पश्चिमी हिन्दी' का प्रयोग जगाधरी के आस-पास मिलने लगता है जहाँ अधिकतर हिन्दी खड़ी-बोली कुछ 'पञ्जाबी' तथा कुछ 'पुआधी' का प्रभाव है । मिल-जुल कर यह बोली शुद्ध हिन्दी नहीं कही जा सकती ।

उत्तरीय सीमान्त प्रदेश पर 'कोहिस्ता', पेशावरी' तथा 'ओरमुड़ी' का प्रचलन है । प्रायः हिन्दू लोग ही उक्त बोलियों के सम्मिश्रण से बनी हुई पञ्जाबी में बात किया करते थे । अब तो (पाकिस्तान बन जाने के पश्चात्) इस प्रदेश में पञ्जाबी नहीं के समान ही है ।

पश्चिमी सीमान्त पर 'बहावलपुरी', 'बिलूची' बोली का प्रयोग होता है । 'बहावल पुरी' पर लहिन्दी का प्रभाव है; सिन्धी का भी प्रभाव इस बोली पर है । 'क्वेटा' तथा बिलोचिस्तान में रहने वाले पञ्जाबी मिली-जुली पञ्जाबी बोलते थे किन्तु पाकिस्तान के निर्माण के पश्चात् यहाँ भी पञ्जाबी का प्रयोग समाप्त सा हो चुका है । केवल बहावलपुर में थोड़ी--बहुत पंजाबी से

मिलती-जुलती भाषा अब भी प्रचलित है जिसमें 'मित्र' के लिये 'साईं', 'मेरा-तेरा' के लिये 'मैंडा-तैंडा', 'दही' के लिये 'दही' तथा 'दूध' के लिये 'खीर' आदि शब्दों का प्रयोग होता है।

दक्षिणीय सीमावर्ती क्षेत्र में कई बोलियों का प्रचलन है—गुड़गाँवी, बीकानेरी, मेवाती, हिसारी, करनालवी, राठी, भटियानी, तथा बाँगरी उनके उपभेद हैं :

'गुड़गाँवी', बोली पर राजस्थानी, हिन्दी तथा पंजाबी का प्रभाव है।

'बीकानेरी' पर राजस्थानी तथा पंजाबी बोली का प्रभाव माना जाता है।

'मेवाती' दिल्ली के समीप की बोली है, जिस पर पंजाबी 'हरियानी' राजस्थानी तथा हिन्दी का समान प्रभाव है।

'हिसारी' बोली हिसार प्रांत में प्रयुक्त होती है इस बोली को 'पचाधी' भी कहते हैं। यह 'पुआधी' तथा हिन्दी बोली से मिलती जुलती है। यहां हिन्दी का रूप प्रारम्भ हो जाता है जैसे पंजाबी में 'चाहुणा' (चाहना) को 'चांहदा' 'चलिया' (चला) को 'चला' का प्रयोग है। हिसारी को हरियानी भी कहा जाता है।

'करनालवी' करनाल की बोली है जिस पर बाँगरी, राठी, भटियानी तथा पंजाबी का प्रभाव है। करनाल के अलावा कुरुक्षेत्र, पानीपत आदि पर भी इसी बोली का प्रभाव मिलता है।

'राठी' भी इसी प्रांत की उप-बोली है जिसे 'राठ' जाति के लोगों द्वारा बोला जाता है, इसी कारण इसका नाम 'राठी' प्रसिद्ध हो गया। 'राठी' पर भी पंजाबी, हिन्दी, पुआधी तथा राजस्थानी का समुचित प्रभाव है।

'भटियानी' बोली उन 'भट्टी' राजपूतों की है जो इस प्रदेश में रहते हैं। डॉ० ग्रियर्सन भी इसी मत के अनुयायी हैं। इस बोली पर भी 'राठी' के समान विभिन्न बोलियों का भाव है।

'बाँगरी' बोली बाँगर प्रांत की है। विद्वानों का कथन है कि 'राठी' और 'भटियानी' की संयुक्त बोली 'बाँगरी' है। इस बोली में भी मुझे, तुझे

के लिये मनें–तनें तथा कहीं--कहीं 'म्हारे', 'थारे' इत्यादि का प्रयोग होता है ।

पंजाब की उप भाषायें, उनके विभिन्न रूपों एवम् उनके उपभेदों की व्याख्या ऊपर संक्षिप्त में की गई है। आवश्यकतानुसार पंजाबी के प्रभाव से प्रभावित बोलियों का भी उल्लेख करना असंगत नहीं समझा गया ।

प्रश्न उठता है कि किस उप-भाषा का क्षेत्र कौन सा है एवम् किस उप भेद को किस नगर, या गाँव में बोला जाता है ? इसके लिये सूक्ष्म पर्यवेक्षण की आवश्यकता है । यह कार्य बिना सरकार की सहायता, अनथक परिश्रम, विद्वान पर्यवेक्षकों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मक पर्यवेक्षण के सम्पन्न होना दुर्लभ होना प्रतीत होता है ।

सरकार को, विद्वानों को, भाषा-शास्त्रीयों को एकरस होकर पर्यवेक्षण करना चाहिए जिससे देश के भाषा–पर्यवेक्षण में एक समुन्नत अध्याय और जोड़ा जा सके ।

——:o:——

पंजाबी-साहित्य के इतिहास में लोक-साहित्य की परम्परा

प्रत्येक बोली का प्रायः दो प्रकार का साहित्य होता है—लौकिक तथा साहित्यिक। साहित्यिक भाषा का उपयोग शिक्षित जनता द्वारा होता है और वह शिक्षित लोगों के ही लिखने, पढ़ने या बोलने में प्रयुक्त होती है। लौकिक भाषा दोनों वर्गों द्वारा प्रयोग में लाई जाती है। लौकिक भाषा अधिक प्रभावशाली, स्पष्ट, सरस, अभिव्यंजनात्मक एवं चलती हुई चटपटी होती है; क्योंकि उसकी जब साहित्य में अभिव्यक्ति की जाती है तो वह लोक-जीवन के अधिक समीप की वस्तु होने के कारण अपनी ही घरेलू वस्तु प्रतीत होती है। उसमें अपनापन होता है। साहित्यिक भाषा प्रौढ़ता, गांभीर्य, क्लिष्टता एवं एक विशेष वज़न लिए हुए चलती है, इस कारण वह लोक जीवन से परे ही रहती है। समाज का एक संकुचित अंग ही इस भाषा का प्रयोग करता है। यद्यपि दोनों में पर्याप्त भेद हैं, तथापि साहित्यिक भाषा पर लौकिक भाषा का गहरा प्रभाव होता है। क्योंकि साहित्य का लेखक अपने जन्म से ही लोक-संसर्ग में आता रहता है, इस कारण उसकी कृति पर लोक का प्रभाव होना स्वाभाविक ही है, किन्तु लौकिक-भाषा पर साहित्यिक भाषा का अधिक प्रभाव होना आवश्यक नहीं है।

पंजाबी भी अन्य बोलियों के समान ही एक बोली है, जिसका विकास संस्कृत से हुआ है। इस पर कुछ विद्वानों के मतानुसार शौरसेनी का प्रभाव है*।

*'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' भाग ९—ग्रियर्सन।

कुछ विद्वान इस पर पैशाची का प्रभाव बताते हैं।† आर० जी० भंडारकर का भी मत है कि पैशाची का पंजाबी पर पर्याप्त प्रभाव है। यह प्रश्न अभी विवादास्पद ही है, इसका निर्णय नहीं हो पाया है। डॉ० मोहन सिंह के मतानुसार महाराष्ट्रीय प्राकृत का प्रभाव पंजाबी पर भी रहा बताया जाता है‡। पंजाब के आसपास बोली जाने वाली बोलियों पर विद्वानों द्वारा पैशाची, शौरसेनी तथा महाराष्ट्रीय प्राकृत का प्रभाव बताया गया है। अतएव यह तो निश्चय ही है कि आसपास के वातावरण का प्रभाव पंजाबी पर भी पड़ा होगा; किन्तु महाराष्ट्रीय प्राकृत का विशेष प्रभाव पंजाबी पर प्रतीत नहीं होता। शौरसेनी तथा पैशाची का समान प्रभाव पंजाबी पर रहा यह तो निश्चय ही है§।

पंजाबी की उत्पत्ति कुछ भी रही हो किन्तु प्राप्त खोजों के अनुसार हम यह निश्चय रूप से कह सकते हैं कि पंजाब की लोक-भाषा किसी समय संस्कृत अवश्य रही, चाहे उस समय पंजाब को 'पंजाब' नाम से न भी पुकारा गया हो$। वेदों का भी बहुत-सा साहित्य लोक-साहित्य माना गया है। अथर्ववेद के कुंताप सूक्त (२०-१२७-१३६) खिल या परिशिष्ट कहे गये हैं। निश्चय ही इन में संहिताकार ने लोक-साहित्य का संकलन किया है। संग्रह करने वाले वेदव्यास स्वयं कुरु-जनपद के थे, और वहाँ के लोक-साहित्य से भलीभाँति परिचित थे। जब वे ऋषि-परिवारों में प्रणीत साहित्य का संग्रह कर चुके तो उनका ध्यान लोक में फैले हुए गानों पर भी गया जान पड़ता है। वे ही 'कुंताप-सूक्त हैं¶। श्रुति वेदों का ही एक नाम है। यह

---

† 'हिन्दी भाषा तथा साहित्य का इतिहास'—श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय।

‡ 'पंजाबी-साहित्य दी उत्पत्ति ते विकास' (पंजाबी)—परमिंदर सिंह तथा कृपाल सिंह; पृष्ठ ३५।

§ यह एक स्वतंत्र विषय है। अतः यहाँ उसका निर्देश मात्र करते हुए, हम पंजाबी का विकास उक्त ही मान कर आगे बढ़ते हैं।

$ ऋग्वेद की रचना पंजाब में ही हुई थी।

¶ 'जनपद' अङ्क २, 'गाहा और पल्हाया'—डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल पृष्ठ ७०।

एक निश्चित संकेत है कि यह वेदों की मौलिक वस्तु नहीं है; वरन् तत्कालीन लोक-साहित्य है जिसे बाद में जोड़ दिया गया है।

लौकिक संस्कृत के पश्चात् उत्तर भारत में या पंजाब में पाली का विशेष प्रभाव रहा, जो कि तत्कालीन लौकिक भाषा ही मानी जाती है। पाली के पश्चात् प्राकृतों के विभिन्न रूप मिलते हैं, जिन में पंजाब का प्रथम कवि गोरख मिलता है। नागार्जुन (७०२ ई०), जिसने नाथ-संप्रदाय का बीजारोपण किया, का प्रर्याप्त साहित्य अभी संभवतः उपलब्ध नहीं हो पाया है। यही बात जलंधरनाथ के लिये भी कही जा सकती है, जिसका मुख्य प्रदेश पंजाब का माझा तथा दो-आब रहा है; तथा जिसके नाम पर पंजाब का केन्द्र-बिन्दु 'जलंधर' नामक नगर आज भी प्रसिद्ध है। गोरख जो कि अपने नाम के पीछे एक बड़ा रहस्य छिपाये हुए है, पंजाब के गोरखपुर, (इस नगर का नाम करण उनके ही नाम पर किया गया प्रतीत होता है) तहसील गुज्जरख़ान, ज़िला रावलपिंडी में पैदा हुए थे। यद्यपि वे एक विशेष मत के अनुयायी थे, तथापि वे तत्कालीन लोक, समाज एवं उसके अंग-अंग पर पूर्णतः छा गए थे। गोरख ने अपने जीवन में जिस साहित्य की रचना की वह बताया जाता है कि घूमते-फिरते की गई है, इसी कारण उनकी बोली पंजाबी नहीं हो पाई। किंतु हम यह मानने के लिए कतई तैयार नहीं। यदि कोई पंजाब-निवासी महाराष्ट्र में चला जाय तो वह भले ही वहाँ जाकर २-४ वर्षों के पश्चात् ऐसी हिन्दुस्तानी बोलने लग जाए जिसमें कुछ मराठी के शब्द भी हों, किन्तु यह तो नितांत असंभव प्रतीत होता है कि वह व्यक्ति मराठी भाषा में साहित्य--रचना ही प्रारम्भ कर दे। उक्त उदाहरण देकर हम यह निश्चय रूप से कह सकते हैं कि गोरख के समय में ही नहीं वरन् उससे कई सौ वर्ष बाद तक भी पंजाब की भाषा वह पंजाबी नहीं बन पाई थी जिसे आज--कल लोग 'पंजाबी' कह सकें। कई विद्वानों ने उस काल की भाषा को 'हिंदवी' कहा है। कुछ लोग इसे 'सधुक्कड़ी' भाषा भी कहते हैं। अब्दुल रहीम ने ई० सन् १७०८ में 'निजातुल मोमनीन' में अंकित किया है—

> फर्ज मसाइल फिक्का दे हिंदी कर तालीम
> कारन मरदा औ मियाँ जोड़े अब्दुलकरीम

हाफ़िज़ मोइयुद्दीन 'नबीना' १७११ ई० में एक फ़ारसी--क़सीदे की व्याख्या करते हुए लिखते हैं—

इस अरबी थीं हिंदी कीजे,
सब्भे ख़लक़ सुखल्ले लीजे
ख़ान सादला ने फ़रमाया,
क़सीदा शेर अमाली है ।

कहा जाता है कि सोलहवीं शताब्दी में सर्व-प्रथम किसी राजस्थानी कवि सुन्दरदास ने 'पंजाब' शब्द का उपयोग किया था। एक अन्य उल्लेख भी मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि 'पंजाबी' शब्द सबसे पहले किसने उपयोग किया; इसे हम कहीं नहीं देख पाए हैं किन्तु इसका एक संकेत अवश्य है— एडीलिंग की 'मिथरीडेट्स' बर्लिन १८०६–१८१७ भाग १, पृष्ठ १७५ तथा भाग ४, पृष्ठ ४८७।

कुछ भी सत्य हो, किन्तु यह सत्य है एवं निश्चित है कि गोरख से लेकर गुरु नानक तक पंजाब की लोक--भाषा हिंदवी थी या 'लहिंदी' का प्रभाव था*। इस प्रांत के साहित्यकारों ने अपनी रचनाएं इन्हीं लोक-भाषाओं में लिखीं। गोरख अशिक्षित थे । वे ठेठ लोक–भाषा में अपनी रचना करते थे, तथा घूमते-फिरते हुए अपने साहित्य को प्रचारित करते थे । इसी कारण उनकी 'बानी' जन-जन के मुँह पर अठखेलियाँ करती रही जो कि आज तक भी भारत के विभिन्न ग्रामों में नाथ–जोगियों के मुँह से रात्रि के ठंडे प्रहर में—सुलफे तथा चरस के उन्माद में फूट पड़ती है। आज गोरख का नाम शताब्दियों के धूमिल-पट के पीछे छिपा पड़ा है, किन्तु उनके गीत जन-जन की जिह्वा पर आज भी खेलते है, जैसे वे उन्हीं की बपौती हों।

कुछ लोग प्रकाशित साहित्य को लोक-साहित्य नहीं मानते, वरन् उनका यह मत है कि जो साहित्य कहीं प्रकाशित हो गया, या जिसके रचनाकार

* "From the 11th to 15th Centuary we have old Punjabi in which Lanhindi predominates"— "History of Punjabi Literature" by Dr. Mohan Singh.

का ज्ञान जनता को है वह लोक-साहित्य नहीं है। किन्तु, वास्तव में लोक-साहित्य वही है जो कि लोक की जिह्वा पर सदैव अठखेलियाँ करता रहे तथा जिसमें लोक का सही नेतृत्व हो। उस साहित्य में लोक का अध्ययन हो और लोक की ही अभिव्यक्ति हो; फिर चाहे वह प्रकाशित हो या अप्रकाशित—यह आवश्यक नहीं। "शताब्दियाँ बीतती चली जाती हैं किन्तु 'रामायण' और 'महाभारत' का स्रोत भारत में नाम-मात्र को भी शुष्क नहीं होता। प्रतिदिन गांव-गांव, घर-घर उनका पाठ होता रहता है। क्या व्यापार की दूकानों पर और क्या राजद्वारों पर, सर्वत्र उनका समान-भाव से आदर होता है। ये दोनों महाकवि धन्य है जिनके शरीर तो काल के महाप्रांतर में लुप्त हो गए हैं, पर जिनकी वाणी आज भी करोड़ों नर-नारियों के द्वार-द्वार पर अपनी निरंतर प्रवाहमान धाराओं से शक्ति और शांति पहुँचाती फिरती है और सैकड़ों प्राचीन शताब्दियों की उपजाऊ मिट्टी को प्रति दिन बहाकर भारत की चित्त-भूमि को उर्वरा बनाए हुए है।"*

नाथ-जोगियों के साहित्य के पश्चात् हमारे समस्त पंजाबी-साहित्य के प्रथम कवि फ़रीद-शकरगंज आते हैं जिनका साहित्य इतना लोकप्रिय माना गया कि सिखों के पंचम-गुरु श्री अर्जुनदेव जी भी धार्मिक पुस्तक 'ग्रन्थ साहब' को संकलित करते समय बाबा फरीद के साहित्य को ग्रहण करने का लोभ संवरण न कर सके। सिक्खों का तथा मुसलमानों का सदैव ही कड़ा विरोध रहा है इस मतभेद के उपरांत भी सम्भवतः ऐसा कोई भी धर्मावलम्बी न होगा जो फरीद साहब की वाणी को आदर की दृष्टि से न देखता हो, और उनका प्रातःकाल उठकर पाठ न करता हो, तथा अपनी श्रद्धा के दो पुष्प उन्हें समर्पित न करता हो।

पंजाब में न केवल सिख, वरन् लगभग प्रत्येक धर्म का अनुयायी ग्रन्थ-साहब को आदर की दृष्टि से देखता है और वही सम्मान उसे देता है जो आर्य-समाजी वेद को, सनातनधर्मावलंबी रामायण, महाभारत या गीता को तथा मुसलमान 'कुरान' को देते हैं। 'गुरु ग्रन्थ साहब' वह पहिला पंजाबी ग्रन्थ है जिसमें तत्कालीन लोक-साहित्य संग्रहित है। यद्यपि गुरु अर्जुन-

* 'प्राचीन साहित्य'—रवींद्रनाथ ठाकुर, पृष्ठ ३।

देव जी ने इस ग्रन्थ का संकलन धार्मिक दृष्टि से ही किया था, किन्तु यह ग्रंथ आद्योपांत तत्कालीन धार्मिक लोक–साहित्य से पूर्ण है। यदि हम यह भी कह दें कि लोक--साहित्य--संकलन की परिपाटी के आदि पुरुष गुरु अर्जुन देव जी ही थे तो अतिशयोक्ति न होगी।

ग्रंथ साहब में लोक--साहित्य के वे सभी गुण विद्यमान हैं जिन्हें वर्तमान-कालीन विवेचक लोक--साहित्य कहते हैं; जैसे—घोड़ी, सोहले, लावाँ, बारहमाहाँ; काफियाँ, दोहड़े तथा अलाहुणियाँ इत्यादि। न केवल यही वरन् ग्रंथ साहब में प्रत्येक वाणी को गेय बनाने के लिए उन्हें राग--बद्ध कर दिया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि वे गीतों के ढंग पर गाए गए हैं। ग्रंथ साहब में तत्कालीन कई प्रसिद्ध लोक--कवियों की रचनाएं संकलित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन कवियों की रचनाएं संकलन-काल में अत्यधिक प्रचलित होंगी। फरीद, कबीर, नामदेव, पीपा, रामानंद, रविदास, धन्ना, जय-देव, तथा सूरदास जैसे प्रसिद्ध लोक--कवियों की रचनाओं को बिना भेद-भाव के सकलित कर लेना गुरु अर्जुन देव जैसे सत्साहित्यिक का ही प्रयास था। ऐसे कवियों की रचनाओं के संकलन के लिए गुरु अर्जुनदेव को न मालूम कहाँ-कहाँ जाना पड़ा होगा और न जाने कितना प्रयत्न करना पड़ा होगा। वे लोक-साहित्य से कितने प्रभावित थे यह उनके इस कार्य से सिद्ध हो जाता है।

नाथों के साहित्य के पश्चात् हम हिंदी--पंजाबी के कवि चंदबरदाई को भी विस्मृत नहीं कर सकते जिन्होंने 'पृथ्वीराज--रासो' जैसे विस्तृत ढाई हजार पृष्ठ के ग्रंथ की रचना की।* 'चंदबरदाई' (सवत् १२२५–१२४९) के 'पृथ्वीराज--रासो' के आरम्भ में अग्निकुण्ड से चार क्षत्रिय कुलों की उत्पत्ति

---

* जैसे 'कादम्बरी' के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि उसका पिछला भाग 'बाण' के पुत्र ने पूरा किया है, वैसे ही 'रासो' के पिछले भाग का भी चंद के पुत्र जल्हण द्वारा पूरा किया जाना कहा जाता है। —आचार्य राम चन्द्र शुक्ल, 'हिंदी सा० का इतिहास' पृष्ठ ४८

की गाथा पर लोकवार्ता की छाप दृष्टिगोचर होती हैं।‡ डॉ० मोहन सिंह के मतानुसार उनकी रचना पंजाबी छंदों में आबद्ध है, जो उस काल के लोक में प्रचलित थे।

पंजाबी के कवि फरीद शकरगंज जिन पर लोक-साहित्य का पर्याप्त प्रभाव था, वे यद्यपि अफ़गान थे और खोतवाल नामक स्थान पर पैदा हुए थे, तथापि उन्होंने अरबी या फ़ारसी की काव्य-शैली पर रचना नहीं की, वरन् तत्कालीन प्रचलित शैली 'शब्द' तथा श्लोकों में ही काव्य-धारा को प्रवाहित किया। फ़रीद लोक में इतने पैठ गये थे कि उनकी रचनाओं को तत्कालीन समाज ने हिंदी हस्तलिपि में भी लिखा, जो कि जयपुर-जोधपुर के समीपवर्ती भागों में आज भी यत्र-तत्र प्राप्त हो जाती हैं।

हिंदी-पंजाबी के प्रसिद्ध लोक-कवि खुसरो भी आप ही के शिष्य थे। सन् १२५३ ई० में पटियाली नामक नगर, जिसे वर्तमानकाल में पटियाला कहा जाता है,* में अमीर खुसरो ने जन्म ग्रहण किया। किंतु पटियाला नाम तो 'पट्टी'-वाला से पड़ा माना जाता है। उनका जन्मस्थान ग्राम 'पटियारी' ज़िला एटा था। किंतु यह निश्चित् ही है कि वे पंजाब में पर्याप्त काल तक रहे उन्होंने १२८३ से साहित्य रचना प्रारम्भ की। वे शत-प्रति-शत लोक-कवि थे। उन्होंने कई लाख 'शेर' कहे बताये जाते हैं। खुसरो द्वारा लिखित 'बुझारतें' (पहेलियाँ) आज भी पंजाब के बच्चे-बच्चे की जिह्वा पर अठखेलियाँ करती हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि खुसरो ने तत्कालीन पहेलियों को परिष्कृत कर लिखा है, किंतु इस मत में कितनी सत्यता है कहना कठिन है। उनके गीत आज भी पंजाबी स्त्रियाँ

---

‡ देखिये, आलोचना ६, 'हिंदी साहित्य पर लोक-साहित्य का प्रभाव'—देवेन्द्र सत्यार्थी, पृष्ठ ५२।

* Khusro was born at Patiali, modern Patiala, in 1252 A. D. He travelled to a number of places in the provinces of Lahore, Multan & Delhi in the company of Khilji kings"—"History of Punjabi Literature" by Dr. Mohan Singh. page 19.

बड़े चाव से गाती हैं। बच्चे प्रतिदिन ही रात्रि में सोने से पूर्व उनकी 'बुझारतें' सुनाकर एक-दूसरे की बुद्धि की परीक्षा लेते हैं तथा प्रसन्न होते हैं।

१४६६ से १७०८ ई० के मध्य में गुरु ग्रन्थ साहब की रचना हुई है यह धार्मिक पुस्तक तो लोक-साहित्य से ओत-प्रोत है। प्रायः ऐसा कोई भी भक्त गुरु न था जो लोक-साहित्य से अछूता रह पाया हो। यही कारण है कि ग्रन्थ साहब में सोहले, घोड़ियाँ, लावाँ, अलाहुणियाँ, काफियाँ, बारहमाहाँ, दोहरे, गीत, सद्द तथा आरती इत्यादि अधिकता से प्राप्त होते हैं।

कबीर, कमाल, शाह हुसैन, शाहशरफ, सुलतानबाहु, छज्जूभगत, दयालदास, कान्हा, बिहारी तथा नंदलाल आदि पंजाबी के वे कवि हैं जिनकी रचनाओं में भी लोक-साहित्य का उचित समावेश मिलता है।

रोमांटिक कवियों में सर्व-प्रथम दामोदर है, जिसने 'हीर' की रचना की। 'हीर' शत-प्रति-शत एक लोक-काव्य है, जिसकी रचना दवैया छंद में हुई है। 'हीर' के अन्य भी कई लेखक हैं जिन में प्रमुख कवि वारस शाह है। वारस की ही 'हीर' सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। 'हीर' में स्थान-स्थान पर पंजाब का लोक उभर आता है। अखाण, कहावतें, वातावरण ही नहीं, वरन् पंजाब की भैंसे, घास, गाँव तथा यहाँ के प्रचलित रीति-रिवाजों का चित्रण 'हीर' को लोक-साहित्य के अधिक समीप ला खड़ा करता है।

आधुनिक काल के रचनाकारों में प्रोफेसर मोहन सिंह की पुस्तकें 'सावे पत्तर' तथा 'कोसुम्बड़ा' जिन्होंने पढ़ी होंगी वे भली प्रकार कह सकते हैं कि उनकी रचनाएँ लोक-साहित्य से कितनी समीप हैं—उनकी प्रसिद्ध रचना 'अम्बी दे बूट्टे थल्ले' तथा 'कुड़ी पोठों हार दी' इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं। अन्य भी ऐसे कई साहित्यकार हैं जिन पर लोक-साहित्य ने अपनी छाप डाली है। 'फिरोजपुर' के कवि 'तुलसी' की रचना 'मुटियारे जाणा दूर पिया' तथा 'मक्की दी रोटी ते सरोंह दा साग' जिन्होंने सुनी होगी वे भली प्रकार कह सकते हैं कि उन रचनाओं को सुनते समय वे अपने अंतर-चक्षुओं द्वारा कहाँ विचरण कर रहे थे।

पंजाब के लोक-साहित्य से हिन्दी-साहित्य भी अछूता न रह सका। पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने अपनी प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' का

वातावरण बनाने के लिये पंजाबी लोक-साहित्य की ही सहायता ली। सरदार गंगा सिंह 'भ्रमर' की कहानी 'तूम्बा बजदा ना तार बिना' तथा कुछ अन्य कहानियों में भी उन्होंने पंजाबी लोक-साहित्य का ही आँचल पकड़ा है।

आधुनिक युग में लोक-साहित्य-संग्रह की अभिरुचि तथा उसका मनोवैज्ञानिक अध्ययन साहित्य का एक विशेष एवं प्रिय अंग बन गया है। १८२७ ई० के लगभग बताया जाता है कि डॉ० टी० एच० थॉरण्टन ने 'ए हैंडबुक ऑफ लाहौर'; १८८४ ई० में आर० सी० टेम्पल ने 'लीजेंड्स ऑफ दी पञ्जाब,' लाहौर के एडवोकेट पं० रामशरण दास ने 'पञ्जाब दे गीत,' श्री० संतराम बी० ए० ने १९२५ ई० में (संवर्द्धित संस्करण) 'पञ्जाबी लोकगीत,' १९३६ ई० में देवेन्द्र सत्यार्थी ने 'गिद्धा', १९५२ ई० में अमृता प्रीतम ने 'पञ्जाब दे गीत' इत्यादि पुस्तकें साहित्य को दीं। संभव है और भी कुछ पुस्तकें लिखी गई हों, जिनकी जानकारी प्राप्त न हो। १९५२ के मध्य में इन पंक्तियों के लेखक द्वारा 'पञ्जाब लोक-साहित्य-परिषद्' की भी स्थापना की गई, जिसके सदस्यों ने यत्र--तत्र घूमकर लोक--साहित्य का संग्रह एवं उसका मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया—जिनमें विशेष प्रयत्नशील हैं—ज्ञानी ज्ञान सिंह जी 'रतन', जीतेंद्रीय लिखी, श्रीमती कमलेश साही आदि!



मालवी एवम् पंजाबी में साम्य

अभी उस दिन मालव-लोक-साहित्य परिषद् के संयोजक श्री श्याम
परमार की पुस्तक मालवी लोकगीत पढ़ रहा था कि मेरी दृष्टि कुछ ऐसी पंक्ति
पर जाकर अटक गई जिन्हें मैं ज्यों का त्यों पञ्जाबी में सुन चुका था। मैं
तुरन्त ही अपना पञ्जाबी लोक-गीतों का संग्रह निकाला, और मैं देख
आश्चर्य-चकित रह गया कि न केवल मालव और पञ्जाब में भाव-साम्य
मिलता है वरन् शब्द और पंक्तियाँ तो अलग रहीं—सम्पूर्ण गीत ही लगभ
अक्षरशः समान ही है।

पञ्जाब और मालवे के सम-भावी साहित्य पर कुछ लिखने के पूर्व
उन कारणों पर विवेचना करना आवश्यक समझता हूँ जिनसे कि इन गीत
में साम्य है। मैं यह सिद्ध करने का प्रयत्न करूँगा कि इस साम्य का कार
स्वाभाविक न होते हुए एक ऐतिहासिक सत्य है।

हम लोग भली-भांति जानते हैं कि भारतवर्ष की प्राचीनतम भाष
वैदिक संस्कृत है, उसी काल में भारत निवासियों द्वारा जो भाषा बोली जा
थी वह लौकिक--संस्कृत कही गई। इस लौकिक संस्कृत को विद्वानों ने पाँ
विभिन्न प्राकृतों में विभाजित किया है इन प्राकृतों से अपभ्रंश और अपभ्रं
से विभिन्न प्रांतीय बोलियां बनी हैं।

आज से दो-तीन हज़ार वर्ष पूर्व जब वेदों की रचना हुई समस्त दे

की भाषा ¶ संस्कृत ही थी। बोल-चाल में संस्कृत का ही उपयोग होता था किन्तु उसे लौकिक-संस्कृत कहा जाता है। सिकन्दर का आक्रमण ईसा से ३२७ वर्ष पूर्व हुआ उस समय भी देश की भाषा संस्कृत ही मानी गई है।

सिकंदर के आक्रमण के समय पञ्जाब में एक जाति मल्ल, मालव, मल्लोई रहती थी। इस जाति का युद्ध सिकंदर से हुआ था। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध इतिहास-कार डॉ० राय चौधरी ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ ६५ पर लिखा है—

"Southern part of the Jhung Distt. with the contiguous portion of the lower valley of the Ravi was occupied by the Sibis and the Malvas with whom were associated Kshudrakas while lower down the Chenab lived Ambasthos."

इसी पुस्तक में पृष्ठ ६७ पर डॉ० साहब लिखते हैं कि :—

"The conquerer (Sikandar) himself received a dangerous wound while storming one of the citadels of powerful tribe of 'Malvas'."

अतएव यह निश्चित है कि ईसा से ३२७ वर्ष पूर्व कोई 'मालव' जाति पञ्जाब में निवास करती थी। सिकन्दर के समय में जो यूनानी लोग पञ्जाब में रह गए उनकी बोली का प्रभाव संस्कृत या प्राकृत पर अवश्य पड़ा होगा †

¶ Though we have some 220 dialects or more spoken in India, there is only one sacred language and literature namely Sanskrit. In spite of the great varieties of people and different divergent sects and dialects, India from the valley of the Bramhaputra in the east to the Ravi in west and from the Himalayas to the Indian Ocean is one socially and culturally—'History of Bharat'—p p 19 by Dr. R. R. Sethi.

† स्मिथ ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री पृष्ठ ६२

सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् जब अशोक का शासन था। तक्षशिला तथा उज्जैन में जिसे उस काल में अवंती कहा जाता था, दो विशाल विश्व-विद्यालय थे, जहाँ सहस्रों विद्यार्थी विद्याध्ययन करते थे, दोनों विश्व-विद्यालयों का परस्पर सम्बन्ध भी था।

संस्कृत या प्राकृत के अपभ्रंश होने के या बिगड़ जाने के कारणों में विशेष है भारत पर परदेशियों के विभिन्न आक्रमण। सिकन्दर के पश्चात् दूसरा आक्रमण यूनानी राजा डिमिट्रिअस ने, तदुपरान्त उसकी सन्तान मेनेण्डर ने ईसा से १७५ वर्ष पूर्व किया। तथा पुष्यमित्र शुङ्ग से युद्ध किया, मेनेण्डर भारत में ही बस गया और उसने उत्तरी भारत पर अधिकार कर उस पर राज्य किया। उसकी राजधानी वर्तमान स्यालकोट है जिसे उस समय सकला या सङ्गलदीप भी कहा जाता था। उन्हीं दिनों में पर्थिया के राजा मेथ्रेडटीज़ प्रथम ने पञ्जाब के पश्चिमीय भाग को जीत कर अपने राज्य में मिला लिया, इस प्रकार पञ्जाब में निवास करने वाले पञ्जाबियों पर तथा 'मालव' जाति की बोली पर एक साथ यूनानी तथा पर्थिया के निवासियों की बोली का प्रभाव पड़ा।

कुछ समय पश्चात् यूनानियों को सीथियन जाति के लोगों ने, जिन्हें भारतवर्ष के निवासी शक कहते थे बेक्ट्रिया से निकाल दिया, उन्होंने पञ्जाब पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। सीथियन सम्राट मोआ के राज्य में पञ्जाब भी सम्मिलित था। धीरे-धीरे सीथियनों की एक टुकड़ी नें, जिसे यूची कहते थे, लगभग १५० वर्ष ईसा के पूर्व बेक्ट्रिया को जीत लिया, और वहाँ यह जाति पाँच विभागों में बँट गई। इनमें से एक उपभाग ने जिन्हें कुशान कहा जाता था सारी जाति का संगठन कर उसे एक कर दिया और पञ्जाब तक अपना राज्य स्थापित कर लिया। जब पञ्जाब पर कुशानों का अधिकार हो गया तो शक लोगों ने अवन्ती प्रदेश एवम् मथुरा की ओर प्रस्थान कर वहाँ अपना राज्य स्थापित कर लिया।

अब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यूनानियों के पश्चात् पञ्जाब में बसने वाली जातियों–जिनमें मालव जाति भी सम्मिलित थी—पर शक और कुशान जाति के लोगों का प्रभाव पड़ा। उधर जो लोग अवन्ती के मूल

निवासी थे, उनकी बोली में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक ही था क्योंकि पञ्जाब के भूतपूर्व शासक अब उन पर शासन कर रहे थे, परिवर्तन में पञ्जाब और अवन्ती प्रदेश की बोली में निश्चित रूप से गहरा साम्य था।

कनिष्क कुशान वंश का प्रतापी राजा था। उसके समय में नागार्जुन, अश्वघोष, वसुमित्र तथा आयुर्वेद शास्त्र के पंडित चरक भी हुए। उसके शासन-काल में प्रायः विद्वानों की विभिन्न गोष्टियाँ हुआ करती थीं, जिसमें समस्त भारत के विद्वान एकत्रित होते थे। इससे भी भाषा का आदान-प्रदान होता रहा। कुशान साम्राज्य के पतन के पश्चात् लगभग दो सौ वर्ष का इतिहास अभी तक ज्ञात नहीं हो पाया है।

प्रसिद्ध इतिहास-कार श्री आर० डी० बनर्जी ने अपनी पुस्तक (Pre-historic Ancient & Hindu India') में पृष्ठ १३६ पर, ई० सन् २०० के लगभग का वर्णन § करते हुए लिखा है कि प्रान्तीय बोलियों को त्याग कर लोगों ने एक बार पुनः संस्कृत को स्थान दिया। यह काल चन्द्र-गुप्त प्रथम के पुत्र समुद्रगुप्त का था। उसने सम्पूर्ण भारत पर विजय प्राप्त की और सम्पूर्ण उत्तरी भारत, हुगली से सतलुज और चम्बल तक, तथा हिमालय से नर्मदा तक अपने आधीन किया। हिमालय की असभ्य जातियाँ, राज-पूताना और मालवा के निवासी उसे अपना स्वामी समझते थे। अन्तर-प्रान्तीय आवागमन उसके ही काल में आरम्भ हुआ—अतएव बोलियों में भी साम्य-सा होने लगा।

समुद्रगुप्त के पश्चात् चंद्रगुप्त विक्रमादित्य जो समुद्रगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र न था सिंहासनारूढ़ हुआ समुद्रगुप्त ने उसे अपना युवराज घोषित किया था। कुछ इतिहास-कारों के मतानुसार यह उज्जैन का ही प्रसिद्ध सम्राट विक्रम था। उसने सौराष्ट्र, मालवा और काठियावाड़ को जीत कर अपने राज्य में मिलाया और शक सरदारों को जो क्षत्रप कहलाते थे, लड़ाई में हराया। चन्द्रगुप्त के

§ In place of Magadh and other local dialects, classical Sanskrit gradually came to be recognised as the literary language of Northern & Central India.

शासन के पूर्व ही मालव लोग अवन्ती प्रदेश † में आ बसे थे, तथा ईसा से सत्तावन वर्ष पूर्व एक 'मालव सम्वत्' नामक सन भी उन्होंने प्रारम्भ किया था, जो कुछ दिनों बाद विक्रम सम्वत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ। विद्वानों की राय है कि यह सम्वत् * 'मालव' नाम की जाति का चलाया हुआ है। यही लोग सिकन्दर के आक्रमण के समय पञ्जाब में रहते थे। कुछ समय के बाद ये लोग इधर-उधर फैल गए। जिस देश में ये लोग बसे वह 'मालवा' कहलाने लगा। छठी शताब्दी ईस्वी के पश्चात् यह सम्वत् विक्रमी संवत् के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

५१० ई० के लगभग हूणों का राजा मिहिरकुल जो कि एक कट्टर शैव था तथा अत्याचारी था—का युद्ध मालव नरेश यशोधर्मन से हुआ।

---

† डॉ० ईश्वरी प्रसाद का 'भारतवर्ष का इतिहास' पृष्ठ ९२

* "Chandraverman was defeated by Samudragupta after his campaigns in Bengal, the Punjab and Afghanistan. His brother Naraverman returned to northern Malava and was reigning there in 404 A. D...Samudragupta claims to have also subjugated the Malava. Arjunayana, Yaudheya, Madarka, Abhira, Prarjuna, Sankanik, Kaka and Kharaparika tribes. Among these tribes the Malava are the same as the Malloi of the historians of Alexander the Great and the Malays of the time of Nahapan. These tribes lived in the Punjab and the Rajputana. They issued coins in copper. Later on some of them settled in the fertile plains watered by Narbada & its tributories and that province became known as Malwa from the tribe of Malava."—'Prehistoric Ancient & Hindu India' by—Dr. R. D. Banerjee P. P 164.

ये हूण लोग श्री गौरीशङ्कर ओझा के मतानुसार मालव में बसने वाले कुनबी हैं। पंजाब में पाई जाने वाली जाति 'कमोअ' भी यही प्रतीत होती है।

हमने पाया कि मालव तथा पञ्जाब का घनिष्ट संबंध ही नहीं रहा है, वरन् पञ्जाब के लोग ही मालव में जाकर बस गए हैं, इसी प्रकार अभीर तथा गुर्जर लोग जो पञ्जाब में पाए ज ते थे वे भी बड़ी संख्या में मालव में जा कर बसे।

इसके पश्चात् तथा सम्राट हर्ष के पूर्व मालव नरेश ने हर्ष की बहिन राज्यश्री को पकड़ लिया और उसके पति को मरवा दिया। उस समय हर्ष की राजधानी थानेश्वर पञ्जाब में थी। हर्ष के भाई राज्यवर्धन ने युद्ध में मालव-नरेश को परास्त किया। हर्ष के शासन काल में मालव उसके राज्य में रहा तथा मालव कवि बाण ने हर्षचरित की रचना की।

इसके उपरान्त भी सन् १००८ ई० में जब महमूद-ग़ज़नी ने पंजाब पर आक्रमण किया तब पंजाब के राजा आनंदपाल ने मालव नरेश से भी सहयोग मांगा और महमूद से युद्ध किया। यह मालव और पंजाब का अंतिम संबंध था।

उपरोक्त ऐतिहासिक तथ्यों को देख कर हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि पंजाब के लोग ही मालव में जाकर बसे और पंजाब के रीति-रिवाज, बोल-चाल, भाषा तथा यहाँ की संस्कृति मालव से बहुत साम्य रखती है। यही नहीं पंजाब का फ़िरोज़पुर ज़िला अभी भी 'मालवा' कहलाता है वहाँ की बोली को 'मलवई' कहा जाता है।

नवीं शताब्दी में सन् ८५० के आस-पास नागार्जुन, जलन्धर, मछन्दर तथा गोरख जैसे नाथ देश में भ्रमण कर रहे थे। इन नाथों का साहित्य जो प्राप्त है उससे ज्ञात होता है कि उन पर पञ्जाबी, गुजराती, मालवी तथा राजस्थानी बोलियों का समान प्रभाव था। उक्त साहित्य से हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि गोरख के समय विभिन्न प्रान्तीय भाषाएं पूर्णतयः निखर नहीं पाई थीं। तथा भारत के इन प्रान्तों में कुछ २ अन्तर से अपभ्रंश ही बोली जाती थी। चाहे ये बोली उस काल में भी पञ्जाब में पञ्जाबी, गुजरात में गुजराती या मालवा में मालवी कहलाती हो।

मुसलमानों के आक्रमण तथा उनके पञ्जाब में निवास करने के कारण पञ्जाब की बोली पर उनका विशेष प्रभाव पड़ा और आज पंजाबी मालवी से बहुत दूर प्रतीत होने लगी। श्री श्याम परमार ने भी अपनी पुस्तक मालवी लोक-गीत की भूमिका 'हँसता गाता मालवा' के पृष्ठ ६ पर स्वीकार किया है, कि मालव जाति पंजाब की ही निवासी थी। वे लिखते हैं—

"सिकन्दर के इतिहास लेखकों ने मालवा के निवासियों के संबंध में अनेक बातें लिखी हैं। उनके अनुसार मालव जाति अधिकांश में ऊपरी पंजाब की रहने वाली थी।" उन्होंने सिकन्दर से मुठभेड़ होने का उल्लेख भी किया है। सिकन्दर के शब्दों में 'मालव जाति उस समय की सर्व-श्रेष्ठ जातियों में थी' यह बात इतिहासकारों ने भी लिखी है।

उक्त तमाम तथ्यों पर विचार कर हम यह निर्विवाद कह सकते हैं कि पंजाबी तथा मालवी के लोक-साहित्य में यदि भाव, भाषा, शब्द या पंक्तियों में साम्य है तो यह एक ऐतिहासिक साम्य है, एवम् एक ऐतिहासिक सत्य है।

मालवी में गाए जाने वाला एक दोहा है—‡

"बना जी थें तो काबल का वासी
जाय बसे काबल का रस्ते कागद कद आसी।"

गीत में काबुल नगर में प्रियतम का वास बताया है इसका कारण यही प्रतीत होता है कि उन दिनों लोगों का सम्बन्ध अधिकतर काबुल से अवश्य रहा होगा, तभी पति के काबुल चले जाने की बात इस दोहे में पैठ सकी।

इसी प्रकार परमार जी की ही पुस्तक में दो ऐसे गीत दिए गये हैं जो एक दूसरे से साम्य रखते हैं। यहाँ उन दोनों गीतों को ज्यों का त्यों उधृत कर देना असंगत न होगा। प्रथम गीत मालवी है तथा दूसरा कांगड़ा जिले का पंजाबी गीत है—

(१)

एजी एक तो भाल राजा ने मारी लियो
लागी मरगा पे घाव मरगो पड़ी गयो
राजा पड्यो रे पड्यो तन तड़पी रियो

‡ मालवी लोक-गीत—श्याम परमार पृष्ठ ६०

एजी हाथ कूँ जोड़ मरगो क्या बोले
एजी सिंग तो देणा सिंगी नाथ कूँ
एजी, आँख तो देणा चंचल नार कूँ
एजी, खाल तो देना साधू संत कूँ
एजी, पाँव तो देणा कायर चोर कूँ
एजी, इतरा तो बोल प्राण छोड़ी दिया

(२)

चुगदा चुगेन्दा हिरणू बोलदा
मियाँ हेडिया वो
संगोटा तां मेरे कुसी साधे जो देयां
साधे संत जो देयाँ
जेहड़ा दूर—दूर बजावे नाद
मियाँ हेडिया वो
खेल्लड़ू तां मेरी कुसी पंडते जो देयां
पंडत पाधे जो देयां
जेहड़ा बैठे आसण लाई के
मियाँ हेडिया वो
अक्खी ताँ मेरीयाँ कुसी राणिये जो देयाँ
राणिये सुन्दरां जो देयां
जेहड़ी रक्खे डब्बियाँ पाई के
मियाँ हेडिया वो
लत्तां तो मेरियां किसे घोड़े जो देयां
घोड़े बांके जो देयाँ
जेहड़ा रण विच पावे जीत
मियाँ हेडिया वो

दोनों गीतों में भाव—साम्य तो है, किंतु शब्द—साम्य इस गीत में न मिला। संभव है यह गीत परमार जी के विचारानुसार कोई नाथ संप्रदायी साधु ले आया हो, या पंजाब से यह मालव—लोगों के साथ चला गया हो।

गीत में अहिंसात्मक भाव हैं—अतएव यह गीत काफी पुरातन भी हो सकते हैं ।

अब हम उन शब्दों पर विचार करेंगे जो पंजाब और मालवा के लगभग समान हैं और जिनसे भाषा—साम्य का आभास मिलता है—

पंजाबी	मालवी	अर्थ
हेठे	हेठे	नीचे
काई	कई	क्या
कद	कद	कब
कदी	कदी	कभी
नीं	नीं	नहीं
के	के	क्या
समीसंझा	सवींसंझा	संध्या को
सिवां दे	सिवाई दे	सिलवा दे
सुण	सुण	सुन
चीरा	चीरा	साफा
चुन्नी	चुनरिया	दुपट्टा
बीर	बीर	भाई
परणा दित्ती	परणाई दी	ब्याह दी
रिन्हूँ	रांधूं	पकाऊं
भिख्या	भिख्स्या	भिक्षा
सूम	सूम	कंजूस
सौकण	सोकन	सौत
चंबा	चंपा	फूल का नाम
धौला	धोला	श्वेत
हाल्ली	हाली	हलवाहे
लाड़ा—लाड़ी	लाड़ा—लाड़ी	दूल्हा—दुल्हन

उक्त शब्दों से यह निश्चय होता है कि पंजाबी तथा मालवी के बहुत से शब्द ज्यों के त्यों मिलते हैं तथा समान हैं । नीचे हम कुछ और पंक्तियां भी

देना उपयुक्त समझते हैं जो कि, दोनों बोलियों में साम्य प्रदर्शित करती हैं। केवल इतना ही नहीं दोनों बोलियों में विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले गीतादि के नाम भी समान ही हैं—

पंजाबी	मालवी	पंजाबी	मालवी
कामण	कामण	घोड़ी	घोड़ी
सुहाग	सुहाग	बन्ना	बना
बधावा	बधावा	साँझी	संझा
टिक्का	टीका	विदाई	विदाई
हल्दी बटना	हल्दी उबटन	तियां दे गीत	तीज के गीत

एक मालवी गीत की पंक्ति है जो विवाह के समय गाया जाता है। यही पंक्ति पंजाबी गीत में भी है, जो इसी अवसर पर गाया जाता है—

मालवी पंक्ति है:—

"ऐसो वर ढूंडो जैसे गोकुल को कनैयो"

पंजाबी पंक्ति है:—

"तारयां विचों चन्न, चन्ना विचों काहन
कन्हैया वर लोड़िये।"

एक पञ्जाबी गीत है जिसमें पिता ऊपर सोया पड़ा है, उसे सूचना दी जाती है कि उसकी कन्या विवाह के योग्य हो गई है। इसी प्रकार एक मालवी गीत भी है, किन्तु इसमें पिता के स्थान पर मां है—

पंजाबी पंक्ति है—

उत्ते चढ़ सुत्ता बाबुल के नींद आइयो
बाबुल नूँ कहीं नींद प्यारी घर कन्या कुमारी
सलोही बेटी वर मंगदी"

मालवी पंक्ति है—

"लाड़ा की मां कई सूता के जागो"

विवाह के अवसर का ही एक और गीत देखिये, जो सम्पूर्ण ज्यों का त्यों मिलता है। पंजाबी गीत है—

"वे तूं काला काला काला प्यो देआ साला
काला कित गुने
मेरी मां गई लोंगां हेठ, मैं माऊ दे पेट महीन्ना सी जेठ
मैं काला ऐस गुने
वे तूं पीला पीला पीला प्यो दे आ वकील्ला
पीला कित गुने
मेरी मां गई हल्दी हेठ, मैं माऊ दे पेट, महीन्ना सी जेठ
मैं पीला ऐस गुने
वे तू तिक्खा, तिक्खा तिक्खा पूरया सिक्खा
तिक्खा कित गुने
मेरी मां गई मिरचां हेठ, मैं माऊ दे पेट महीन्ना सी जेठ
मैं तिक्खा ऐस गुने
वे तूं गोरा गोरा गोरा मक्खन देआ चोरा
गोरा कित गुने
मेरी मां गई चम्बे हेठ, मैं माऊ दे पेट महीन्ना सी जेठ
मैं गोरा ऐस गुने" ....इत्यादि

अब मालवी गीत देखिये—

"तू तो पीलो रे लाड़ा पीलो काय गुणे
म्हारी माता ने छटी रे जगई हल्दी रूख तले
तू तो गोरो लाड़ा गोरो काय गुणे
म्हारी माता ने छटी रे जगई चन्दन रूख तले
तू तो चरपरो रे लाड़ा चरपरो काय गुणे
म्हारी माता ने छटी रे जगई मिरच्या रूख तले
..........................इत्यादि

उपर्युक्त शब्द—पंक्ति तथा गीतादि से यह निश्चय हुआ कि मालवी एवम् पंजाबी में पर्याप्त मात्रा में साम्य है। नीचे दो पहेलियाँ भी दी जाती है जो पंजाबी से मिलती हुई हैं—पंजाबी बुझारत (पहेली) है—

"धौली डाढ़ी दा बुड्ढा सब्बे थांह विकान्दा ई" —प्याज

मालवी पहेली है—

"धौली डाढ़ी को डोकरो, ऊ हाटो हाट बिकाय
बूजो हो बेवई म्हारी पारसी नीं तो हारो घर की नार"

—प्याज़

पंजाबी:— "जंगल जाई लक्कड़ ल्याई
गिल्ली ना ल्याई सुक्की ना ल्याई
लक्कड़ लैके घर नूँ आई" —सर्प

मालवी:— "जंगल जाना लकड़ी लाना
गीली नहीं लाना सूखी नहीं लाना
लकड़ी लई के जल्दी ही आना" —सर्प

——:०×०:——

*मालव-गण पंजाब के पुरातन निवासी थे ?

कुछ विद्वानों का मत है कि ऋग्वेद की रचना ईसा से २५०० वर्ष पूर्व सप्तसिन्धु (पंजाब) में हुई† इससे हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि पञ्जाब या सप्तसिन्धु में आर्य लोग सर्व प्रथम निवास करते रहे हैं। उस समय मध्य-भारत या दक्षिण भारत में आर्यों का निवास नहीं था। धीरे २ आर्यों ने अपना विस्तार किया और लगभग हज़ार-डेढ़ हज़ार वर्ष ईसा से पूर्व तक वे लोग नर्मदा तक फैल सके। इसी काल में मध्य भारत में अवस्थित अवन्ती प्रदेश ने अपनी ख्याति पाई और वह बौद्ध मत का एक प्रधान केन्द्र बन कर रहा। कालान्तर में 'अवन्ती-भाष्य' की रचना हुई। इस काल तक हमें कहीं भी 'मालव-गण' का उल्लेख नहीं मिलता है।

---

* गत परिच्छेद पर "विक्रम" के विद्वान सम्पादक श्री० सूर्यनारायण जी व्यास ने कुछ आपत्ति की थी कि वह मेरा भ्रम मात्र ही है तथा यह भी संकेत किया था कि वास्तव में मालव-गण अवन्ति प्रदेश से पंजाब में युद्धादि के लिए या अन्य कार्यों से आते रहे हैं। हमें अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि निश्चयात्मक रूप से अभी तक यह निश्चय नहीं हो पाया है कि मालव-गण पुरातन निवासी अवन्ति प्रदेश के थे या पंजाब में स्थित 'मालवा' के। दोनों मतों का प्रतिपादन विद्वान करते हैं, तथा अपनी-अपनी बात को सिद्ध करते हैं; किन्तु न्यायोचित तर्क अप्राप्य ही हैं।

† 'चन्द्र गुप्त मौर्य और अलेक्जैण्डर की पराजय'—डॉ० हरिश्चन्द्र सेठ

कुछ विद्वान पुराणों का भी सन्दर्भ देकर यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं जैसा कि श्री व्यास जी का मत है—किन्तु इतिहासकारों का अधिकतर मत यही है कि पुराणों की रचना ईसा की चौथी शताब्दी में सम्पूर्ण हुई । ‡ सम्भव है मालव-गण पुराणों के रचना काल में मध्य-भारत में पहुँच चुके हों । यदि मालव-गण आर्य थे तो यह निश्चय ही है कि वे पञ्जाब से होते हुए ही अवन्ती प्रदेश में जा बसे; किन्तु उनके अनार्य होने के सम्बन्ध में कोई भी प्रमाण नहीं मिलते—वे निश्चित तौर से आर्य ही थे । आर्यों का भारत में आगमन पञ्जाब या सिंध के मार्ग से ही हुआ है, निश्चय ही पहिले आर्यगण पञ्जाब में आकर बसे और कालान्तर में वे अवन्ती प्रदेश में चले गये । पुरातन काल में आधुनिक मालव अवन्ती प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध था, 'मालव' के नाम से नहीं ।

इतिहास के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सिकन्दर के आक्रमण के समय मालव-गण पञ्जाब में निवास करते थे । उन्होंने सिकन्दर से युद्ध भी किया था, तथा उसका अङ्ग-अङ्ग छेद दिया था । यूनानी इतिहासकार प्लूटार्क ने इस घटना का इस प्रकार वर्णन किया है—"मालव भारत की सबसे अधिक युद्ध कुशल जाति कही जाती थी । उनसे युद्ध करते हुए सिकन्दर ऐसी स्थिति में पहुँच गया था कि उन के द्वारा उसके टुकड़े २ कर डाले जाते । उसने अपने को मालवों की दीवाल के नीचे से खदेड़ भगाया ।"§ यही नहीं ईसा से ५०० वर्ष पूर्व हुए विद्वान 'पाणिनी' ने भी मालवों का निवासस्थल पञ्जाब ही बताया है । मेसेडोनिया के लेखक भी मालवों का निवास पञ्जाब ही मानते हैं । प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० जायसवाल "हिन्दू-पॉलिटी" के चतुर्थ परिच्छेद में लिखते हैं—

---

‡ "पुराण कुल १८ हैं । इनमें श्रीमद्भागवत और विष्णु पुराण मुख्य हैं । इनका आधुनिक हिन्दू धर्म पर बड़ा प्रभाव पड़ा है । विद्वानों का कहना है कि यह चौथी शताब्दी ईसवी के लगभग रचे गये ।"—'भारत वर्ष का इतिहास'—डॉ० ईश्वरी प्रसाद, एम० ए० डी० लिट, पृष्ठ ४१ ।

§ 'चन्द्र गुप्त मौर्य और अलेकजैण्डर की पराजय'—डॉ० हरिश्चन्द्र सेठ ।

"The Macadonian writers describe many of these (described by Panini) republics. Two of them are the Kshudrakas & the Malavas"

कौटिल्य ने भी अपने अर्थ-शास्त्र में 'मालव' का उल्लेख किया है। डॉ० जायसवाल 'Hiudu Polity' के पाँचवें परिच्छेद में 'Republics of the Budhist Literature' (५००–४०० ई० पूर्व) में लिखते हैं—

"Politically the most important of the groups were the Vrijis or Videhas & the Mallas. This was also noticed both by Panini & Kautillya."$

दोनों लेखों में दिये ऐतिहासिक तथ्यों से हमें यह ज्ञात होता है कि ईसा से ३२६ वर्ष पूर्व से १५० ई० तक मालव-गण पञ्जाब की भूमि पर ही निवास करते रहे, इसके पश्चात् वे लोग (क्षुद्रक भी मालव में विलय हो गये) राजपूताना में गये और वहाँ से भी कालान्तर में अवन्ती प्रदेश में जा बसे। हम पहिले लिख चुके हैं कि डॉ० राय चौधरी के मतानुसार मालव-गण पञ्जाब के ही निवासी थे। ¶ उसके पश्चात् हमने डॉ० आर० डी० बनर्जी के मतानुसार यह भी स्पष्ट लिखा है कि कालान्तर में वे नर्मदा के समीप

$ "Apart from this Panini says that these republics were situated in the Valhika country, Jayaswal mentions that this Valhika country is nothing but the territory of Punjab & the Sindh—He bases his judgement on the fact that Valhika meant 'rivers' and, again the Valhika country was far away from the Himalayas'···chapter IV Dr. Jayaswal's Hiudu--Polity."

¶ देखिये,—"*Advanced History of India*" डॉ० राय चौधरी, पृष्ठ ६५

जा बसे। * डॉ० जायसवाल भी 'हिन्दू पालिटी' में स्पष्ट लिखते हैं—

"क्षुद्रक तथा मालव-गण ३२६ ई० पूर्व तक पूर्णतया स्वतन्त्र होकर रहे। इसके पश्चात् क्षुद्रक-गण मालव-गण में विलय हो गये और मालव-गण ईसा की तृतीय शताब्दी तक भी स्वतन्त्र होकर ही राजपूताना की बंजर भूमि में विचरण करते रहे। उन्होंने लगभग १०० वर्ष का स्वतन्त्र जीवन व्यतीत किया यह निश्चय है।" †

ग्रीक इतिहासकार 'एरियन' भी इसी मत का समर्थक है। जो पुरातन सिक्के प्राप्त होते हैं, उनसे भी यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि मालव-गण पञ्जाब राजपूताना तथा मध्यभारत में निवास करते रहे हैं। यही नहीं मालव-गण का स्वतन्त्र राज्य भी इन प्रांतों में रहा है। §

उपर्लिखित ऐतिहासिक तथ्य ही नहीं और भी ऐसे विभिन्न प्रमाण प्राप्त होते हैं जिनसे हम निश्चय रूप से कह सकते हैं कि मालव-गण पञ्जाब के ही पुरातन निवासी हैं. और यहीं से वे लोग कालान्तर में अवन्ती प्रदेश (मध्य भारत) में गए हैं। जिन ग्रन्थों में अवन्ती तथा मालव-प्रदेश को भिन्न बताते हुए उन्हें एक ही बताया है निश्चय ही वे ग्रन्थ बाद के लिखे हुये हैं। विद्वानों का मत है कि पुराणों की रचना ईसा की चौथी शताब्दी में समाप्त हुई। पुराणों में मालव एवं अवन्ती प्रदेश दोनों का ही उल्लेख मिलता है। यह निश्चय है कि अवन्ती को ही कालान्तर में मालव कहा गया है, इसी

---

* देखिये—'*Prehistoric Ancient & Hindu India*' डॉ० आर० डी० बनर्जी, पृष्ठ १६४।

† देखिये, डॉ० जायसवाल रचित–'*Hindu Polity*' १९ वां परिच्छेद।

§ "*Some coins give us the names of the kings & dates of their reigns. The Malava coins are found in the Punjab, Rajputna & C. I. This shows that the independent kingdom of Malavas was situated in these parts of India respectively*" '*Hindu Polity*'--*by Dr. Jayaswal, chapter XIX (c)*

कारण लेखकों ने इस प्रदेश को दोनों नामों से सम्बोधित किया। यह भी सम्भव हो सकता है कि पहिले लेखक-गण इसे अवन्ती पुकारते रहे, तथा जब मालव-गण वहाँ जा बसे तो उसे वे 'मालव' कहने लग गये। बौद्ध-साहित्य के कुछ ग्रन्थों में जिनकी रचना ईसा से पूर्व मानी जाती है-में अवन्ती प्रदेश का ही उल्लेख मिलता है—मालव प्रदेश का नहीं।

बहुत समय पूर्व डॉ० सिल्वन लेवी ने एक प्राकृत पद्य प्रकाशित किया था, पता नहीं उसका आधार क्या है? परन्तु उसमें अवंती की (मालवा की नहीं--ले०) केन्द्रीय भूमि 'माहिष्मती' बतलाई है—

दंतपुरं कलिङ्गानि अस्सकानांच पोटनम्।
महिस्सती अवन्ती ना सौवीरानां चेरोसकम्।

और हेमचन्द्र ने अभिधान चिन्तामणि में एक 'कुमालष' शब्द अङ्कित किया है (भूमि-काण्ड २६) सम्भव है, पण्डित भगवद्दत्त जी के अनुसार यह छोटा मालवा होगा। परन्तु यह सौवीर गण-राज्य के अंतर्गत था, अलबेरूनी इसे मुलतान के समीप के प्रदेश में सूचित करता है। वैसे सौवीर का स्वतन्त्र वर्णन अष्टाध्यायी की काशिका-वृत्ति, भास के अविमारक आदि में तथा आयुर्वेद ग्रन्थों में भी है। वहाँ मालव की कहीं चर्चा नहीं है। इसी प्रकार वाल्हिक देश में क्षुद्रक और मालवों को आयुध-जीवी कहा गया है। (काशिका वृत्ति ५।३।११४) महाभारत कर्ण-पर्व में वाल्हिक में अनार्य निवास बतलाया है। सम्भव है इन अनार्यों के उच्छेदन के लिए आयुधजीवी (सैनिक) मालवों को रखा गया हो। क्षुद्रक मालवों का वर्णन प्रायः महाभारत में कई स्थल पर आया है। पातञ्जलि (१५० ई० पू०) ने भी (महाभाष्य) इनकी चर्चा की है (इनका निवास उस समय भी पञ्जाब ही में प्रतीत होता है—ले०)। मालव का वर्णन सभा-पर्व (७८-७०) में भी आया है। ये गेहूँ के पात्र भर कर युधिष्ठिर को अर्पण करने के लिए लाए थे। यह सभी जानते हैं कि मालव भूमि गेहूँ के लिए प्रख्यात है (निश्चय ही मध्य-भारतीय मालव प्रदेश से पञ्जाब-स्थित मालवा में गेहूँ आदि-काल से ही बढ़िया और श्रेष्ठ होता आया है। इसी कारण पञ्जाबी का 'अखाण' (आख्यान) प्रसिद्ध है-''कणक मालवी अम्ब पुआधी-रत्ता गन्ना बड़ा सुआदी।'' अर्थात् मालवी गेहूँ, पुआध का आम,

तथा लाल रङ्ग का गन्ना बड़ा स्वादिष्ट होता है। ले०) संभव है ये वहाँ से यह उपहार ले गए हों। इससे यह प्रतीत होता है कि महाभारत के युद्ध-काल में जो मालव-योद्धा गए थे उत्तर भारत में कुछ समय रहे हैं। परन्तु कुछ इतिहासज्ञ आधुनिक फ़िरोज़पुर से लगे हुए भाग को उस प्रदेश का 'मालवा' मानते हैं ×। और इन्हीं पर से पञ्जाब के मालव उदीच्य-मालव कहे गए हों और सौराष्ट्र से संलग्न प्रतीच्य-मालव। अवश्य ही उदीच्य और प्रतीच्य मालव महाभारत में (भीष्म पर्व ११७। ३३। ११६। ८५ और द्रोणपर्व ७। १५) युद्धकाल में संयुक्त थे और कर्ण-पर्व के इस श्लोक—

'मालवा मद्राश्चैव द्राविडा श्चोग्रकर्मिणः' (५० अ. २) के अनुसार भी महाभारत में उनका सहयोग था।" ‡ ऊपर हमने देखा है कि महाभारत आदि में मालवों का उल्लेख तो अवश्य मिलता है, किन्तु उनके निवासस्थान का उल्लेख स्पष्ट नहीं मिलता—तर्क लगाने पर उनका निवास पञ्जाब में होना अधिक उचित जँचता है, क्योंकि महाभारत की रचना के पश्चात् के इतिहास पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो हमें मालवों का निवास पञ्जाब में ही मिलता है; जिसे कि वे शकों और कुषाणों के शासन काल में छोड़ गए।

आज जिस सम्वत् को अधिकांश भारतीय सम्मान की दृष्टि से देखते हैं वह विक्रम-सम्वत्-मालव सम्वत् के नाम से भी प्रसिद्ध है। ऐसा प्रतीत होता है कि जब मालव-गण पञ्जाब से अवन्ती की ओर उतरने लगे तो उन्हें मार्ग में निश्चय ही पर्याप्त कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा—कुछ युद्ध

× मेरा अपना मत है कि धर्मराज युधिष्ठिर को भेंट करने के लिए मालव-गण गेहूँ पञ्जाब के ही मालव-प्रदेश से ले गए—क्योंकि गेहूँ के लिए प्रसिद्ध प्रदेश में अवन्ती से जो कि लगभग ७-८ सौ मील दूर है—गेहूँ ले जाना अनुपयुक्त सा प्रतीत होता है। इसके साथ ही कुछ मालव-योद्धाओं के उत्तरी भारत में रह जाने से ही कोई प्रदेश 'मालव' नाम से प्रसिद्ध हो गया हो यह भी तर्कयुक्त प्रतीत नहीं होता।—लेखक

‡ "मालव, मालव-जनपद और उसका क्षेत्र-विस्तार"—श्री० सूर्य-नारायण जी व्यास पृष्ठ ४ तथा ५ पर।

भी सम्भवतः लड़ने पड़े हों। जब रण-क्षेत्र का जीवन व्यतीत कर मालव-गण अवन्ती प्रदेश में पहुँच गए और वहाँ के निवासियों पर उन्होंने अपना अधिकार स्थापित कर लिया, तब उन्होंने मालव–सम्वत् की घोषणा की प्रतीत होती है। यह समय निश्चय ही ईसा से ५७ वर्ष पूर्व रहा होगा। जब इतिहासज्ञों का विक्रमादित्य (चन्द्रगुप्त द्वितीय ३७५–४१३ ई०) सिंहासनारूढ़ हुआ और शकों पर विजय प्राप्त कर 'शकारि' के नाम से पुकारा जाने लगा तब उसने मालव-सम्वत् को ही विक्रम-सम्वत् में परिवर्तित कर दिया प्रतीत होता है। ऐतिहासिकों का निश्चित मत है कि "मालव-संवत् छठी शताब्दी ईस्वी के पश्चात् 'विक्रम संवत्' होकर प्रसिद्ध हुआ।"+

मालव-गण के रूप-रङ्ग, चाल-ढाल से यह निश्चित् ज्ञात होता है कि वे लोग आर्य थे। आर्य लोग प्रायः सिंध या पञ्जाब के मार्ग से ही भारत में फैल सके हैं। मालव-गण भी निश्चय है कि पंजाब या सिंध के मार्ग से ही होते हुए अवन्ती प्रदेश में जाकर बसे। उन्हें मालव का मूल निवासी मानना वास्तव में भ्रम ही है। यह भी सम्भव हो सकता है कि मालव-गण का एक दल अवंती प्रदेश में चला गया हो और दूसरा दल सिकंदर के आक्रमण के पश्चात् गया हो। किंतु यह निश्चय ही है कि मालव-गण पंजाब में भी पर्याप्त समय तक अपना अधिकार जमाए रहे। जिस प्रकार गुर्जर लोग पहिले पंजाब के ज़िले गुजरात में रहे तदुपरांत राजस्थान को पार कर के गुजरात (सौराष्ट्र) में पहुँचे, उसी प्रकार मालव-गण भी पहिले पंजाब के मालव में निवास करते रहे तदुपरांत मध्य-भारत में उपस्थित मालव में पहुँचे। सम्भव है कि उनके पंजाब से प्रस्थान की तिथियों में कुछ अंतर हो किंतु यह तो निर्विवाद सत्य है कि वे सर्व–प्रथम पंजाब ही में बसे।

पहिले हम पंजाब (मालवा) तथा अवंती (मालवा) की बोली में साम्य पर कुछ संकेत कर चुके हैं; यहाँ हम पुनः इस पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक समझते हैं। पंजाब (मालवा) में अभी भी कुछ ऐसी जातियाँ मिलती

+ देखिए—"भारतवर्ष का इतिहास"–डॉ० ईश्वरी प्रसाद, एम० ए० डी० लिट—पृष्ठ ६२

हैं जो कि अवंती (मालवा) से मेल खाती हैं; जैसे—

पंजाब में	अवंती में
साँसी या सैंसी	साँसी
कंजर	कञ्जर
खाती	खाती
खटीक	खटीक
आजड़ी	आँजना
कमोअ	कुनबी
तमोली	तम्बोली
बालई	बलाई

पंजाब तथा अवंती के ब्राह्मणों की तो ऐसी विभिन्न जातियाँ तथा उप-जातियाँ प्राप्त होती हैं जो एक ही हैं। दोनों प्रदेशों के रीति-रिवाजों में भी समानता ही मिलती है। अवंती (मालवा) में जिस 'संझा' को बालिकायें सँजोती हैं वही 'सांझी' उसी रूप में यहां पंजाब में भी एक पखवाड़े तक बालिकाओं का आकर्षण बनी रहती है। विवाह आदि के अवसर पर दोनों स्थानों पर समान ही रीतियों का चलन है। श्रावण तृतीया के झूले अवंती में यदि 'तीज के झूले' कहे जाते हैं तो पंजाब में उन्हें "तीयाँ दी पींगां" के नाम से स्मरण किया जाता है।

न केवल यही वरन् यूनानियों के प्रभाव से जहाँ 'स' को 'ह' उच्चारित करने का प्रयोग मालवा (अवंती) में है वहाँ पंजाब के मालवा में भी 'स' का 'ह' ही उच्चारण होता है; जैसे—

पैसा को पैहा
ससुरे को सहुरे
साँस को साँह
फाँस को फाँह
बरस को बरह ·········इत्यादि।

निश्चय है कि यूनानियों का आक्रमण ईसा से ३२५ वर्ष पूर्व हुआ था, तभी से 'स' का उच्चारण भी 'ह' ही होना प्रारंभ हुआ। मालवी में

प्राय: 'स' का उच्चारण भी 'ह' ही होता है यदि मालव-गण उस समय पंजाब में निवास न करते होते तो कभी भी वे यूनानियों के इस उच्चारण का अनुकरण न कर पाते। यह तर्क भी हमें इसी निश्चय पर पहुँचाता है कि ई० पूर्व ३२५ तक मालव-गण निश्चय ही पंजाब में निवास करते थे। इसके पश्चात् वे पंजाब से मध्य-भारत में गये।

खड़ी बोली में जिस अर्थ में 'मैं' का प्रयोग होता है वही में 'हूँ' तथा पञ्जाबी में 'हो' हो गया है। 'तुम्हारे' को मालवी में 'थारे' तथा पञ्जाबी (मलवई) में 'थ्वारे' या 'त्वाहरे' कहा जाता है। केंद्रीय पंजाबी में यही शब्द 'थ्वाडे' बन जाता है। 'कहा' शब्द जहाँ मालवी में 'कियो' बन जाता है, वहाँ पंजाबी में 'कियाह' हो जाता है, इसी प्रकार 'करा' मालवी में 'कर्यो' हो जाता है और पंजाबीं में 'कर्या' बन जाता है। किसी व्यक्ति को सम्मान देने के लिये या संज्ञा को बहुवचन में प्रयुक्त करने के लिये यदि मालवी में 'हुन'' 'होण' या 'होन' का प्रयोग होता है तो पंजाबी मलवई में वह 'होनां', 'होणां' या 'हुनां' बन जाता है; जैसे----

मालवी में	मलवई में
मास्टर हुन	मास्टर हुनां
मास्टर होण	मास्टर होणां
मास्टर होन	मास्टर होनां·····इत्यादि

खड़ी बोली से प्रादेशिक भाषा बनते समय जो परिवर्तन पंजाबी में हुए हैं, वही लगभग मालवी में हुए प्रतीत होते हैं; जैसे—

खड़ी बोली में	मलवई में	मालवी में
द्वार	दुआर—दुवार	दुआर—दुवार
माँ	माड़ी	माड़ी
बढ़े	बढ़या	बढ़या
भेजना	भेजणा	भेजणा
कभी	कदी	कदी
जब	जद	जद

········इत्यादि।

अब हम कुछ ऐसे शब्द भी देखेंगे जिनका रूप दोनों प्रदेशों में समान ही है—

मलवई	मालवी	अर्थ
ढोला	ढोला	प्रिय
बाट	बाट	दूरी
उठ्या	उठ्या	उठे
कौण	कोण	कौन
मँगा लाँगा-मँगा लांगे मँगई लाँगा		मंगा लेंगे
कम्म सरे	काम सरे	काम निकलना
तला	तलाव	तालाब
बाँचना	बाँचना	पढ़ना
जाया	जाया	जन्मा
घणी	घणी	बहुत
बाट	बाट	प्रतीक्षा
घुँघर माल	घुँघर माल	घुँघराले बाल
त्योर	तेवर	विवाह के कपड़ों के जोड़े
तगादे	तगादे	आभूषण
बिंदना	बींदना	बींधना
जणी	जणी	पैदा की हुई
बारी	बारी	खिड़की
नवीं	नवी	नई
अल्ल	आल	घीया या लौकी
दिसौरी	दिसौरी	परदेशी
उन्हाला स्याला	उन्हाला–स्याला	गर्मी–सर्दी
दुलाई	दुलाई	रजाई
मेबला	मेवला	मेघ
हताई	हताई	चौपाल
कागद	कागद	पत्र

जीमो-रसोई	जीमो-रसोई	भोजन करो
मूँदड़ा	मूँदड़ा	एक प्रकार की अंगूठी
रामजणी	रामजणी	वैश्या
तेह-त्रेह	तीस-तीह	प्यास

उपर्युक्त तर्कों, शब्दों, रीति-रिवाजों तथा दोनों ही स्थानों की सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि को देखकर हम यही पाते हैं कि दोनों प्रान्तों में पूर्णतया साम्य है; एवम् निश्चय ही मालव-गण किसी समय पंजाब के निवासी अवश्य थे जो कि कालान्तर में अवन्ती–प्रदेश में जाकर बसे, जिसके कारण वह 'मालवा' कहलाने लगा।

'लोक-साहित्य' की यदि और खोज की जाये तथा दोनों प्रान्तों का ही लोक-साहित्य पर्याप्त मात्रा में संग्रहीत हो जावे तो निश्चय ही है कि हमें दोनों प्रान्तों की एकता सिद्ध करने में और भी बल प्राप्त होगा। वह दिन वास्तव में धन्य होगा जब दोनों प्रान्त अपने पुरातन सम्बन्धों को पहिचान कर पुनः एक सूत्र में बद्ध होजायेंगे और अपने पुरातन संबन्धों को पुनः स्थापित कर एक स्वर में गा उठेंगे—

> "कणक मालवी, अम्म पुआधी
> रत्ता गन्ना बड़ा सुआद्दी"

——:०×०:——

पंजाबी लोक-साहित्य एवं उसका वर्गीकरण

अन्य प्रान्तीय लोक–भाषाओं के समान पञ्जाबी का लोक-साहित्य समान रूप से ही नहीं, वरन् अधिक समृद्धशाली है। लोक-साहित्य वर्त्तमान का संबन्ध पुरातन से स्थापित करता है। लोक-साहित्य ही वह कड़ी है जो पुरातन संस्कृति को सजीव बना, नई संस्कृति एवम् रीति-रिवाजों से उसे सम्बद्ध करती है। रॉल्फ़ वान विलियम्स ने लिखा था :—

"A folk–song is neither new nor old, it is like a forest-tree with its roots deeply burried in the past, but which continually puts forth new branches, new leaves, new fruits"—§

"लोक-गीत उस वन-वृक्षों के समान हैं जिनकी जड़ें अतीत में अवस्थित हैं, उन्हीं से जीवन पाकर उसकी शाखाएँ, कोपलें एवम् फल आदि प्रस्फुटित होते हैं और वर्त्तमान को एक नई शक्ति एवम् चेतना देते हैं, जिससे वह सजीव हो उठता है और उसके सांस्कृतिक अध्याय में एक नया परिच्छेद जुड़ जाता है।"

इस उक्ति पर विचार करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि किसी भी भाषा या बोली को बलवती, विचारवान, सांस्कृतिक तथा लोक-प्रिय बनाने

§ "एन्सायक्लोपीडिया ब्रिटानिका" चौदहवाँ संस्करण; पृष्ठ ४४८

में उसका लोक-साहित्य अत्यधिक सहायक होता है। लोक-साहित्य ही एक ऐसी वस्तु है जो लोकाभिव्यक्ति का दिग्दर्शन सहज ही कर देती है।

पंजाबी का लोक-साहित्य विभिन्न अंगों में, विभिन्न रूपों मे और विभिन्न सर्गों में बाँटा जा सकता है। वैसे तो प्रत्येक बोली या भाषा में हमें लोक-साहित्य पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है, किन्तु अनुमानतः पंजाबी का लोक-साहित्य अन्य बोलियों से अधिक एवम् अनेक रूपों में मिलता है। उसका वर्गीकरण करना एक समस्या और प्रत्यक्ष-दर्शन करना भी कठिन अवश्य है। जैसा कि हम जानते हैं तथा विभिन्न विद्वानों का निश्चित मत है कि भारतवर्ष की प्रचीनतम् संस्कृति पंजाब में प्राप्त होती है; क्योंकि पंजाब ही वह प्रदेश है जहाँ से भारतीय संस्कृति का उद्गम हुआ, फैलाव हुआ एवम् देश-देशांतरों में उसकी छाप बैठी। निश्चय है कि जहाँ की संस्कृति जितनी अधिक प्राचीन होगी, उतनी अधिक पुरातनता का प्रायः आभास भी प्राप्त हुआ करता है, उसके लिए उचित तथ्यपूर्ण प्रमाणों का मिलना कठिन होता है। यही कारण है कि उनका वह पर्यवेक्षण जिसकी आवश्यकता प्रतीत की जाती है, प्रायः कम ही हो पाता है। लोक-साहित्य अधिकतर लोगों की जुबानों पर या कण्ठों पर ही जीवित रहता है। लोक–साहित्य को स्मृति के लिये कहीं लिख लेने की प्रणाली प्राय: नहीं के समान ही है। इसी कारण लोक–साहित्य का रूप दिन-रात बदलता रहता है—उसके शब्द, भाषा या रूप ही नहीं बढ़ता-घटता वरन् कभी-कभी तो पर्याप्त परिवर्तन प्रतीत होने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि दो गीत भिन्न हैं—चाहे वे एक ही क्यों न हों? कहने का तात्पर्य यह कि लोक–साहित्य का जहाँ पर्यवेक्षण करना कठिन है वहाँ उसका वर्गीकरण करना भी साधरण कार्य नहीं है।

पञ्जाबी लोक--साहित्य विभिन्न अंगों में बिखरा पड़ा है। उसे एक स्थान पर एकत्रित कर उसका वर्गीकरण करना ही उचित होगा। सर्व–प्रथम हम लोक--गीतों के विभिन्न अंगों को देखते हैं—

मानव-जीवन में नित्य-प्रति गाये जाने वाले गीत

थाल	लोरियाँ	किकली
लम्बे-छोटे गाउण	वर्ष-गाँठ के गीत	सतवारे

माहोमाह या बारहमाँह	आरती	मंदिरों के गीत
पथिकों के गीत	खेल के गीत	माहिये
टप्पे	बोलियाँ	बुझारतें
सती के गीत	सौत के गीत	बाग्घी
धुमाल	धुमाकड़ा	भंगड़ा
लुड्डी	जल्ली	वंझली
अलगोजा	तूम्बा	काँटो
सुराँ	सद्द	झोक
वार	जंग नामे	किस्से
चिट्ठे	गुलजार	जिन्दुआ
रेलाँ	ख्यूड़े	पत्रों के गीत
ढोला	बिलड़े	चरखे के गीत
चक्की के गीत	हास-परिहास के गीत	लाम के गीत
दोहड़े	काफियाँ	

संस्कारों के गीत

वधावा, मुमारख या वधाइयाँ	पानी वारने के गीत
छुटी के गीत	मुण्डन के गीत
कुड़माई, सगाई या टिक्का	पुड़ी के गीत
ब्रह्म-भोज के गीत	कड़ाही के गीत
घोड़ी या घड़ोली	सोहाग, डोली या कामण
छुटियों के गीत	जण्डी काटने के गीत
बरात को सिट्ठणी या घोड़ा-वेहड़ा	बटने के गीत 'या सेवल'
'माँजा' देने के गीत	'खट्ट' के गीत
वेदी के गीत	'लावाँ' के गीत या 'खारे'
कन्या की विदाई के गीत	वर-वधू के स्वागत-गीत
'कंगणों' के गीत	वर-वधू मिलने के गीत
साँत के गीत	मुकलावे के गीत

व्रतों-त्यौहारों के गीत

इन गीतों में विभिन्न देवी, देवताओं की कथाएं तथा उनसे किसी प्रकार की वर-प्राप्ति आदि का उल्लेख होता है, तथा उनकी विभिन्न प्रकार से स्तुति की जाती है ।

"तियाँ" के गीत — 'होहली' या होली
भाईदूज तथा 'रक्खड़ी' के गीत — दिवाली या 'दीवा'
दशहरे के गीत-रामधुन — 'करुए' के गीत
संक्रान्ति के गीत — 'सांझी' के गीत
'लोहड़ी' के गीत — वैशाखी के गीत
गूगे के गीत — 'झक्करी'
'देवी' की 'भेटाँ' — ...इत्यादि ।

नित्य-प्रति वार्त्तालाप में आने वाला छन्दोबद्ध साहित्य

बुझारतें
अखाण (साधारण)
पखाणें (सामाजिक आख्यान)
चुटकुले या 'घाड़तें' (खेती सम्बन्धी)
अखाण (पशु सम्बन्धी)
पशुओं एवम् जन-सम्बन्धी स्वास्थ्यदायक नुस्खे
जड़ी बूटियों की पहिचान और उनके उपयोग सम्बन्धी 'अखाण'
पेशेवर जातियों के धन्धों के सम्बन्ध में 'अखाण या चुटकुले'

पेशेवरों के या जातीय गीत

हलवाहों के गीत
तेलियों के गीत या कोल्हू
गाड़ी वालों के गीत
मल्लाहों के गीत
पनिहारिनों के गीत
सपेरों के गीत

नाथों के गीत

'इज्जड़' के गीत

मिरासियों के गीत–स्वाँग तथा स्यापा

पुरातनकालीन अन्य जातियों के गीत, जिनमें—

(अ) सिकलीगर (ब) बाजीगर (स) सिरकीबन्ध (ड) कुचबन्ध (ई) ओड (उ) साँसी (क) गड्डी वाले (ख) कञ्जर आदि सम्मिलित हैं।

गुज्जरों के गीत

जाटों के गीत

कुम्हार के चाक के गीत

भिखमङ्गों के गीत

खुसरों के गीत

बंजारों के गीत

मुसलमानों के घरों में प्रचलित गीत

गुजरी के गीत

नचैयों के गीत

भराइयों के गीत

हरिजनों की विभिन्न जातियों के विभिन्न गीत

लोक-गीतों के और भी अनेक रूप मिलते हैं जिन्हें उपर्युक्त वर्गों का उप-भेद ही कहा जा सकता है। जब हम उनका मनोवैज्ञानिक अध्ययन करेंगे उस समय विशेष उल्लेख करने का प्रयत्न करेंगे।

लोक-साहित्य के और भी विभिन्न सबल अङ्ग हैं, जिनमें—

लोक-कथाएँ

लोक-गाथाएँ

त्यौहारों की लोक-वार्ताएँ

जातीय अन्तरकथाएँ

लोक-मनोरञ्जन के खेल-तमाशे-मेले इत्यादि

लोक-नृत्य (किकली, लुड्डी, बाग्घी, फुम्मनियाँ, भङ्गड़ा तथा गिद्धा)

गुड़िया, कठपुतली, नट, बाजीगर या मदारियों के खेल
लोक-वाद्य आदि (तूम्बा, सारङ्गी, ढोलकी, रोड़ा, डफ्फ, मञ्जीरे, अलगोजा, वंझली, बीन, ढोल, खड़ताल, सिंगी, नगारा, बाँसुरी, छैणें, चिमटा, किंग, डमरू, इकतारा, ढड्डु, सारङ्गी घंटी या टल्ली इत्यादि)
स्वाँग, हास्य एवम् लीलायें.........इत्यादि ।

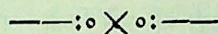
ऊपर हम ने संक्षेप में लोक-साहित्य का वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया है । लोक-साहित्य विभिन्न अवसरों पर विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है । कुछ विद्वान् इनका वर्गीकरण (१) अपौरुषेय लोक-साहित्य (२) पौरुषेय लोक-साहित्य (३) संयुक्त लोक-साहित्य, इस प्रकार करते हैं। दोनों दशाओं या दृष्टियों से उनका पर्यवेक्षण किया जा सकता है, किन्तु इस रूप से पाठकों के उलझ जाने का भय है, इस कारण हम इस वर्गीकरण की अपेक्षा पूर्ववत् वर्गीकरण ही उपयुक्त समझते हैं ।

लोक-साहित्य के 'उसरइये' (निर्माता)

प्रश्न उठता है कि इस लोक-साहित्य के निर्माता क्या पढ़े-लिखे, छन्द-शास्त्र, ताल, स्वर या लय आदि के दक्ष या आचार्य होते हैं ? यह बात कदापि नहीं है । हम यह किसी दशा में भी ज्ञात नहीं कर सकते कि किस लोक-गीत का लेखक कौन है या किन क्षणों में उसने उनका निर्माण किया है । मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने पर तथा भाषा-विषयक पर्यवेक्षण करने पर यह भले ही ज्ञात हो जाय कि अमुक गीत गाते समय उसके रचयिता की मनोदशा अमुक होगी या वह काल, भाषानुसार १०, २० या ५० वर्ष पुराना होगा, किंतु निश्चय रूप से न उसका काल ही ज्ञात हो सकता है और ना ही रचयिता का नाम आदि ही जाना जा सकता है । प्रश्न उठता है कि रचयिता ने अपना नाम गीत के साथ क्यों नहीं दिया, इसका कारण यही प्रतीत होता है कि वह गीत साहित्य के लिए नहीं, वरन् स्वान्तः-सुखाय ही सूनेपन में या मनोन्माद के क्षणों में होठों से फूट पड़ा होगा । प्रायः ऐसे गीत एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा भी रचे गए प्रतीत होते हैं । कभी २ ऐसा भी होता है कि गीत बढ़ या घट भी जाते हैं । निश्चय है कि विशाल भावनाओं, कल्पनाओं एवम् ताल

स्वर-लय से परिपूरित गीत का रचयिता भी इतना विशाल-हृदय होगा जिसे अपनी प्रसिद्धि या प्रचार-भावना का लेश-मात्र भी लालच न हो।

"मेरी राय में ग्राम-गीत किसी पुरुष या स्त्री विशेष की रचना नहीं है, बल्कि स्वयं प्रकृति का गान है। यह गान प्रकृति ने हृदय में बैठकर किया है, इसमें मस्तिष्क का मेल नहीं है। इन गीतों द्वारा एक समाज की सरस्वती बोली है। जिस तरह वेद अपौरुषेय माने जाते हैं, उसी तरह ग्राम-गीत भी अपौरुषेय हैं।"¶



¶ ग्राम-साहित्य—श्री रामनरेश त्रिपाठी 'जनपद', अङ्क प्रथम, पृष्ठ ११

पंजाबी लोक-कथायें एवं उनकी परम्परा

माँ के पेट से जन्म लेने के पश्चात् जब बच्चा कुछ समझने योग्य हो जाता है, तो वह नानी या दादी की गोद में जा उससे कोई कथा-वार्ता सुनने के लिए मचल उठता है। बूढ़ी माँ उसे किसी राजा, देव-असुर या परी की कहानी सुनाने लगती है। बच्चा दत्तचित्त हो उसे सुनने लगता है; उसके सामने एक ही प्रश्न रहता है—'फिर क्या हुआ?' नानी-दादी उसी कहानी को बढ़ाते २ बालक को सुला देती है। दूसरे दिन बालक पुनः बूढ़ी माँ के पीछे पड़ता है और कोई वैसी ही कहानी हनुमान की पूँछ के समान बढ़कर फिर से बच्चे को सुला देती है। धीरे २ जब वह बड़ा हो जाता है, उसकी कल्पना-शक्ति बलवती हो जाती है, तो वह ऐसी कहानियों से उकता उठता है। उन कहानियों को भ्रान्तिमात्र समझ कर उसका कौतूहल समाप्त हो जाता है। किंतु कालान्तर में जब वही बालक अपने वृद्धापकाल में स्मृतियों के आञ्चल में लुका-छिपा कर रखी गई उन्हीं कहानियों को अपने बच्चों को सुनाता है तब यही प्रतीत होता है कि उन कहानियों की पृष्ठ-भूमि के धूमिल-पट के पीछे निश्चय ही कोई ऐसा तथ्य है या कोई ऐसा मनोवैज्ञानिक सत्य है कि वे कहानियाँ अनहोनी प्रतीत होने के उपरान्त भी श्रव्य हैं एवं मनन करने के योग्य हैं। उन्हीं कहानियों को 'लोक-कथा', 'लोक-गाथा', 'लोक-वार्ता' या 'लोक-कहानियां' कहा जाता है।

वार्ता या कहानी लोक-जीवन के किसी अङ्ग अथवा जीवन की किसी विशेष अवस्था का चित्रण है। लोक-जीवन में मानव जो कुछ भी करता है और जो अपने पीछे छोड़ जाता है वही भविष्य में वार्ता या कहानी कहलाता

है। भूतकाल एवम् वर्तमान भविष्य के लिए कहानी ही है। ऊपर हमने बताया कि बचपन में बालक कहानी या वार्ता सुनने के लिए अपने ज्येष्ठ परिवारियों की गोद में कूद जाता है और उनसे कहानी सुनता-सुनता ही नींद की गोद में जा स्वप्नों की दुनियां में खो जाता है। देखा गया है कि एक दूसरे के वार्तालाप या कथनोपकथन से ही कहानी का उद्गम होता है।

वास्तव में कहानी का सृष्टि से बहुत गहरा सम्पर्क है। कहानी भी सृष्टि के साथ ही उत्पन्न हुई प्रतीत होती है। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया और बीते हुए समय में जो-जो परिवर्तन होते गये वे सभी आने वाले युग के लिए कहानी बन गये। निश्चय-पूर्वक यह कोई भी नहीं कह सकता कि कहानी सुनाने की प्रवृत्ति मानव में कबसे उत्पन्न हुई, और न यह ही निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि विश्व की सर्व-प्रथम कहानी कौन सी थी या किस प्रकार किसने किसको सुनाई थी। किन्तु यह निश्चय ही है कि जब आदिम-पुरुष को बोलने के लिये भाषा, अभिव्यक्ति के लिए भाव, घटनाओं को स्मरण रखने के लिए स्मरण-शक्ति तथा देखकर या सुनकर विचार करने के लिए विचार-शक्ति मिली, तभी से उसने कहानी या वार्ता कहने की बात को जन्म दिया और वही विश्व की प्रथम कहानी बन बरबस ही उसके होठों से फूट पड़ी। भले ही वे प्रारम्भिक कहानियाँ आधुनिक साहित्य को परखने की कसौटी पर न चढ़ती हों, किन्तु यह तो निश्चय व सत्य है कि ज्यों-ज्यों मानव का जीवन वैज्ञानिक एवम् कलात्मक होता गया त्यों-त्यों वह अपने जीवन की कहानियाँ अधिक सुन्दर ढंग से गढ़ने लगा।

एक समय था जब वह वृक्षों के पत्तों तथा उनकी छालों को खाता था, उन्हीं से अपने शरीर को ढाँकता था, एक समय आया जब वह पशु-पक्षियों का आखेट करने लगा। कुछ दिनों बाद उसने पशु-पक्षियों का वर्गीकरण किया और उनमें से कुछ का शिकार करने लगा और कुछ पक्षियों अथवा पशुओं से अपने अन्य कार्यों में सहयोग लेने लगा। धीरे-धीरे इसी प्रकार वह कुछ पशु-पक्षियों का स्वामी बन गया। आखेट करने में जो उसे परिश्रम या युक्तियाँ करनी पड़ती थी, वे ही उसकी कहानियाँ बन जाती थीं। मेरा विश्वास है कि विश्व की प्रथम लोक-कहानी निश्चय ही मनुष्य के उन प्रयत्नों की होगी

जो कि उसे सभ्य एवम् सुसंस्कृत बनने के लिए करने पड़े। उसमें निश्चय ही पशु-पक्षियों से मानव के युद्ध का ब्यौरा होगा। या हम यों कहलें कि पाश्चात्य विद्वानों द्वारा निर्देषित पशु-गाथाएं *Animal tales* ही विश्व में सर्व-प्रथम एक दूसरे को कही गई होंगी। किन्तु निश्चय-पूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि पशु-कहानियों का उद्गम पहिले हुआ या मानव की यात्रा-गाथा का, क्योंकि जब मानव एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने लगा तो भी उसने अपनी यात्रा की कठिनाइयों से भरी हुई गाथाओं को अपने अन्य साथियों को सुनाया, यह निश्चय है।

असंस्कृत-काल में जब मानव पूर्णतः अविवेकशील एवम् अनजान था, उसे यह समझ नहीं होगी कि आँधी क्यों चलती है, भूचाल क्यों आता है, पानी क्यों बरसता है या दिन-रात क्योंकर होते हैं। निचश्य ही वह इन घटनाओं का सम्बन्ध अपने जीवन में घटित घटनाओं से जोड़ता होगा।* निश्चय हैकि उसके मन की दुर्बलता उस पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालती हो और वह यह सोच बैठता हो कि उसने अमुक-अमुक पाप किया हैं, इसी कारण यह सब अनहोनी घटनाएं घटित हो रही हैं और वह उन पापों

---

* *"We must seek it in a remote past, when our ancestors were in a state of savagery, in which they did and thought such things as occur in folk-tales, usual and irrational as they may be. All races however civilised, have passed through a state of savagery upon their upward march, a stage in which they believed that beasts and things could talk and act, in which the medicine was powerfull and magic was common, in which society was organised on different lines from that of later ages..."*

—J. A. Mocculloch D. D. Folk-lore Dictionary Vol. Lx, Page 309.

के निवारण के लिए इन सभी को देवी, देवता या अपने पूज्य मानकर उनकी पूजा करना आरम्भ कर देता हो और बलि चढ़ाता हो जिससे ये देवी-देवता या अन्य बलशाली दैत्य जिनके लिये वह जो भी विचित्र कल्पनायें करले उस पर प्रसन्न हो जाएँ और भविष्य में उसका किसी प्रकार से भी अनिष्ट न कर सकें। यही नहीं, प्रकृति की ओर से जब कभी उस पर विशेष कृपा होती होगी और बसन्त खिल उठता होगा, वृक्षों पर नई कोपलें आती होंगी, वन-पर्वतों पर वनश्री की आभा उसे आनन्द-विभोर कर देती होगी, वृक्षों के फल-फूल उसे हर्ष-विभोर करते होंगे तो निश्चय ही उसका मन उसे गवाही देता होगा कि उसकी अमुक बलि के कारण और उसी के परिणाम—स्वरूप यह अद्वितीय परिवर्तन हुआ है। वह उसी सुख में गा उठता होगा, नाचता होगा, और अपने अन्य साथियों को कालान्तर में एक कथा गढ़ कर सुनाता होगा कि इस प्रकार उसे दैत्यों ने परेशान किया तो उसने बलि चढ़ाई, देवताओं को प्रसन्न किया और उसे वरदान में अमुक-अमुक वस्तुएँ प्रदान की गईं। ऐसी कहानियाँ † *Mythological tales.* या पौराणिक गाथाएँ कही जाती हैं।

पौराणिक गाथाएँ प्रायः प्रकृति के उद्गम से ही प्रारम्भ होती हैं क्योंकि ये गाथाएँ हमें प्रकृति के निर्माण के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की कहानियाँ बताती हैं। पृथ्वी का निर्माण कैसे हुआ, उस पर पहाड़, नदी, नाले वृक्ष, तालाब, पक्षी, पशु, पुरुष या स्त्री किस प्रकार और क्यों पैदा हुए—ये सभी बातें विभिन्न तर्कों द्वारा इन कहानियों में प्राप्त होती हैं। ऊपर हम बता चुके हैं कि मानव को वैज्ञानिक प्रगति के लिए जिन कष्टों का सामना करना पड़ा तथा उसे जो-जो कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं वे सभी इन कहानियों की कथावस्तु हैं। लिखित साहित्य में यही कहानियाँ सर्व-प्रथम हमारे सामने आती

† *A story, preserved as having actually occured in a previous age, explaining the cosmological and supernatural traditions of people, their Gods, heroes, cultured traits, religious beliefs etc.*

—Folk-lore Dictionary

हैं। ईसा से ढाई हज़ार वर्ष पूर्व ही ऋग्वेद की रचना हो चुकी थी। इसी महान् ग्रन्थ में विश्व की प्राचीनतम कहानियाँ या कहानियों का प्राचीन स्वरूप निहित है। विद्वानों का मत है कि यम-यमी संवाद या इन्द्र का वृत्त को मारने की गाथा, जो ऋग्वेद में है—ही विश्व की पुरातन लिखित कहानियाँ हैं एवम् कहानियों का प्राथमिक स्वरूप है। इसी प्रकार उपनिषदों में भी हमें कई कहानियाँ प्राप्त होती हैं। उपनिषदों के पश्चात् हमारे सामने महाभारत आता है जिसमें हमें स्पष्ट रूप से ही प्रतीत होता है कि उस समय कहानियों का बाहुल्य हो गया था। किन्तु कहानियों को लोक-प्रिय बनाने के लिए उन्हें कविताबद्ध लिखा जाता था जिससे लोग कंठस्थ कर सकें। बौद्ध-शिला लेखों में भी हमें कुछ कहानियाँ प्राप्त होती हैं। ३१६ ई० पू० एक यूनानी लेखक 'ह्यूमेरस' *Euhemerus* हुआ है उसने अपनी पुस्तक "*Sacred History*" में भी लिखा है कि पौराणिक कहानियाँ केवल ऐतिहासिक घटनाओं का ही विवेचन करती हैं। मानव-लोक में जो वीर पुरुष हुए, मानव ने उनका सम्बन्ध देवताओं से जोड़ दिया है; ये ही कहानियाँ कालान्तर में पौराणिक गाथायें कहलाईं। उक्त सिद्धांत को अंग्रेज़ी में 'ह्यूमर-वाद' *Euhemerym* भी कहते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि ये कहानियाँ हमारे आदि-पुरुषों ने अपनी सन्तानों को अलङ्कारिक उक्तियों सहित सुनाई थीं; किन्तु हम लोग उनके अलङ्कारों को भलीभांति न समझ पाए, इसी कारण इन्हें हम 'मिथ्यात्मक' कहानियां भी कह बैठते हैं।

कुछ भी हो, किन्तु यह निश्चित्, निर्विवाद एवम् ध्रुव-सत्य है कि विश्व में सर्व-प्रथम कहानी कहने-सुनने या लिखने की प्रथा का प्रादुर्भाव भारतवर्ष ही में हुआ। न केवल भारतीय विद्वान् ही इस सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं, वरन् विश्व की प्राचीनतम भाषाओं के विद्वान्, विचारक, इतिहासज्ञ, लेखक तथा आलोचक आदि भी इसी सिद्धांत की पुष्टि करते हैं कि भारतवर्ष कहानी के क्षेत्र में विश्व के समक्ष प्रमुख ही नहीं है, वरन्, प्राचीनतम कहानी-साहित्य का प्रणेता भी है।

पौराणिक गाथाओं के पश्चात् हमारे समक्ष नीति-कथाओं का युग आता है, जिन्हें पाश्चात्य-विद्वान् *Fables* कहते हैं। नीति-कथाओं में मनुष्य

को कहानी के ढङ्ग से शिक्षा दी जाती है। इन कहानियों के पात्र प्रायः जड़ होते हैं--कभी २ पशु इत्यादि भी इनके पात्र बन जाते हैं और वे अपने जीवन की घटित घटनाओं या वार्तालाप-द्वारा मनुष्य को विभिन्न प्रकार की शिक्षाएँ देते हैं। ये शिक्षा-कथायें प्रायः आख्यानों या लोकोक्तियों के समान प्रसिद्ध हो जाती हैं और शीघ्र ही आबाल-वृद्ध, नर-नारी के मुँह पर चढ़ जाती हैं। इन कहानियों का उद्देश्य केवल समय बिताने के लिए मनोरञ्जन-मात्र ही नहीं होता, वरन् मानव-मात्र को शिक्षा देना भी होता है। इन कहानियों के पात्र फल-फूल, वृक्ष-बल्लरी, पशु-पक्षी या नदी-पर्वत आदि मनुष्य के समान बोलते भी हैं और मनुष्य की कही गई बात को भलीभांति समझते भी हैं।

विद्वानों का मत है कि ये नीति-कथायें परम पुरातन हैं, एवम् किसी आदि पुरुष के साथ घटित घटनायें हैं, जिन्हें कि उसने रचनाबद्ध किया। इन का रचनाकार चाहे आदि–पुरुष स्वयम् ब्रह्मा ही क्यों न हो, किन्तु यह सत्य है कि इन्हें मानव-समाज ने इस प्रकार अपने में समा लिया है एवम् अपनी ही लौकिक वस्तु बना लिया है, मानो ये उनकी अपनी ही बपौती हों।

नीति-कहानियों का प्रारम्भ भी भारतवर्ष की ही पुण्य-भूमि से माना जाता है। महाभारत में ऐसी कुछ नीति-कहानियाँ प्राप्त भी होती हैं। बौद्ध साहित्य में भी नीति--कथाओं की कमी नहीं है। भारत के विद्वानों ने 'नीति' को लोक के लिए सरल करने के हेतु नीति–कहानियों की रचना की प्रतीत होती है। कुछ विद्वानों का मत है कि भारत से अरब तथा ईरान आदि देशों में होती हुई ये कहानियाँ यूनान पहुँचीं और वहाँ से यूरुप के विभिन्न देशों में प्रचलित हो गईं। नीति-कहानियों का यूरोपियन संकलन 'ईसप-फेबल्स' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें प्राप्त होने वाली अनेक कहानियों की पृष्ठभूमि भारत ही है, एवम् ये कहानियाँ भारत से ही यूरोपीय देशों में गई हैं, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है।

इस ग्रन्थ की कुछ कहानियाँ बौद्ध--जातक कथाओं में भी प्राप्त होती हैं। यह निश्चय ही है कि जातक-कथाएं 'ईसप-फेबल्स' से पर्याप्त पूर्व-प्रचलित हैं। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि 'ईसप' ने अपनी ही सूझ-बूझ से इन्हें रचा है। कुछ विद्वान ये भी कहते हैं कि 'ईसप' ने इन प्रचलित

हैं। ईसा से ढाई हज़ार वर्ष पूर्व ही ऋग्वेद की रचना हो चुकी थी। इसी महान् ग्रन्थ में विश्व की प्राचीनतम कहानियाँ या कहानियों का प्राचीन स्वरूप निहित है। विद्वानों का मत है कि यम-यमी संवाद या इन्द्र का वृत्त को मारने की गाथा, जो ऋग्वेद में है—ही विश्व की पुरातन लिखित कहानियाँ हैं एवम् कहानियों का प्राथमिक स्वरूप है। इसी प्रकार उपनिषदों में भी हमें कई कहानियाँ प्राप्त होती हैं। उपनिषदों के पश्चात् हमारे सामने महाभारत आता है जिसमें हमें स्पष्ट रूप से ही प्रतीत होता है कि उस समय कहानियों का बाहुल्य हो गया था। किन्तु कहानियों को लोक-प्रिय बनाने के लिए उन्हें कविताबद्ध लिखा जाता था जिससे लोग कंठस्थ कर सकें। बौद्ध-शिला लेखों में भी हमें कुछ कहानियाँ प्राप्त होती हैं। ३१६ ई० पू० एक यूनानी लेखक 'ह्यूमेरस' *Euhemerus* हुआ है उसने अपनी पुस्तक "*Sacred History*" में भी लिखा है कि पौराणिक कहानियाँ केवल ऐतिहासिक घटनाओं का ही विवेचन करती हैं। मानव-लोक में जो वीर पुरुष हुए, मानव ने उनका सम्बन्ध देवताओं से जोड़ दिया है; ये ही कहानियाँ कालान्तर में पौराणिक गाथायें कहलाईं। उक्त सिद्धांत को अंग्रेज़ी में 'ह्यूमर-वाद' *Euhemerym* भी कहते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि ये कहानियाँ हमारे आदि-पुरुषों ने अपनी सन्तानों को अलङ्कारिक उक्तियों सहित सुनाई थीं; किन्तु हम लोग उनके अलङ्कारों को भलीभांति न समझ पाए, इसी कारण इन्हें हम 'मिथ्यात्मक' कहानियां भी कह बैठते हैं।

कुछ भी हो, किन्तु यह निश्चित्, निर्विवाद एवम् ध्रुव-सत्य है कि विश्व में सर्व-प्रथम कहानी कहने-सुनने या लिखने की प्रथा का प्रादुर्भाव भारतवर्ष ही में हुआ। न केवल भारतीय विद्वान् ही इस सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं, वरन् विश्व की प्राचीनतम भाषाओं के विद्वान्, विचारक, इतिहासज्ञ, लेखक तथा आलोचक आदि भी इसी सिद्धांत की पुष्टि करते हैं कि भारतवर्ष कहानी के क्षेत्र में विश्व के समक्ष प्रमुख ही नहीं है, वरन्, प्राचीनतम कहानी-साहित्य का प्रणेता भी है।

पौराणिक गाथाओं के पश्चात् हमारे समक्ष नीति-कथाओं का युग आता है, जिन्हें पाश्चात्य-विद्वान् *Fables* कहते हैं। नीति-कथाओं में मनुष्य

को कहानी के ढङ्ग से शिक्षा दी जाती है। इन कहानियों के पात्र प्रायः जड़ होते हैं—कभी २ पशु इत्यादि भी इनके पात्र बन जाते हैं और वे अपने जीवन की घटित घटनाओं या वार्तालाप-द्वारा मनुष्य को विभिन्न प्रकार की शिक्षाएँ देते हैं। ये शिक्षा-कथायें प्रायः आख्यानों या लोकोक्तियों के समान प्रसिद्ध हो जाती हैं और शीघ्र ही आबाल-वृद्ध, नर-नारी के मुँह पर चढ़ जाती हैं। इन कहानियों का उद्देश्य केवल समय बिताने के लिए मनोरञ्जन-मात्र ही नहीं होता, वरन् मानव-मात्र को शिक्षा देना भी होता है। इन कहानियों के पात्र फल-फूल, वृक्ष-बल्लरी, पशु-पक्षी या नदी-पर्वत आदि मनुष्य के समान बोलते भी हैं और मनुष्य की कही गई बात को भलीभाति समझते भी हैं।

विद्वानों का मत है कि ये नीति-कथायें परम पुरातन हैं, एवम् किसी आदि पुरुष के साथ घटित घटनायें हैं, जिन्हें कि उसने रचनाबद्ध किया। इन का रचनाकार चाहे आदि–पुरुष स्वयम् ब्रह्मा ही क्यों न हो, किन्तु यह सत्य है कि इन्हें मानव-समाज ने इस प्रकार अपने में समा लिया है एवम् अपनी ही लौकिक वस्तु बना लिया है, मानो ये उनकी अपनी ही बपौती हों।

नीति-कहानियों का प्रारम्भ भी भारतवर्ष की ही पुण्य-भूमि से माना जाता है। महाभारत में ऐसी कुछ नीति-कहानियाँ प्राप्त भी होती हैं। बौद्ध साहित्य में भी नीति--कथाओं की कमी नहीं है। भारत के विद्वानों ने 'नीति' को लोक के लिए सरल करने के हेतु नीति–कहानियों की रचना की प्रतीत होती है। कुछ विद्वानों का मत है कि भारत से अरब तथा ईरान आदि देशों में होती हुई ये कहानियाँ यूनान पहुँचीं और वहाँ से यूरुप के विभिन्न देशों में प्रचलित हो गईं। नीति-कहानियों का यूरोपियन संकलन 'ईसप-फेबल्स' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें प्राप्त होने वाली अनेक कहानियों की पृष्ठभूमि भारत ही है, एवम् ये कहानियाँ भारत से ही यूरोपीय देशों में गई हैं, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है।

इस ग्रन्थ की कुछ कहानियाँ बौद्ध--जातक कथाओं में भी प्राप्त होती हैं। यह निश्चय ही है कि जातक-कथाएं 'ईसप-फेबल्स' से पर्याप्त पूर्व-प्रचलित हैं। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि 'ईसप' ने अपनी ही सूझ-बूझ से इन्हें रचा है। कुछ विद्वान ये भी कहते हैं कि 'ईसप' ने इन प्रचलित

कहानियों का संग्रह किया तथा लिपि-बद्ध किया। 'ईसप' ईसा से एक शताब्दी-पूर्व हुआ माना जाता है। 'पंचतंत्र' वह प्रथम भारतीय-पुस्तक है जो आद्यो-पान्त नीति--कथाओं से परिपूर्ण है। इसका रचना--काल ईसा से लगभग १००–१५० वर्ष पूर्व माना जाता है। विश्व की लगभग सभी भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है।

नीति–कहानियों के पश्चात् हमारे सामने आख्यानों के स्वरूप वाली कुछ ऐतिहासिक कहानियाँ आती हैं। इन कहानियों के पात्र प्रायः ऐतिहासिक प्रतीत होते हैं। हमें ऐसा लगता है कि अमुक व्यक्ति (जो कि ऐतिहासिक रूप से प्रसिद्ध होता है) के जीवन की अमुक घटना यद्यपि इतिहास में वर्णित नहीं है, तथापि यह उसके साथ घटित हुई है जिसे इतिहाकार नहीं जान पाये। कुछ विद्वानों का मत है कि इन कहानियों के पात्रों के नाम ऐतिहासिक इस कारण रखे गये हैं जिससे ये कहानियाँ प्रभावात्मक प्रतीत हों, वास्तव में वे घटनाएँ काल्पनिक ही होती हैं। निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता कि सत्य क्या है, किन्तु उक्त तर्क न्यायसङ्गत अवश्य प्रतीत होता है। मालव-सम्राट विक्रमादित्य से सम्बन्धित ऐसी सहस्रों कहानियाँ आज भी हमारे वृद्ध–परिवारी रोज रात को सुनाते हैं। केवल विक्रम, गोपीचन्द भर्तृहरि, राजा रसालू, गोरख, मछिन्दर, पूरण तथा ऐसे ही विभिन्न महापुरुषों का नाम इन कहानियों के साथ जोड़ दिया जाता है। पञ्जाब के हीर-राँझा, ससी-पुन्नू, मिरज़ा-साहिबां, बुग्गा-बसन्ती, परतापी–करपालसिंह तथा ऐसे ही विभिन्न कथानकों के साथ विभिन्न कथायें बद्ध पाते हैं।

विभिन्न भक्त कवियों के लिए भी ऐसी ही विभिन्न गाथाएँ प्रचलित हैं। शाप देकर मार देना, पत्थर बना देना और मन्त्र पढ़ कर पानी पिला देने से किसी व्यक्ति को अमर कर देना इन कहानियों के लिए साधारण-सी बात है। कहा जाता है कि गुरु नानक जब मक्का गए तो उन्होंने मक्का की प्रसिद्ध मस्जिद की ओर टांगें फैलालीं। लोगों ने उन्हें कहा कि वे टांगें हटायें किन्तु वे न माने। जब लोगों ने स्वयम् उनकी टांगें हटा दीं तो मक्का की प्रसिद्ध मस्जिद भी उन की टाँगों के साथ ही सरक गई। इसी प्रकार की कहानियाँ Legends या आख्यानात्मक कहलाती हैं। ऐसी ही अनेक कहानियाँ जनता में विभिन्न

व्यक्तियों के नाम के साथ जोड़ कर सुनाई जाती हैं जिन पर कभी-कभी इस कारण विश्वास करना पड़ता है कि उनके पात्र ऐतिहासिक महापुरुष होते हैं।

इस प्रकार की कहानियों के विभिन्न संग्रह भारतीय एवम् योरोपीय भाषाओं में प्राप्त होते हैं। लोक-कहानियों के अन्य भेदों के समान इस प्रकार की कहानियों का प्रसार भी भारत में ही हुआ है। सिंहासन-बत्तीसी, बैताल-पचीसी जैसे विभिन्न ग्रंथ इन्हीं कहानियों से ओत-प्रोत हैं।

आख्यानात्मक कहानियों (Legends) के पश्चात् हमारे सामने बालकों में अधिकाधिक प्रचलित परी-कथायें (Fairy tales) आती हैं—इन कहानियों में प्रायः परियों का समावेश होता है। ये परियाँ उड़ती हैं और एक ही क्षण में स्वर्ग और नरक का भ्रमण भी करा सकती हैं। इनमें एक ऐसी शक्ति का सञ्चार माना जाता है जो साधारण कोटि के देवी या देवताओं में भी नहीं होता। इनमें शक्ति होती है कि वे किसी भी राक्षस, देवी या देवता को प्रसन्न कर लें। इनके पङ्ख हमें कल्पना के घोड़ों की सवारी क्षण-मात्र में करा लेते हैं और पलक मारते ही न केवल भौतिक-विश्व वरन् सभी लोकों का भ्रमण कर लेते हैं। चन्द्रलोक तथा सूर्यलोक इन परियों के लिए साधारण-सी बातें हैं।

आवश्यक नहीं है कि इन कहानियों की नायिकाएँ परियाँ ही हों। कभी २ साधारण पात्रों के साथ भी परियों का सम्बन्ध जोड़ दिया जाता है, और ऐसी कहानियाँ भी परी-गाथाओं की श्रेणी में ही आबद्ध की जाती हैं। विद्वानों का मत है कि ये परियाँ वास्तव में मनुष्य की आत्मा का प्रतिनिधित्व करती हैं §। परी-कथाओं में आवश्यक नहीं है कि पात्रों का या स्थानों का सही नाम या पता-ठिकाना बताया जाय, वरन् प्रायः कोई भी नाम, चाहे वह मानव-

§ *'The fairy tales are inventions of the directly utilzed, immediately conceived experience of the primitive soul and the general human tendency to wish fulfilment, which we find again, and modern fiction only somewhat complicated and garbed in different forms."*

—Folk-lore Dictionary

मात्र का हो या नगर आदि का, बता देने से ही काम चल जाता है। ऐसी कहानियों में कभी-कभी विशेष वाक्-रचनाओं का भी महत्त्व होता है जिन्हें कि कहानीकार को मुखाग्र कर लेना होता है। यदि वह उस विशेष वाक्य रचना को भूल जाय तो उस कहानी का आनन्द ही समाप्त हो जाता है। इन कहानियों का आदि-स्थान भी भारत ही माना जाता है। इस प्रकार की कहानियों का प्राचीनतम ग्रन्थ कथा-सरित-सागर कहा जाता है। विद्वानों का मत है कि परी-कहानियों की उत्पत्ति भारत से ही हुई और धीरे-धीरे वे पश्चिमी देशों में पहुँच गईं। ¶

Europe was thus undoubtedly indebted to India for Mediaeval Literature of fairy tales and fables."—Dr. Macdonell in "History of Sanskrit Literature."

भारत में आने वाले व्यापारी नाविक, राजदूत तथा विभिन्न यात्रियों को ही यह श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने भारत की इन कथाओं को विभिन्न देशों में पहुँचाया। ठंडी रात्रि के लम्बे प्रहर में जब लोग अपने देशों में पहुँचते थे तो वे भारत की ही कहानियों को सजीव कर देते थे और अपने देश-वासियों के हृदयों में भारत के लिए एक अनोखी कल्पना सजीव कर देते थे। सिकन्दर के आक्रमण के समय विभिन्न देशों के सैनिक उसके साथ थे। उन सैनिकों से युद्ध में यहाँ के विभिन्न लोगों का मेल-जोल हुआ। दोनों देशों के सैनिक रात्रि में या शांतिकाल में अपने मनोरंजन के लिये इन लोक-कथाओं का ही उपयोग करते थे। निश्चय ही इन लोक--कथाओं का एक बड़ा भाग इन सैनिकों की जिह्वाओं पर खेलता हुआ यूनान पहुँचा और वहाँ से यूरोप के

¶ *"Many of the stories, especially the fairy-tales of Europe originated in India and migrated west-ward from there"—*

—Standard Folk-lore Dictionary.

विभिन्न देशों में फैल गया। * ऊपर हम बता चुके हैं कि कहानी लिखने की या कहानी सुनने की परिपाटी विश्व ने भारत से ही ग्रहण की है। अब हमें देखना है कि भारत के कौन २ से भाग में इन कहानियों का जन्म हुआ। हम ऋग्वेद को विश्व का प्राचीन ग्रन्थ मानते हैं। हमने ऊपर देखा कि ऋग्वेद का यम-यमी संवाद तथा इन्द्र का वृत्त को मारने का वर्णन इसी आदि ग्रन्थ में है, जिसकी रचना पंजाब या सप्त--सिंधु में हुई। अतएव निश्चय है कि पञ्जाब-भूमि पर ही लोक--कथाओं की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार हम देखते हैं कि सिकन्दर का आक्रमण भी पञ्जाब में ही हुआ, जहाँ से इसके सैनिक इन गाथाओं को अपने हृदय में सँजो कर ले गये। इससे भी यह निश्चय होता है कि पञ्जाब ही इन लोक-कथाओं का उद्गम--स्थल है।

राय साहब दिनेशचन्द्र सेन ने अपनी पुस्तक 'Literature of Bengal' में पृष्ठ ६ पर फिरदौसी का संकेत देकर लिखा है कि कन्नौज के राजा सथाल ने फारस के सम्राट् 'ब्रह्मगर' की प्रार्थना पर ४२० ईसवी में उत्तरी भारत के विभिन्न प्रदेशों से १०,००० वंशी बजाने वाले नर--नारी कलाकारों को फारस भेजा था ये लोग संपूर्ण यूरोप में फैल गये थे। श्री सेन का मत है कि इन्हीं लोगों ने भारतीय कहानियों का प्रचार यूरोप के विभिन्न भागों में किया। भारत से यूरोप में कहानियों की यात्रा की चाहे जो भी कहानी हो, किन्तु यह तो नितांत सत्य है कि इन लोक-कथाओं का उद्गम-स्थल पञ्जाब ही है, अन्य कोई नहीं। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि जिस वातावरण में भारतीय रहे, लगभग वैसा ही वातावरण अन्य देश-वासियों को भी मिला जिसके कारण उनकी कहानियों में भारतीय-वातावरण आ गया, एवम् कहा-

---

* *Soldiers of Alexender, who had settled in the east, wandering merchants of many nations and cline crusading knights and hermits, who had mixed with eastern folk brought the stories, from east to west,"-- 'A Collection of Eastern stories and legends.,*

नियाँ समान प्रतीत होने लगीं † किन्तु यह तर्क कुछ युक्ति-सङ्गत एवं तर्क-युक्त प्रतीत नहीं होता। इसी कारण अधिकतर विद्वान् इससे सहमत भी नहीं हैं। उनका तो यही निश्चित मत है कि लोक-कथाओं का उद्गम स्थल भारत ही है।

पञ्जाब में यह ही नहीं और भी अनेक प्रकार की कहानियाँ प्राप्त होती हैं जिनमें विशेष हैं—हास्यमय-शिक्षात्मक कहानियाँ, जिनमें कहानी के पात्रों को अविवेकशील बताया जाकर उनके अविवेक पर व्यंग किया जाता है और उचित शिक्षा दी जाती है। ऐसी कहानियाँ बालकों को सहज हास्य में ही शिक्षा का पाठ पढ़ा देती हैं। प्रायः हमारे परिवार के ज्येष्ठ सदस्य बच्चों को ऐसी ही कहानियाँ सुनाते हैं, जिनसे कि उनका मनोरंजन भी हो तथा शिक्षा भी प्राप्त हो।

काव्य-प्रधान कहानियों की भी पञ्जाब में न्यूनता नहीं है। इन कहानियों में नपे--तुले शब्दों में ही कहानी की कथा-वस्तु, संपूर्ण वातावरण तथा शिक्षा आदि का समावेश हो जाता है। कहानी के काव्य--प्रधान होने के कारण बालक इन्हें याद भी कर लेते हैं और खेलते--कूदते एक दूसरे को संक्षेप में कहानी सुना भी देते हैं। ऐसी कहानियों की परिपाटी निश्चय ही बहुत पुरानी प्रतीत होती है, क्योंकि पंजाब की पुरातन कहानियाँ काव्य-बद्ध ही थी।

कुछ पञ्जाबी लोक--कथाओं के उदाहरण देखिये—

पानी बरसे या नहीं।

(एक नीति कथा)

"एक कुम्हार था। उसकी दो लड़कियां थीं। जब वे घर के दरवाज़े से लगने लगीं, तो कुम्हार की पत्नी कुम्हार से बोली--अब हमारी कन्याएं

† "Very similar stories may originate independently in different parts of the world since man often confrosted by similar condition of environments."—Mythology and legends. Vol. I. P. 313, 'Standard dictionary of Folk-lore.'

आसमान छूने लगी हैं। इनका विवाह करना आवश्यक है, कहीं कोई तारा न तोड़ लायें—हमारे पुरखे रूठ जायेंगे।

कुम्हार लड़कों की खोज में निकला। उसे शीघ्र ही दो लड़के मिल गये। एक खेती का कार्य करता था और दूसरा अपने घर का पुराना धन्धा। दोनों के साथ दोनों कन्याओं का विवाह कर दिया गया। वे लोग अपने २ घर चले गये।

समय बीतता गया। सरदियां सरक गईं। सूरज आसमान में ही रात आने तक रहने लगा। कुम्हारिन ने अपने पति से कहा कि वह कन्याओं का कुशल समाचार मालूम कर आये।

कुम्हार पहिले किसान के घर गया। जाकर उनके कुशल समाचार पूछे। कन्या ने कहा वैसे तो सब ठीक है—भगवान की कृपा है, अब की बार अभी तक पानी नहीं बरसा—अब पानी बरसे तो ठीक है, जिससे अनाज बोया जा सके। खेतों में हल चलें और ज़मीन की मिट्टी सोना उगले।

इस के बाद कुम्हार अपनी दूसरी कन्या के यहाँ गया। उससे कुशल समाचार पूछे। उसने कहा—अब तक तो भगवान् की खैर है—पानी नहीं बरसा। हमारा आवा नहीं बिगड़ा। अभी और पानी न आये तो ठीक है। किन्तु, यदि इस बार पानी ना ही आये तो ठीक हो। हमारा आवा और हमारे चाक की मिट्टी सोना उगले।

कुम्हार कुशलता जान वापिस आ रहा था और सोच रहा था दुनिया कैसी है—कोई कुछ चाहता है और कोई कुछ। पानी बरसे तो बुरा—ना बरसे तो भी बुरा।"

उपरोक्त लोक-कथा नीति कहानियों में सम्मिलित की जा सकती है। लोग प्रत्येक दशा में दोष ही देने के आदी होते हैं। कन्या के युवा होने के लिये—वह दरवाज़े से लगने लगी है तथा वह आसमान छू रही है कितनी सुन्दर लोक-उपमाएं हैं। इसके साथ ही वह कोई युवावस्था में भूल न कर बैठे के लिये—कहीं कोई तारा न तोड़ले—कितना सुन्दर संकेत है।

अर्जुन हार गया

(एक नीति कथा)

"एक बार कृष्ण और अर्जुन में होड़ लगी। कृष्ण ने कहा भारत में अभी भी कई नीतिवान धर्मात्मा पुरुष हैं। अर्जुन बोले— यह असत्य है— कलियुग में यह सम्भव नहीं है। भगवान् कृष्ण और अर्जुन दोनों भिन्न वेष बनाकर कजली वन में गये और रहने लगे। वहां उन्हें ज्ञात हुआ कि एक लड़की का विवाह हो चुका था—गौना नहीं हुआ था यद्यपि विवाह हुए को सात वर्ष हो चुके थे।

एक दिन लड़की की माँ ने कन्या को जङ्गल से पांडू (पीली-मिट्टी) लाने के लिए कहा। कन्या जङ्गल में गई, उसने मिट्टी की एक बड़ी टोकरी भरली। वह उस अकेली से न उठी। उसने एक राही से कहा—'भाई, मेरी यह टोकरी तो उठवादो।' राहगीर ने टोकरी उठवादी। कन्या को मालूम नहीं था कि वह राही ही उसका पति है। न पति ही जानता था कि वह उसकी पत्नी है। कन्या की माँ ने लड़की का मुकलावा टोर दिया (गौना दे दिया) जिसमें दो गाड़ियाँ भर कर त्योर-गहने (वस्त्राभूषण) तथा अन्य गृहस्थी का सामान दिया। वे अपने घर पहुँचे।

जब पति ने पत्नी का मुँह देखा वह पहिचान गया कि यह वही लड़की है जिसने उसे भाई कहा था तथा 'पण्ड' उठवाई थी। उसने उससे स्त्रीवत्—व्यवहार नहीं किया। वे भाई बहिन के समान रहने लग गये।

एक दिन उसकी पत्नी ने उसे कहा—'तुम्हें मेरे कारण कष्ट हुआ-तुम अभी भी कुआंरपन का उपभोग कर रहे हो—यदि तुम कहो तो मैं बहिन का रिश्ता ले आऊं ?'

उसके पति ने काफी हील-हुज्जत की किन्तु वह न मानी और रिश्ता ले आई। विवाह भी हो गया। जब दूसरी कन्या-उसकी बहिन घर आ गई, तब उसने उससे भी पत्नीवत् व्यवहार नहीं किया और बोला-'यह भी मेरी बहिन ही हुई। क्योंकि उस दिन तुमने कहा था--बहिन का रिश्ता ले आऊं। अतएव तुम दोनों मेरी बहिनें हुईं। वे लोग भाई बहिन के समान रहने लगे।'

अर्जुन को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और कृष्ण से हार माननी पड़ी ।''

उक्त कहानी यद्यपि नीति–कथा है तथापि यह पौराणिक मानी जानी चाहिए क्योंकि इसमें पौराणिक महापुरुषों का उल्लेख है ।

——:०:×:०:——

मोक्ष का मार्ग

(एक शिक्षात्मक-कथा या पशु--गाथा)

"एक राजा था । उसने भागवत-पुराण की कथा सुनने के लिए एक पंडित को बुलाया । पंडित ने दूसरे दिन से कथा सुनाने का वचन राजा को दे दिया । दूसरे दिन जब पंडित राजा के घर जा रहा था, उसे रास्ते में एक सांप मिला । सांप ने रास्ता रोक कर पंडित से कहा—'पहले भागवत मुझे सुनाइये । सांप को देखकर पंडित डर गया, किन्तु जब सांप ने पंडित को दो महरें दीं तो पंडित ने खुशी २ कथा सुना दी । वह प्रतिदिन ही पहिले सांप को कथा सुनाता, फिर राजा को ।

कथा समाप्त हो गई, भोग डालने का दिन आया । साँप ने कहा पहिले राजा के यहां भोग डाल दो । पंडित ने राजा के यहां भोग डाला । उसे एक हजार रुपये पुरस्कार स्वरूप मिले । अब पंडित सांप के पास गया जाकर भोग डाला । सांप ने उसे अपनी बांबी में से धन का सम्पूर्ण खजाना दें दिया किन्तु इस वचन पर कि वह उस सांप को एक टोकरे में रख कर हिमालय में छोड़ आयेगा । पंडित मान गया । उसने धन ले लिया ; सांप को एक टोकरे में रख कर रवाना हो गया ।

हिमालय से कुछ दस कदम की दूरी पर ही पंडित ने सांप से कहा कि आगे वह स्वयं चला जावे । सांप ने पंडित को एक और खजाने का पता दे दिया और कहा कि वह उसे हिमालय के मध्य में छोड़े । पंडित मान गया । जब वे दोनों हिमालय के मध्य में पहुँचे और पंडित सांप को हिमालय में छोड़ने लगा तब सांप हँस पड़ा । पंडित ने उसकी हँसी का कारण पूछा । सांप ने उसे काशी के एक पंडित का नाम बता दिया और कहा—इसका

उत्तर वही देगा। पंडित ने दोनों धन-कोषों को गाड़ियों द्वारा घर में भरा और स्वयं काशी गया।

उस पंडित ने कहा–एक बार चार पंडित तथा एक कुत्ता चारों धाम की यात्रा करने गये। यात्रा करने के पश्चात् सभी हिमालय भी गये। चारों पंडित तो हिमालय में चले गये किन्तु कुत्ता नहीं गया। चारों पंडितों को तो यात्रा करने एवं हिमालय में चले जाने के कारण मोक्ष मिल गया। किन्तु वह कुत्ता मैं ही हूँ जिसे जीवन के आवागमन से छुटकारा नहीं मिला। यदि मैं भी हिमालय में चला जाता तो मुझे मोक्ष मिल जाता। तुमने भी भूल की है कि तुमने सांप को तो मोक्ष दिला दिया किन्तु स्वयं माया-जाल में फंस कर दुनिया के कष्ट सहने के लिये रह गये"

उपर्युक्त लोक-कथा पक्षी-कथाओं या पशु-कथाओं में भी आ सकती है तथा इसे शिक्षात्मक कथा भी माना जा सकता है। एक और लोक-कथा देखिये जो काव्य-बद्ध भी है तथा उसमें कुछ हास्य का भी पुट है—

बुड्ढी की चार बहुएँ

(हास्य एवं काव्य-बद्ध कथा)

"एक बुढ़िया की चार बहुएँ थीं। वह बहुओं को बहुत कष्ट देती—चर्खा कताती, बर्तन मंजवाती, दूध दुहाती, दही बनवाती और लस्सी-मक्खन भी, पर उन्हें कुछ न देती। गाय, ढोर सब उन्हें ही सम्भालने पड़ते। बहुएँ तंग आ चुकी थीं।

एक दिन चारों बहुओं ने एका किया और वे 'अक्कां-ढक्कांच' जा के लुक गइयां अर्थात् ऐसे स्थान पर जाकर छिप गईं जहाँ लोग फरागत के लिए जाते थे, आस-पास कई आंकड़े व ढाक के पौधे खड़े थे। वहीं उनका ससुर जंगल-पानी होने के लिये गया। वे आपस में बोलीं—

नीं भैण अक्क चढ़ी
हाँ भैण ढक्क चढ़ी
नीं भैण उप्पते
हाँ भैण चुप्पते

चर्खा भी नहीं चुक्कदे
थेह भी नहीं थप्पदे
मार नपुत्ते दारे नूँ
थेही ना देवे बारे नूँ

—ओ बहिन अकौए पर चढ़ी हुई।
—हाँ बहिन ढाक पर चढ़ी हुई।
—ओ बहिन उप्पवाली !
—हाँ बहिन चुप साधे रहने वाली।
—ये लोग चरखा भी नहीं उठाते।
—थेह भी कभी नहीं करते अर्थात न कभी खीर बनाते हैं, न कभी दूध, दही, मक्खन खाने को देते हैं– मनहूस हैं।
—इस नपुत्ते मनहूस व्यक्ति को मारदे।
—जो वार-त्यौहार को भी खीर, मक्खन, दूध, दही कुछ नहीं देता।

बूढ़ा ससुर समझा यहाँ चुड़ेलें हैं जो बोल रही हैं। वे उसके तथा उसकी पत्नी अर्थात बहुओं की सास के व्यवहार से अप्रसन्न हैं। वह घर आकर बहुओं की सास से बोला चर्खा उठवा देना चाहिये, तथा बहुओं को खीर-मालपुए इत्यादि बनाकर खिलाओ, दूध पिलाओ, मक्खन खिलाओ--इन्हें कष्ट न दो अन्यथा देवी-देवता रुष्ट हो जाएँगे।

उस दिन से उन्हें आराम मिलने लगा--थेही—दूध, मक्खन, खीर भी उनके लिए मुक्त होगई, अब वे आपस में कहा करतीं—

क्यों कत्तां एक्कड़ एक्कड़ियाँ
क्यों कत्ताँ दूज भरावाँ दी
क्यों कत्तां तीज तीयां दी
क्यों कत्तां चौथ करवे दी
क्यों कत्तां पंचमी रुत्तां दी
क्यों कत्तां छठें नारायण दी
क्यों कत्तां सत्तें सतियाँ दी
क्यों कत्तां अट्ठें देवी दी

क्यों कत्तां नौमी गूग्गे दी
क्यों कत्तां दसमी दसहरे दी
क्यों कत्तां काश्ती बर्तन दी
क्यों कत्तां द्वादसी उपार्या दी
क्यों कत्तां त्रोदशी न्हाउण दी
इक चौदशी है कत्तां-कत्तां नहीं ना सही !

उक्त गीत-कथा में पखवाड़े के चौदह दिन गिनवाये गये हैं तथा प्रत्येक दिन किसी विशेष महत्व या देवी-देवता से या किसी त्यौहार से सम्बन्धित बताया जाकर कहा गया है कि मैं क्यों कातूं और कैसे कातूं ?

उपर्युक्त लोक-कथायें केवल उदाहरणार्थ दी गई हैं। बड़ी एवं लम्बी लोक-कथायें देना उचित प्रतीत नहीं होता। पाठकों ने देखा होगा कि यदि इन्हीं कहानियों को विस्तार दिया जाय तो ये सभी उन गुणों से परिपूर्ण हो सकती हैं जिनकी साहित्य को आवश्यकता है।

——:०×०:——

"औघड़" पंजाबी के नाथपंथी लोक-गीत

भारत का ऐसा कोई नगर न होगा जहाँ हम नाथों को न देख पायें। ये कन-फटे नाथ जोगी हमें लगभग आठवीं, नवीं या दसवीं शताब्दी के आस-पास प्राप्त होते हैं। इन्हीं नाथ–जोगियों की रचनाओं को हम हिन्दी तथा पञ्जाबी मानते हैं। ये जोगी या नाथ लोग भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में उक्त समय में भ्रमण करते रहे हैं। पञ्जाब, राजस्थान, काश्मीर, मालवा (मध्य-भारत) तथा गुजरात इनके केन्द्रीय स्थान माने गये हैं। डाँ० राधाकृष्णन् के मतानुसार जोग मत का जन्म इस काल से वर्षों पूर्व उपनिषदों की रचना के काल में ही हो चुका था।†

सिद्ध योगियों से सम्बन्ध

कान फाड़कर उसमें कुंडल लटकाये, गेरुआ धारण कर उन पर काली ऊन लपेटे तथा घुंघरू लटकाये—अपने घुटनों के परिचालन से उसे बजाते हुए कहीं न ठहरने वाले ये नाथ निश्चय ही अपने में एक बड़ा रहस्य छिपाये हुए हैं। बच्चे इन जोगियों को 'भैरव नाथ' कहते पाये जाते हैं। ये लोग 'भैरव' के उपासक हैं। "ये लोग अपने को नाथ–पंथी कहते हैं और कुछ अपने को जोगी बताते हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध वज्रयान शाखा

---

† "Indian Philosophy" by Dr. Radha Krishnan, Vol. I, Page 141–142.

के सिद्ध योगियों से है। यद्यपि अभी बंगाल में 'योगी' नाम की एक जाति है, जिसका अस्तित्व प्रायः समाप्त हो रहा है। वह अपने को 'जोगी' कहना पसन्द करती है, योगी नहीं। किसी समय बिहार और युक्त प्रान्त में भी यह जाति विद्यमान थी। कबीर और दादू इसी जाति के बताये जाते हैं।"‡

काश्मीर की तलहटियों में भी जोगी नामक एक जाति है; जिसका सम्बन्ध सम्भवतः बंगाली या युक्त-प्रांतीय 'जोगी' घराने से हो यदि इन जोगियों का सम्बन्ध वज्रयान शाखा के सिद्ध जोगियों से है तो काश्मीर के 'जोगी' पंडित इन सिद्धों के अधिक समीप प्रतीत होते हैं। काश्मीर में आज भी छप्पन नामों के भैरवों की प्रतिष्ठा की जाती है। श्रीनगर में कई प्रकार के भैरव मन्दिर पाये जाते हैं—शीतल नाथ, आनन्दी नाथ, वैताल नाथ, छत्ताबल नाथ इत्यादि। श्रीनगर से लगभग बीस मील दूर सुम्बल नाथ भैरव को हिन्दू तथा मुसलमान समान रूप से मानते हैं। श्रीनगर के ही एक अहलमर नामक मुहल्ले में एक जोगी घराना रहता है जो कि लगभग १००० वर्ष पूर्व का माना जाता है।

योग-धारा की उत्पत्ति

बौद्ध मत का जब भारतवर्ष में ह्रास होना प्रारंभ हुआ तो बौद्ध-भिक्षुओं को भारत के विभिन्न भागों में बिखर जाने के लिये विवश होना पड़ा क्योंकि अब उन्हें किसी भी राज्य का आश्रय पाना दुस्तर हो गया था। जब ब्राह्मणों का प्रभाव भारतीय जनपदों पर बढ़ने लगा तो बौद्धों की महायान शाखा ने सिद्धों का रूप धारण कर जनता में पैठना प्रारम्भ कर दिया। सिद्ध शब्द का शाब्दिक अर्थ भी साधना करना है, वे लोग अपनी साधना द्वारा तंत्र, मंत्र जादू-टोना या योग आदि की साधना करने लगे जिससे जनता पर इन लोगों का विशेष प्रभाव पड़ा।' 'योग' शब्द पंजाबी में 'जोग' बन गया। 'जोग' का शाब्दिक अर्थ 'जोड़ना' है। जो व्यक्ति आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ने का यत्न करता है वह 'जोगी' कहलाता है।

---

‡ "मालवी लोक-गीत"—श्याम परमार एम० ए० एल० टी० पृष्ठ ३०।

पंडित हजारी प्रसाद जी द्विवेदी के मतानुसार नाथ-पन्थी जोगियों का प्रारंभ ईसा की नवीं तथा दसवीं शताब्दी में हुआ था। ये लोग जाति-पांति के बन्धनों से ही परे नहीं थे वरन् परिवार के बन्धनों से भी दूर रहते थे। सांसारिक नियमों से परे होने के उपरान्त भी ये लोग सांसारिक लोक-जीवन में पैठ चुके थे। समाज एवम् लोक-जीवन के इतने समीप होने का एक कारण यह भी था कि ये लोग अशिक्षित, शास्त्रों से अनभिज्ञ तथा सरस मनोवृत्ति के थे। लोक जीवन उनका कार्य-क्षेत्र था तथा लोक-गीतादि द्वारा उन्होंने अपना स्थान तत्कालीन समाज में गहरा बना लिया था।

नाथों का साहित्य

इन पर बौद्ध तथा शैव-मत का समान प्रभाव प्रतीत होता है। सिद्धों का प्रभाव अधिकतर दक्षिणी भारत पर रहा। इसी कारण उनका साहित्य अधिकतर मागधी तथा अर्ध-मागधी प्राकृत में मिलता है नाथों का तथा जोगियों का प्रभाव नैपाल की तलाई से लेकर काश्मीर, पञ्जाब, राजस्थान, मालवा, मध्य-भारत तथा गुजरात तक रहा, इस कारण इनका साहित्य शौरसैनी तथा पैशाची प्राकृत से प्रभावित प्रतीत होता है।

चरपट नाथ (६२० ई० के लगभग) का एक पद देखिए जिसमें वे तत्कालीन साधुओं का विनोद करते हैं—

"इक लाल पटा, इक सेत षटा,
इक तिलक—जनेऊ—लमक जटा
जब नहिं उलटी प्राण घटा,
तब 'चरपट' भूले सब पेट नटा।"

इसी प्रकार गोरख भी कहते हैं—

"जो घर त्याग कहावे जोगी
घरवासी को कहे जो भोगी
अन्त भाव न परखे जोई,
गोरख बोले मूरख सोई

पढ़ ग्रन्थे जो ज्ञान बखाने
पवन—–साधु परमारथ माने
परम—–तत्त का होये न मरमी
कहे गोरख सो महा अधरमी

यद्यपि नाथ-पन्थ का सम्बन्ध आध्यात्म से ही था, तथापि उसने तत्कालीन लोक-समाज में बहुत परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया। गोरख ने 'स्त्री' के विरोध में बहुत लिखा है। वह 'स्त्री' को 'सिंहनी' मानते हैं। इस मत ने व्यभिचार को समाप्त कर कई राजाओं को अपना शिष्य बनवाया। उज्जैन का प्रसिद्ध राजा गोपी चन्द जो बाद में भर्तृहरि के नाम से प्रसिद्ध हुआ, नाथ-पन्थी था।

नाथमत ने वर्ण भेद को भी मिटाया। यही कारण था कि कई मुसलमान भी जोगी बन गये। रतन नाथ को कुछ लोग जन्म से मुसलमान मानते हैं, इसी कारण उन्हें हाजी रतन, बाबा रतन या पीर रतननाथ भी कहा जाता है। आपने काबुल के बादशाह के हृदय में नाथ-पन्थ के प्रति आदर स्फुटित किया था तथा उससे काबुल एवम् जलालाबाद में शिव मन्दिर बनवाया एवम् उसके लिए जागीरें लगवाईं।

डॉ० मोहन सिंह के मतानुसार नाथ जोगियों की बोली पञ्जाबी थी जिस पर हिन्दवी का प्रभाव था। पञ्जाब में ऐसे कई स्थान हैं जो इन नाथों के नाम से प्रसिद्ध हैं। झेलम में गोरख का टीला, पेशावर में गोरख की हटड़ी ज्वाला मुखी में गोरख की 'हांडी', रतन नाथ का डेरा, अबोहर में चौरंगी नाथ की धूनी तथा इन्हीं का या पूरण का स्याल कोट में कुंआ आज तक प्रसिद्ध हैं।

पञ्जाब के लोक-जीवन में ये नाथ तथा जोगी इतने पैठ चुके थे कि गुरू ग्रंथ साहिब में कई स्थानों पर इनकी चर्चा है। रामकली महल्ला १, आसा राग, जपुजी साहब में इनकी स्थान २ पर चर्चा है। सिक्ख गुरू इन्हें अवधूत, औधू या औधो नाम से स्मरण करते हैं। सिद्ध-गोष्ट तो सम्पूर्ण ही इन नाथों तथा सिद्धों के लिये गाई गई जान पड़ती है।

नाथ पन्थी जोगियों की साहित्य रचना का काल महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के मत नुसार ८०६ ई० से प्रारम्भ होता है तथा डॉ० मोहन सिंह के अनुसार ८४० ई० से प्रारंभ होता है।

औघड़ पन्थी

ऐसे लोक-गीतों के अलावा और भी ऐसे गीत हैं जिन्हें गाकर वर्तमान-कालीन नाथ–जोगी अपने मन का भार हल्का करते हैं तथा विश्व को शिक्षा देते हैं। गीत में 'औघड़' नाथ जी से कुछ कह रहा है। मुझे यह लोक–गीत पञ्जाब के उपभाग 'मालवा' से प्राप्त हुआ है। गीत में पञ्जाबी के वर्तमान मालवी रूप की कुछ झलक मिलती है। केन्द्रीय या अमृतसर के आस पास की पञ्जाबी में साहित्य रचना होने के कारण तथा विज्ञान के चमत्कारों के फलस्वरूप रेलगाड़ी एवम् मुद्रण व्यवस्था ने पञ्जाबी–मालवी का असली एवम् पुरातन रूप बिगाड़ दिया है। गीत इस प्रकार है—

"औघड़ कहिंदे अमृत वाणी,
सुनों नाथ जी !
मेली मेली सब जग कहिंदा,
नाम गुरां दा मेली है
इक दिन मेली कोई नहिं बनना,
जाऊ जान अकेली है।
मेरी मेरी ना कर बन्दया,
ना तेरी ना मेरी है
ये दुनिया है चार दिहाड़े
अन्त मिट्टी की ढेरी है।
दुनिया तेरा बाग—बगीचा,
तूं दुनिया दा माली
पक्के कच्चे की सार न जाणें,
तोड़ गवांवे डाली।
डूगियां नदियां, तलाब, पुराना,
सिर पर गठरी भारी

अमलां वाले लंघ—लंघ जान्दे,
डूब गई औगरण हारी ।
मां कहे पुत्त चौब्बर होइया,
भैरण कहे वीर मेरा है,
सच्चे गुरु दियां चढ़दियां फौज्जां,
जमां ने लूट्ट लिया डेरा है ।
लम्बियां तान पया विच्च दर दे,
लै चल—लै चल होई है ।
जिन्हां दी खात्तर खट्ट पिट्ट मर गया
घड़ी न रखदा कोई है ।
भाइयां बांझ भैरणा ना सोंहदियां,
फन्दे उड़ीक्कन खड़ियां
पुत्तां बांझ मांवां ना सोंहदियां,
भवें लक्ख दौलतां भरियां ।
राज गया नूँ राजा झुरदा,
वैद गया नूँ रोगी
मेरे पुत्तर नूँ माता झुरदी,
शब्द ज्ञान नूँ जोगी ।
माता रोंदी छे महीने
पिता, रोवे बरसाल्ली
भीड़ पई नूँ भाई रोनगे
कदे नहीं भाई—वाल्ली ।
माता रोंदी छे महीने,
भैरण रोउगी छिन मास्सा
खट्टी तिरिया तिन्न दिन रोवे
फेर मंगे घर वासा ।
सिरहाने बैठी तेरी माता रोवे,
पैंद कलपदी गोरी

तूं लद चल्या बंदया गुरू देआ,
तोड़ गआ जग जोड़ी ।
तूं क्यों रोवें बंदा गुरु दी,
जिन जोड़ी तिन तोड़ी है
मरे कन्त तैनूँ होर बथेरे
भाइयां दी टुट्ट गई जोड़ी है ।
कप्पड़े दा नांव कफ्फन धरया,
नांव बदे दा मुरदा है
चौंह जणयां ने कंधे चुक लिया,
सिर ते गाग्गर फोड़ी है ।
माटी ओहड़े माटी पहिने,
माट्टी दा सिरहाणा
उहदा फिर कलबूत बणाया,
उड़ गया भौर निमाणा ॥

—नाथ जोगी जी ! सुनो, औघड़ अमृत-वाणी कह रहे हैं ।

—दोस्त शब्द का उच्चारण तो सब करते हैं, किन्तु वास्तविक मित्र गुरू है ।

—एक दिन ऐसा भी आयेगा, जब कोई मित्र नहीं बनेगा, तुम्हारी अकेली जान जायेगी ।

—ओ मानव ! तू मेरी-मेरी न कर, कोई भी वस्तु तेरी-मेरी नहीं है ।

—ये दुनिया चार दिन की है, आखिर मिट्टी की ढेरी ही बन जायेगी ।

—यह संसार तेरा बगीचा है और तू उसका रक्षक माली है ।

—तू कच्चे पक्के की पहिचान नहीं जानता है, इसी कारण से डालियाँ भी तोड़ डालता है ।

—विश्व-रूपी सरिता बहुत गहरी है और जीवन-रूपी सरोवर पुराना है तथा तेरे सिर पर भारी बोझिल गठरी है ।

—जिनके अमल अर्थात् आचरण अच्छे हैं वे इसके पार हो जाते हैं किन्तु अवगुणी डूब जाते हैं ।

—पुत्र के जवान होने पर मां कहने लगती है कि पुत्र चौबर= (४+१=२१६) सोलह वर्ष का हो गया है, बहिन कहने लगती है कि मेरा भाई है।

—किन्तु सत्‌गुरू की सेना जब उस पर आक्रमण करती है तो यमदूत उसका जीवनरूपी डेरा लूट लेते हैं ।

—उसकी मृत्यु होने के पश्चात् उसे द्वार में लिटा दिया जाता है। और सभी लोग उसे लेजाने को (स्मशान में) प्रस्तुत रहते हैं।

—जिनके लिये वह कमाता है और अपनी शक्ति को क्षीण करता है वे भी उसे घर में रखने के लिये तैयार नहीं होते ।

—बिना भाइयों के बहिनें शोभायमान नहीं होतीं, प्रत्येक शुभ कार्य में अपने भाई की ही प्रतीक्षा करती हैं।

—चाहे कितना भी धन घर में हो किन्तु बिना सुपुत्र के मां को संतोष नहीं होता—

—राज्य के खो जाने से राजा दुखी होता है, वैद्य न मिलने से रोगी दुःखी होता है ।

—इसी प्रकार पुत्र के मरने से मां दुःखी होती है, तथा ज्ञान के शब्दों के न मिलने से 'जोगी' भी दुःखी होता है ।

—पुत्र के वियोग में मां ६ मास तक विदग्धा रहती है, पिता का धनोपार्जन करने वाला सहायक मर जाता है अतएव वह एक युग तक (१२ वर्ष तक) रोता है ।

—कष्ट आने पर भाई भी रो उठते हैं, साझीदार या भागीदार को रोना ही नहीं आता ।

—माता ६ मास रोती है, बहिन भी क्षण-मात्र को रो उठती है।

—दुष्चरित्र पत्नी तीन दिन रोती है और फिर किसी अन्य घर में वास चाहती है।

—तेरे सिरहाने बैठ कर मां रोती है, पायताने (पैरों की ओर) बैठ कर पत्नी रोती है ।

—तू लोगों के कंधों पर लद कर चला जाता है और संसार से नाता तोड़ देता है ।

—ए सत् गुरू के बन्दे या चेले तू क्यों रो रहा है, जिसने नाता जोड़ा था वही तोड़ रहा है ।

—यदि तुम्हारा पति-कान्त मर गया तो क्या हुआ, तुम्हारे लिये और भी कई हैं (स्त्री के लिए व्यंग्य) वास्तव में तो भाइयों की जोड़ी टूट गई है यह दुःख की बात है ।

—मृत के साथ जाने वाले कपड़ों का नाम कफन रख लिया गया और मानव को मुर्दा कह दिया गया ।

—चार व्यक्तियों ने उसे कन्धे पर उठा लिया और सिर पर मिट्टी की मटकी फोड़ दी ।

—तूने मिट्टी को ही ओढ़ा, मिट्टी ही पहिनी, मिट्टी का ही सिरहाना बनाया ।

—इसके ऊपर कलबूत (समाधि या कब्र) बना दिया गया, किन्तु वास्तव में जो प्राण-वायु है वह तो उड़ ही गई ।

——:०:०:— |

पंजाबी लोक-गीतों में नई चेतना

प्रगति मानव का स्वभाव है। जब मनुष्य प्रागैतिहासिक युग को पार कर संसार का भौगोलिक विवेचन कर रहा था, विभिन्न संघर्षों से अर्जित अपने अनुभवों को अकल की कसौटी पर चढ़ा रहा था तब उसे एक नया ही दृष्टिकोण प्राप्त हुआ। वह अपने, अपने कबीलों की जय-पराजय के गीत उल्लासमय होकर गाता होगा—जब परमोत्कर्ष होता होगा तब वह नाच भी उठता हो तो कोई आश्चर्य नहीं ।

धीरे-धीरे प्रागैतिहासिक काल अपने प्रगति के रथ पर सवार हो आग्नेय युग से होता हुआ द्रविड़ काल में प्रविष्ट हुआ और हड़प्पा तथा महिंजोदड़ो की संस्कृति में खो गया। निश्चय ही प्रागैतिहासिक काल का मानव द्रविड़ युग में आता-आता प्रगति कर चुका था। इसी प्रकार द्रविड़ युग के पश्चात् विभिन्न श्रेणियों से होता हुआ वह आधुनिक काल तक पहुँचा है। इन सहस्राब्दियों की लम्बी अवधि में उसने समय--समय पर जो प्रगति की उसका इतिहास यदि मनोवैज्ञानिक विश्लेषक खोजने बैठें तो वह निश्चय ही साहित्य की अत्यन्त मनोरंजक वस्तु बन जाय। किस प्रकार मनुष्य ने खाना, पीना, उठना, बैठना, चलना, दौड़ना, खेलना, कूदना तथा नाचना या गाना सीखा—यह सभी उसकी प्रगति के अंग ही तो हैं! अपने तथा दूसरों के मनोरंजन के लिये उसमें किन- किन संस्कारों का कब-कब समावेश हुआ यह सभी मनन और चिन्तन के विषय हैं । कब उसने किन कारणों से उसमें कोई विशेष परिवर्तन या सम्वर्धन किये ये भी खोज का एक भिन्न विषय है।

चेतना प्रगति का मूल है—तथा प्रगति उसका परिणाम। मानव का स्वभाव है कि जब तक उसे अपने नित्य के परिचलन में अभाव नहीं अखरते, संघर्षों की अनवरत चोटों से उसके हृदय पर किसी विशेष प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता तब तक वह अपना स्वाभाविक गुण नहीं छोड़ता। किन्तु जब उस पर आ पड़ती है, वह स्वयं को संघर्षों की भट्टी में तपाकर अनुभवों के 'एसिड' से शोध लेता है। तभी उसके संस्कारों में भी स्वाभाविक रूप से परिवर्तन हो जाता है। उसी परिवर्तन को कालान्तर में परखने वाला शोधक प्रगति कह देता है। वास्तव में, यदि देखा जाय तो संघर्ष, अनुभव, पीड़ा तथा युग की भीषणता ही उसमें चेतना के बीज बो पाती हैं। यही चेतना जब अपने विकसित रूप पर पहुँचती है तब वह प्रगति कहलाती है। यदि चेतना के कारण उत्पन्न हुई शक्ति का उपयोग न कर मनुष्य जीवन से जूझ नहीं पाया तो वह अपने संस्कारों से जितना च्युत होता है, स्वभाव में कड़वापन ला जितना गिरता है, वह उसकी प्रतिक्रिया का ही कुत्सित रूप है—इसे यदि मानव का पलायन कह दिया जाय तो आश्चर्य नहीं।

डॉ० राधाकमल मुकर्जी ने एक स्थान पर लोक-गीतों का विश्लेषण करते हुए कहा है कि लोक-गीत परम्पराएं और संस्कृतियाँ पहले उन्हीं को अभिव्यक्त करती हैं जिनके लिये मनुष्य बाध्य होता है—*

"Cultures, traditions and Folk-songs at first gather around the more compelling aspects of life, such as the mode of economic organisation and means of livelihood, defence and attack, birth, marriage and death,and the uryeen forces of nature."

लोक-गीत या लोक-साहित्य वास्तव में क्या है, इस सम्बन्ध में भी विद्वानों की विभिन्न धारणायें हैं—इस लोक-साहित्य में मानव किस प्रकार प्रगति कर पाया यह भी खोज का एक भिन्न विषय है। पर इस साहित्य में

* 'Social Psychology' P. P. 148.

चेतना और प्रगति की भावना का मिलना भी उतना ही स्वाभाविक है जितना कि मानव-समाज में। लोक-साहित्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न विचार हैं—फ्रेज़र नामक एक अंग्रेज़ विद्वान का कथन है कि—हम बहुत सी अच्छी बातें अपने जंगली पुरखों से प्राप्त किए हुए हैं। इन से हमने कई सच्ची व उपयोगी वस्तुएं प्राप्त की हैं और इनमें व हम में असमानताएं बहुत कम हैं। इन से उत्तराधिकार में प्राप्त बहुत सी बुनियादी बातें हम अपनी मौलिक और सूझ-बूझ से उत्पन्न हुई समझते हैं। यह सत्य है कि लोक-साहित्य का इतिहास, परम्परा और प्रादुर्भाव, आदिकाल से है जब कि मानव-जाति काफी अविकसित रूप में थी और ज्ञान-बुद्धि के हाथ उसे स्पर्श भी नहीं कर पाये थे। शार्लट् सोफिया बर्न नामक विद्वान ने लोक-साहित्य या फोक-लोर को लोक-विद्या Learning of people कहा है, जिसमें आदिम मानव के प्राचीन विश्वास, भूत-प्रेत-धारणा, जादू, मोहन, उच्चाटन, शकुन-अपशकुन, व्याधि आदि प्रथा जन्म, मृत्यु, विवाह आदि जीवन की विविध क्रियाएं, व्रत, त्यौहार, उपासना आदि धार्मिक धारणाएं व अन्य विश्वासों को मानते हैं। इसमें आदिम मानव समाज की मानस प्रवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण रहता है; पर वास्तव में तो लोक-साहित्य मानव-समाज विज्ञान का ही अंग है। समाज के विकास सिद्धान्तों, चेतनादायिनी प्रवृत्तियों तथा प्रगतिशील भावनाओं के अनुसार उसमें भी प्रगतिशीलता के गुण आते गये और वह समय सयय पर परिवर्तित होता गया।

यूँ तो लोक-गीतों में मानव जीवन के विभिन्न अंगों पर चर्चा मिलती हैं पर सौंदर्य की खोज में भटकते रहना इन लोक-गीतों का प्रधान विषय रहा है। मानव समाज में जो स्थायी भाव रहते हैं वही लोक-गीतों का विषय बन जाया करते हैं। मानव का स्वभाव रहा है कि वह सौंदर्य की खोज करे और इसी सौंदर्य की खोज में भटकता २ जब मानव-मन उच्च स्तर पर पहुँच जाता है तब रहस्यवादी बन जाता है। अपनी प्रियतमा की छाया में ईश्वर को ढूँढने लगता है। ईश्वर की खोज करना भी तो उसकी प्यास का जीवित एवं विकसित रूप है। कला प्रायः मधुर होती है, उसमें मधुरता का भाव चिरस्थायी रहता है; यदि उस में सौंदर्य की अभिव्यक्ति का समावेश और हुआ तो वही कला

स्वर्गीय सुख देने वाली बन जाती है। इसी कारण मनुष्य की कला की कल्पना प्रायः स्त्री मानी जाती है—अतीव सुन्दर स्त्री। वह अपनी कला को सुन्दर बनाना चाहता है—अतीव सुन्दर बनाने के लिये उसे प्रकृति का सहारा लेना पड़ता है। यह प्रकृति भी तो स्त्री ही है! लोक-नृत्य भी कला का ही अंग है, पर यह है इन्द्रीय कला का श्रेष्ठ नमूना—यह बाह्य कला है। पर लोक-गीत आदि हृदय और आत्मा की कला की अभिव्यञ्जना हैं। जब मनुष्य लोक-गीतों की दुनिया में खो जाता है तब उसके सामने उस समाज का, उस प्रान्त का, उन संस्कारों का चित्र आ उपस्थित होता है जिनके गीत गाये जा रहे हों। उस चित्र की पृष्ठ-भूमि के पीछे कला की मूर्त प्रतिभा का अंकन कर लेने वाला ही उस सुख को प्राप्त कर सकेगा—अन्य नहीं। कल्पना के उस कलात्मक लोक में भले ही उषा की मुस्कान, चाँद की जवानी, फूलों की आह, ओस की मिठास मिल सके पर जीवन का सत्य उस में कहां? सपनों की दुनिया के झिलमिल पट के पीछे कला मुस्कुराती अवश्य प्रतीत होगी, वह मधुर अवश्य लगेगी; पर वह मधुरता भी कल्पना-मात्र ही है उसमें जीवन की सरसता, सत्यता, अनुभूति और कड़वापन मिलना असम्भव है। भले ही जीवन की यह सरसता कड़वी हो पर उस कड़वेपन की टीस हो मानव की चेतना को जाग्रत करती है और वह सुखद लोक को पाने की कल्पना में जीवन के संघर्षों से जूझने को तय्यार हो जाता है। यदि मानव संघर्षों को छोड़ निराश हो जाय तो उसकी प्रगति थम जायेगी और उसका जीवन फीका-फीका बकबका सा प्रतीत होने लगेगा। उस फीकेपन को दूर करने के लिये जीवन में संघर्ष आवश्यक है—इन संघर्षों के पीछे ही मनुष्य को प्रगति की लाल किरण झाँकती प्रतीत होती है।

लोक-गीतों में कोरा शृङ्गार, कल्पना एवम् रोमांस की पुकार ही नहीं है वरन् उनमें जीवन भी झाँकता नज़र आता है। संघर्षों की मिठास अनुभवों की मुस्कान, पीड़ा का अमृत, कसक एवं उत्पीड़न की हँसी भी इन गीतों में प्राप्त होती हैं। यदि कहीं इतिहास मिलता है तो कहीं चेतना, कहीं चेतावनी मिलती है तो कहीं संकेत, कहीं वे भविष्यद्दष्टा हो जाते हैं तो कहीं उनमें जीवन की

यथार्थता भी मिल जाती है। राजनीति, इतिहास और आर्थिक विषमता तो मानो इन गीतों में कूट-कूट कर भरी हुई है।

पञ्जाबी बोली राज-घराने या पण्डितों की भाषा नहीं, वह ब्राह्मणों की आर्य-बेटी होते हुए भी जन-जन की जिह्वा पर मचलने वाली भाषा है; जाट सिक्ख, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी वर्ण ही तो इस बोली को बोलते हैं। मज़दूर, किसान और जनता का बच्चा २ इसी बोली में जीता-जागता और फलता-फूलता है। इस बोली का नागरिक-साहित्य जनता का साहित्य है। और लोक-साहित्य जन-जन के अन्तर का साहित्य। अन्तर पर चोट हुई कि लोक-साहित्य गूँज उठा, अन्तर उल्लसित हुआ कि लोक-साहित्य नाच उठा अन्तर प्रभावित हुआ कि लोक-साहित्य का वाद्य बजने लगा और अन्तर्दर्शन की लालसा में जन-बल जागृत हो गया, स्वपनों की दुनिया छोड़ यथार्थमय सत्यं-शिवं-सुन्दरम् का गीत गाने वाली यह पञ्जाबी आर्य-कन्या इसी लोक की भाषा बोलती है—इसी जीवन के गीत गाती है। उसका हृदय पञ्जाब पर हुई प्रताड़नाओं से घायल हो गया है—वह मानवता के पतन से सहम उठा है—

पञ्जाब दे जम्मे नूँ नित्त मुहिम्मा !

—पञ्जाब में पैदा होने वाले को नित्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

जिस प्रदेश की यह दशा हो कि सूर्य की प्रथम लाल किरण वहाँ के निवासियों के सामने एक समस्या खड़ी कर दे, उस देश का वासी कितना संघर्षशील होगा ? डूबते सूर्य की लाल किरणों में जब वह अपने-संघर्षों पर विजय-हास में उल्लसित हो झूमता हुआ घर लौटता होगा तब उसकी पत्नी उसकी प्रगति के गीत गाती हुई उसका स्वागत करती होगी—सच में दिन भर के संघर्षों की पीड़ा पर उसके अनुभवों की मरहम जब संजीवनी छुआती होगी तब वह स्वयं को अवश्य ही विश्व से दो हाथ ऊँचा मानता होगा और उसी मुस्कान में गुन-गुनाती हुई उसकी पत्नी आत्म विश्वास के साथ कहती है—

बारीं बरसीं खट्टण गिया सी खट्ट के लिआंदी चाँदी
गोरे सारे न्हस जाउणगे, राज करेगा गान्धी

—मेरे प्रियतम तुम बारह वर्ष से धन-उपार्जन के लिये गये हुए थे—तुम इस लम्बे काल में चाँदी कमा कर लाये हो—

—निश्चय ही तुम्हारे प्रयत्नों से हमारे देश पर शासन करने वाले ये गोरे लोग भाग जावेंगे और गांधी राज्य करेगा ।

देखिए आज से लगभग ३०–४० वर्ष पूर्व की महिला को अपने भारत के सपूतों पर कितना विश्वास था । कि वह आत्म-विश्वास के साथ अपने देश का गौरव बताते हुए महात्मा गाँधी के व्यापक एवम् प्रगतिशील आन्दोलन में सफलता की एक निश्चित झलक बताती है । भविष्य-द्रष्टा गृहिणी किसी भी पहुँचे हुए ज्योतिषी से कम नहीं !!

क्रान्तिकारी पार्टी के नेता, भारत की आज़ादी के दीवाने अमर शहीद भगत सिंह की स्मृति में उसकी प्रशंसा करते हुए भारत की ये लोक-माता उस पर बलिहारी जाती है--उसके प्रगतिशील कदम, अदम्य उत्साह, निर्भीक प्रवृत्ति और देश-प्रेम की श्लाघा करती हुई उसकी बलाएँ लेती है—

बारीं बरसीं खट्टण गिया ते खट्ट के लिआंदी माया ।
वारे जाइए भगत सिंह दे जिन असम्बलीच' बम्ब चलाया ।

—मेरे प्रियतम तुम बारह वर्ष से धनोपार्जन के लिए गये हुए थे, तुम परदेश से लम्बे काल में माया कमा कर लाये हो ।

--पर हम तो भगत सिंह पर बलिहारी हैं जिस वीर ने अंग्रेज़ों के असैम्बली भवन पर बम् चलाकर अपना नाम जन्म–जन्मांतर के लिये उपार्जन कर लिया है ।

देखिये आज २०–२२ वर्ष पूर्व की एक ग्राम्य-वधू की भावनएं कितनी प्रगतिशील एवं राष्ट्रीय तथ्यों से परिपूर्ण थीं । धन्य है वह लोक--माता जो अपने पुत्रों की शहादत देखकर उनकी बलाएँ लेती है और उस पर तन-मन-धन न्योछावर करती है !!

जग्गा नामक डाकू पञ्जाब में अत्यन्त ही प्रसिद्ध हुआ है । वह पञ्जाब का प्रथम डाकू था जो केवल पूञ्जीपतियों को ही लूटता था और दीन–हीन कृषक एवं मज़दूर-जनों का हितचिंतक था । जग्गा डाकू की सहस्रों किंवद–

न्तियाँ पञ्जाब में प्रचलित हैं। विभिन्न लोक-काव्यों की रचना भी जग्गा के सम्बन्ध में हुई है। लोक गीतों में भी जग्गा लोक की बोली बन झूम उठा है—

"जग्गा जम्मिआ ताँ मिलण वधाइयाँ
कि वड्डा हो के डाके मारदा।
काली तितली कमादों निकली कि उड़दी नूँ बाज पै गिआ।
जग्गिआ! कि टुर परदेस गिओं बूहा वज्जिआ।
जे मैं जाणदी जग्गे ने मर जाणा
ताँ इक्क दे दो जम्मदी।
रेल दे पुल ते लड़ाइयां होईआँ कि नौ मन रेत भिज्ज गई।"

—जब जग्गा ने जन्म धारण किया तो घर घर से बधाइयाँ मिलने लगीं वही जग्गा बड़ा होकर डाके मारता है।

—काली तितली अर्थात् दीन-हीन गरीब जनता—कमाद अर्थात् गन्ने के खेत से निकली ही थी कि बाज़ झपट पड़ा अर्थात् खेतों से निकलने वाली दीन-हीन गरीब कृषक जनता जब नगरों में अपनी फसल बेचने आती है तब पूञ्जीशाहों की गिद्धदृष्टि, धन वालों के बाज के समान हथकण्डे उनपर आक्रमण करते हैं जिससे गरीब जनता का नाश होता है। —जग्गा अब तुम परदेशगामी हो गये हो, दरवाज़ा बन्द पड़ा है।

—जग्गे की मां कहती है—अगर मैं जानती कि जग्गा मर जायगा तो मैं एक की बजाय दो को जन्म देती!

—रेल के पुल पर लड़ाइयां हुईं जबकि जग्गे ने अंग्रेज शासकों की रेल पर डाका डाला—जिसके कारण वहाँ की नौ मन रेत खून से लथ-पथ हो भीग गई।

देखिये इस गीत में जग्गा के मर जाने पर उसके शोक में विह्वल लोक-माता कितनी दारुण पीड़ा से फूट पड़ती है और पुरानी बातें याद करती हुई, जग्गा के कार्यों पर दृष्टिपात कराती हुई कहती है कि यदि उसे ज्ञात हो जाता कि जग्गा नहीं रहेगा तो वह जग्गे के समान ही दो वीरों को जन्म देती।

लोक-माता अब युद्धों में होने वाली नृशंस हत्याओं से ऊब गई है। वह मौत की वीभत्सता तथा उसके भीषण दुखदाई परिणामों से काँप उठी है। उसकी आत्मा युद्ध और मौत की भीषणता का विरोध करने के लिए बाध्य हुई जा रही है। वह भिन्न २ उदाहरण देकर यह सिद्ध कर रही है कि अब मृत्यु और युद्ध के गीत गाने की बजाय देश को शान्ति चाहिए। वह अपनी किसी सखी से कहती है--

मौत-मौत ना कर नी जैकौरे
वेख मौत दे कारे—
पहिलाँ मौत ने दिल्ली ढाही
फेर वड़ी पटिआले,
पटिआले वाले दे गभरू मर गये
लाल दाढ़िआं वाले।
नाभे वाली दी कंजरी मर गई
रौणक लै गई नाले
लड्डू जलेबिआं गलिआं रुलदे
चुकलै पतलिए नारे,
जल ते फुल्ल तरदे—वेख मौत दे कारे,
जल ते फुल्ल तरदे।

—ए जैकौर ! तुम अब मौत-मौत कह कर उसका आह्वान मत करो। तुम मौत और युद्ध का कार्य अर्थात् परिणाम देखो। पहले इसी मौत ने दिल्ली का नाश किया। फिर यह मौत पटियाला में भी आई जिससे पटियाला का नाश हो गया। पटियाला वाली पल्टन के सभी जवान उसमें मारे गये जिनकी लाल-लाल दाढ़ियाँ चमक रही थीं।

नाभा नरेश ने क्योंकि अंग्रेज़ों के विरुद्ध जिहाद किया था इस कारण से उन्हें बन्दी बना कर अंग्रेज़ ले गया जिससे नाभा की वैश्याओं का पालक कोई न रहा। इसी कारण उनकी वैश्याएँ भी चली गई। वे वैश्याएँ नाभा की सम्पूर्ण रंग--रलियाँ अपने साथ ही ले गईं।

अब शान्ति–रूपी मिठाइयाँ गलियों में आसानी से प्राप्तहो रही हैं। तू चाहे तो ओ पतली स्त्री ! इन शान्ति रूपी मिठाइयों को अपना ले। देख इन मौतों के कारण जवानों के फूल, अस्थियाँ, जो जल में प्रवाहित किये गये हैं, वे पानी पर तैर रहे हैं, देख मौत का और युद्ध का परिणाम कितना भयानक है ! पानी पर अस्थियाँ तैर रही हैं।

समाज में दिन-रात होने वाली स्त्रियों के प्रति भीषणता से भी पञ्जाब की लोक-माता अपरिचित नहीं है। वह जानती है कि विधवा पर वर्तमान समाज किस प्रकार अत्याचार तथा जुल्म करता है। उसकी आत्मा उन अत्याचारों को देख कराह उठती है—उस कराह की टीस उसमें चेतना का स्पन्दन भरती है और वह पुरुषों के अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष करने को तत्पर हो जाती है—पर वह भारतीय नारी है—धर्मानुसार अपने ईश्वर से ही अत्याचारों की शिकायत करती है तथा इस अत्याचार को रोकने की प्रार्थना करती है—

मैं विधवा कराँ पुकार ईश्वर सुण मेरे
रण्डवे दो–दो व्याह करावण
रंडीआँ नूँ एह हुक्म सुनावण—तुसीं न दूजी वार
ईश्वर सुण मेरे
एह की उल्टी कार
ईश्वर सुन मेरे·········...

ऐ मेरे ईश्वर सुन ! मैं विधवा तुझे पुकार कर कहती हूँ। रंडवे हो जाने वाले पुरुष दो–दो विवाह कर लेते हैं, पर वे विधवाओं को यह आज्ञा देते हैं कि तुम दूसरा विवाह नहीं करवा सकतीं। ओ मेरे ईश्वर सुन यह क्या और कैसा अत्याचार है ! यह देखो मेरे ईश्वर इन पुरुषों की कैसी उल्टी कार्यप्रणाली है ?

वर्तमान युग में जो भेद अमीर और गरीब व्यक्ति में पड़ रहा है, जिसके कारण गरीब पीसा जा रहा है, उसी श्रेणी–संघर्ष पर यह लोक-माता तीखा व्यंग करती है। वह वर्ग संघर्ष से मानो पूर्णतया परिचित ही हो। वह

भली भाँति जानती है कि पूञ्जीवादी मनोवृत्ति किस प्रकार आज के समाज में घर कर गई है—

'अमीर दे साले बहुते, गरीब दा भनोइआ कोई ना'

—अमीर व्यक्ति का साला बनने के लिये बहुत से लोग तैयार हो जाते हैं पर गरीब व्यक्ति का बहनोई बनने को भी कोई तैयार नहीं होता।

देखिये उपरोक्त 'अखाण'—आख्यान—में कितना तीखा एवं चुभता हुआ व्यंग है ! एक अन्य पञ्जाबी 'बोली' में आधुनिक युग से त्रसित ऐसी स्त्री का चित्र है जो भूख से व्याकुल है—वह खाने को एक जून रोटी भी नहीं जुटा पाती। जिस स्वतन्त्रता के लिये लोक-माता ने अपने बच्चों की बलि दे दी वही आज दाने-दाने को तरसती है। वह एक भड़भूँजन के पास जाकर उससे एक मुठ्ठी सिके हुए चबैने की मांग करती है। वह स्वतंत्रता का महत्व, समय की तंगी, युग की भीषणता तथा अविराल चलित काल-चक्र की दुर्दमनीय प्रताड़नाओं से भयभीत नहीं—उसे हर हाल में संतोष है । चबैना खाकर पानी पी लेने से ही वह अपनी भूख का शमन करने को तैयार है । देखिये लोक-माता का धैर्य, उसके अन्तस की पीड़ा, सभी कुछ इस गीत में घुल-मिल गया है—

"मैं दूरों आ गई चल के, तेरी भट्ठी दी ओट तक्कां ।
मैनूँ भुक्ख ने जरबाँ दे दित्तिआं, मेरे गई हड्डां नूँ खा ।
मैनूँ फक्का कु दाणे भुन्न दे मैं पाणी पी के लऊंगीं वक्त नँघा"

—मैं दूर से चल कर पैदल आ रही हूँ और तेरी भट्ठी की ओर लालसा भरी दृष्टि से देख रही हूँ। मुझे भूख ने बेहाल कर दिया है। यह मेरी हड्डियों को भी खा चुकी है। मुझे मुट्ठी भर चबैना भून दे, मैं पानी पीकर ही अपना समय काट लूंगी ।

केवल यही नहीं, युद्ध में गये हुए सिपाही की पत्नी भी भूखी है। वह जानती है कि यदि शिमले से वेतन मिलेगा तभी तो उसका प्रियतम उसे खर्चा भेज पायेगा। इसी कारण वह वैभवशाली पञ्जाब की राजधानी शिमले को कोसती है—उस पर करारी फिटकार देती हुई कराहती है। शिमले को साफे का

तुर्रा भी कहा जाता है सिपाहियों के साफे पर प्रायः तुर्रा रहता है—बहुत सम्भव है वह अपने पति की सिपाहीगिरी पर प्रताड़ना डालती हुई कहती हो---

'रेलां वालिआ रेलां विच्च कानीआं
फिट्ट तेरे शिमले नूँ
घर भुक्खीयाँ जनानीआं ।'

—रेलां वाले तेरी रेल में कोई क्या बैठे, तेरी रेल में तो घास फूस भरा है। तेरे शिमले पर सहस्त्रों फिटकारें जब कि सिपाही की पत्नी घर में भूखी है ।

भूख का नग्न चित्रण करने वाले इन लोक--गीतों में अभी और भी बहुत कुछ है। एक अन्य बोली है जिसमें घर में नमक तथा हल्दी की भी शून्यता बताई है। बेटा जम्मू जाने के लिये तैयार है। माँ बेटे को घर की वास्तविक परिस्थिति समझा रही है और व्यर्थ ही जम्मू जाने से रोकती है ।

'वे घर नूँण है नहीं वे, बसार है नहीं,
जम्मू जान दी बीबा बहार है नहीं ।'

—मेरे अच्छे बेटे ! घर में नमक भी नहीं और हल्दी भी नहीं है। प्रिय बेटे यह ज़माना जम्मू जाने का नहीं है क्यों कि घर की दशा शोचनीय है।

अपनी मनचाही प्रियतमा को पति उसके पसन्द के काले स्लीपर भी खरीद कर नहीं दे सकता अतएव उद्विग्न होकर अपनी पत्नी को ढाड़स बंधाता हुआ कहता है—

'चाहे मेरी मज्झ बिक जाए तैनूँ लै देऊँ सलीपर काले'

—प्रियतमा चाहे मुझे भैंस ही क्यों न बेचनी पड़ जाय पर तुझे काले स्लीपर अवश्य खरीद दूँगा।

घर चलाने के लिये बैल बेच देना पड़ा। कर्जा सिर पर इतना था कि चुकाना मुश्किल हो गया। साहूकार का ब्याज़ बढ़ा जा रहा था। बैल बेचकर कृषक ने देखा कि उसके पास तो कुछ भी शेष नहीं रहा—

'बल्द सारा वेच घतिआ, छिलाँ पंद्राँ ना हत्थ आईआँ ।'

—इतना बड़ा बैल भी बेच दिया, पर हाथ में १५ रुपये भी शेष नहीं रह पाये ।

आर्थिक विषमता के परिचायक और भी अनेक गीत मिलते हैं जिनमें युग की दुर्दमनीयता का नग्न-चित्र प्रस्तुत किया गया है लगान की नित्य प्रति बढ़ती हुई रकम तथा विभिन्न कर आदि से पञ्जाब की महिलाओं के आभूषण भी बिकने लगे। यदि आभूषण आदि बेचकर भी कर अदा हो पाते तब भी बात थी, पर कर तो अधिक देना था। आभूषण बेचकर भी अच्छी रकम हाथ न लगी—

'बंद मेरे वेच वी आए हों, तेरा मामला अजे न चुक्किआ।'

—मेरे बाजू बन्द तुमने बेच भी दिये पर हाय री सरकार तेरा कर-लगान अभी चुकाया नहीं जा सका ।

ग्रामीण जनता एक ओर से दुःखी, त्रसित हो तो और बात है पर वह तो जीवन के प्रत्येक पहलू में संघर्षों की भट्टी में तपना ही पसन्द करती है। आपस में मुकद्में बाजी करवाना ग्रामीण कर्मचारियों का कर्तव्य सा हो जाता है—यदि वे यह न करायें तो उनकी पूछ कौन करे। भूमि का झगड़ा है। धीरे-धीरे बढ़ता हुआ वह अदालत में पहुँचता है। मुकद्दमा लड़ते २ आर्थिक संकटों से विदीर्ण किसान की भूमि भी साहूकार के हाथ बिक जाती है। वह मुकद्दमा लड़ता ही रहता है और जब मुकद्दमा जीत कर अदालत से बाहर आता है तब अपने दिल को समझाता व सान्त्वना देता है—

'होइआ की जे भों बिक गई, मैं गज्ज के मुकद्दमा जित्तिआ'

—क्या हुआ अगर मेरी भूमि बिक गई—मैं भूमि-विहीन हो गया—पर मुझे तो संतोष इस बात का है कि मैंने धूम-धाम के साथ मुकद्दमें पर विजय प्राप्त की है।

देखिए कितना अदम्य उत्साह एवं साहस है इस किसान में जो संघर्षों से जूझने के लिये नित्य-प्रति ही तत्पर दिखाई देता है! भाई फौजी जवान है। उसकी बन्दूक घर में पड़ी है। बहिन का रक्त उस बन्दूक को देख कर उबल उठता है—वह क्रोधित होती है क्योंकि वह जानती है कि उसके भाई को शीघ्र ही युद्ध में जाना होगा। वह बेहाल हो जंगबाज़ के विरुद्ध बोली कसती है—

'मेरा खून नीं उबाले खावे, वीर दी बंदूक वेख के ।'

—ओ मेरी सहेली भाई की बन्दूक देखकर मेरा खून उबल उठता है।

इसी युद्ध-सम्बन्धी और भी अनेक गीतों की कड़ियां हैं जिनमें चीन और ब्रह्मा जाने वाले जवानों के सम्बन्ध में चर्चा की गई है। प्रियतम को अंग्रेज सरकार ने युद्ध में भेज दिया है। घर पर जवान की नौजवान पत्नी को बात-बात में अपने प्रियतम की याद आती है। वह उस जंग का विरोध करती हुई रो उठती है--उसकी आत्मा कराहती हुई कहती है--

'माही मेरा लाम नूँ गिआ, नाले धार कढाँ नाले रोवाँ'

—मेरा प्रियतम युद्ध को गया हुआ है। मैं उस की याद में घर का काम करते हुए रो रो पड़ती हूँ।

शासन की ओर से आज्ञा सुना दी गई है कि अब पल्टन ब्रह्मा के मोर्चे पर जावेगी। गृहिणी जानती है कि उसके पति का भाग्य अच्छा नहीं है। वह पिछले इतिहास से भी परिचित है। यदि दुर्भाग्य न होता तो उसका पति झगड़ों में पड़कर अपनी भूमि क्यों बेचता और अन्य रास्ता न पाने से पल्टन की नौकरी क्यों करता? इसी कारण वह उसे चेतावनी देना चाहती है—

'ना जा बरमा नूँ, तेरे लेख जाणगे नाले ।'

मेरे प्रिमतम तुम बर्मा मत जाओ। तुम्हारा दुर्भाग्य तुम्हारे साथ जायेगा।

पति पल्टन की नौकरी की प्रशंसा करता है। अपनी पत्नी को समझाता है कि वह पल्टन का जवान होकर पर्याप्त धन उपार्जन करेगा। उसकी पत्नी पर्याप्त समझदार है उसे एक व्यंग देती हुई कहती है कि यदि मैं नौ कन्याओं को जन्म दे दूँ तो दहेज देते समय तुम्हारी चीन की कमाई का भी मुँह कड़वा हो जायेगा। देखिये छोटी सी ही बात में इस महिला ने कितनी महत्त्वपूर्ण बात कही है—दहेज़ प्रथा का मीठा विरोध भी है और युद्ध से अर्जित धन पर मीठी फटकार भी। कितने सुन्दर ढंग से एक ही तीर से दो शिकार किये हैं—

'जम्म के नौ कुड़ियाँ तेरी चीन दी खट्टी दा मुँह भन्न दाँ।'

—प्रियतम ! मैं नौ कन्याओं को जन्म देकर तुम्हारी चीन के युद्ध में अर्जित कमाई का मुँह तोड़ दूँगी।

अंग्रेजी शासन ने जब प्रारम्भ में गिलट कीं इकन्नियाँ प्रचलित कीं उस समय की एक व्यंग भरी बोली सुनिये—

'राज फिरंगीआं दा, वेखो तुर पए गिलट दे आने।'

—अंग्रेज़ों का राज्य है, देखो गिलट की इकन्नियाँ चल पड़ी हैं।

कितना सुन्दर बन पड़ा है यह व्यंग। अंग्रेज़ इतिहासकारों ने मुहम्मद तुगलक को पाग़ल करार दिया था। पर वास्तव में क्या वह पाग़ल था ? इतनी दर्द भरी कटाक्ष की बात कहने में पञ्जाब की महिला कितनी चतुर है।

राजनीतिक परिस्थितियों से ये लोक-गीत अछूते नहीं रहे। समय के साथ साथ इन में भी राजनैतिक चेतना आती गई। जो भी आन्दोलन व्यापक हुआ कि उसका उल्लेख लोक-गीतों में मिलना निश्चित हो गया। आर्य समाज ने भारत को एक नई चेतना दी इस जागृति की लहर ने लोक-गीतों को भी जागरूक किया—

'आरियाँ ने अत्त चक्क लई, सारे पिंड दे शराध बन्द कीत्ते।'

—आर्य समाजियों ने तो हद्द कर दी। देखो सारे गाँव में होने वाले श्राद्धों पर मानों पाबन्दी लगा दी है।

पञ्जाब में सिंह सभा का आन्दोलन ज़ोरों से चला। लोग उसमें सम्मिलित होने लगे। एक समय ऐसा आया जब कि वह ढकोसला-सा रह गया। उसी ढकोसले की ओर संकेत करती हुई पञ्जाबी महिला एक चेतनादायी व्यंग कसती है कि जिस व्यक्ति के घर में खाने को अनाज समाप्त हो जाता है वही-सिंह सभा का सदस्य हो जाता है क्योंकि सिंह सभा के लंगर से उसका भरण-पोषण सुगमता से हो जाता है—

'बण गिआ सिंघ सभीआ, जदों मुक्क गये घड़े दे दाणे।'

राजनैतिक चेतना से परिपूर्ण कुछ और भी बोलियाँ देखिये—शिरोमणी अकाली दल का प्रचार बढ़ा और लोक-गीत गूञ्ज उठा—

'मैं 'कालण' बण गई वे अकालीआ तेरिआँ दुखाँ दी मारी।'

'मेरा खून नीं उबाले खावे, वीर दी बंदूक वेख के ।'

—ओ मेरी सहेली भाई की बन्दूक देखकर मेरा खून उबल उठता है।

इसी युद्ध-सम्बन्धी और भी अनेक गीतों की कड़ियां हैं जिनमें चीन और ब्रह्मा जाने वाले जवानों के सम्बन्ध में चर्चा की गई है। प्रियतम को अंग्रेज सरकार ने युद्ध में भेज दिया है। घर पर जवान की नौजवान पत्नी को बात-बात में अपने प्रियतम की याद आती है। वह उस जंग का विरोध करती हुई रो उठती है—उसकी आत्मा कराहती हुई कहती है—

'माही मेरा लाम नूँ गिआ, नाले धार कढाँ नाले रोवाँ'

—मेरा प्रियतम युद्ध को गया हुआ है। मैं उस की याद में घर का काम करते हुए रो रो पड़ती हूँ।

शासन की ओर से आज्ञा सुना दी गई है कि अब पल्टन ब्रह्मा के मोर्चे पर जावेगी। गृहिणी जानती है कि उसके पति का भाग्य अच्छा नहीं है। वह पिछले इतिहास से भी परिचित है। यदि दुर्भाग्य न होता तो उसका पति झगड़ों में पड़कर अपनी भूमि क्यों बेचता और अन्य रास्ता न पाने से पल्टन की नौकरी क्यों करता ? इसी कारण वह उसे चेतावनी देना चाहती है—

'ना जा बरमा नूँ, तेरे लेख जाणगे नाले ।'

मेरे प्रिमतम तुम बर्मा मत जाओ। तुम्हारा दुर्भाग्य तुम्हारे साथ जायेगा।

पति पल्टन की नौकरी की प्रशंसा करता है। अपनी पत्नी को समझाता है कि वह पल्टन का जवान होकर पर्याप्त धन उपार्जन करेगा। उसकी पत्नी पर्याप्त समझदार है उसे एक व्यंग देती हुई कहती है कि यदि मैं नौ कन्याओं को जन्म दे दूँ तो दहेज देते समय तुम्हारी चीन की कमाई का भी मुँह कड़वा हो जायेगा। देखिये छोटी सी ही बात में इस महिला ने कितनी महत्त्वपूर्ण बात कही है—दहेज़ प्रथा का मीठा विरोध भी है और युद्ध से अर्जित धन पर मीठी फटकार भी। कितने सुन्दर ढंग से एक ही तीर से दो शिकार किये हैं—

'जम्म के नौ कुड़ियाँ तेरी चीन दी खट्टी दा मुँह भन्न दाँ।'

—प्रियतम ! मैं नौ कन्याओं को जन्म देकर तुम्हारी चीन के युद्ध में अर्जित कमाई का मुँह तोड़ दूँगी।

अंग्रेजी शासन ने जब प्रारम्भ में गिलट की इकन्नियाँ प्रचलित कीं उस समय की एक व्यंग भरी बोली सुनिये—

'राज फिरंगीआं दा, वेखो तुर पए गिलट दे आने।'

—अंग्रेज़ों का राज्य है, देखो गिलट की इकन्नियाँ चल पड़ी हैं।

कितना सुन्दर बन पड़ा है यह व्यंग। अंग्रेज़ इतिहासकारों ने मुहम्मद तुगलक को पाग़ल करार दिया था। पर वास्तव में क्या वह पाग़ल था? इतनी दर्द भरी कटाक्ष की बात कहने में पञ्जाब की महिला कितनी चतुर है।

राजनीतिक परिस्थितियों से ये लोक-गीत अछूते नहीं रहे। समय के साथ साथ इन में भी राजनैतिक चेतना आती गई। जो भी आन्दोलन व्यापक हुआ कि उसका उल्लेख लोक-गीतों में मिलना निश्चित हो गया। आर्य समाज ने भारत को एक नई चेतना दी इस जागृति की लहर ने लोक-गीतों को भी जागरूक किया—

'आरियाँ ने अत्त चक्क लई, सारे पिंड दे शराध बन्द कीत्ते।'

—आर्य समाजियों ने तो हद्द कर दी। देखो सारे गाँव में होने वाले श्राद्धों पर मानों पाबन्दी लगा दी है।

पञ्जाब में सिंह सभा का आन्दोलन ज़ोरों से चला। लोग उसमें सम्मिलित होने लगे। एक समय ऐसा आया जब कि वह ढकोसला-सा रह गया। उसी ढकोसले की ओर संकेत करती हुई पञ्जाबी महिला एक चेतनादायी व्यंग कसती है कि जिस व्यक्ति के घर में खाने को अनाज समाप्त हो जाता है वही-सिंह सभा का सदस्य हो जाता है क्योंकि सिंह सभा के लंगर से उसका भरण-पोषण सुगमता से हो जाता है—

'बरण गिआ सिंघ सभीआ, जदों मुक्क गये घड़े दे दाणे।'

राजनैतिक चेतना से परिपूर्ण कुछ और भी बोलियाँ देखिये—शिरोमणी अकाली दल का प्रचार बढ़ा और लोक-गीत गूञ्ज उठा—

'मैं 'कालण' बण गई वे अकालीआ तेरिआँ दुखाँ दी मारी।'

—तेरे दुखों से तंग आकर ओ अकाली ! मैं भी अकाली हो गई हूँ !

नाभा के समीप जैतों नामक स्थान पर पडित नेहरू को नाभा नरेश ने बंदी किया था। वहाँ गोलीकाण्ड भी हुआ था जिसके कारण कुछ लोग शहीद हो गए। उसी शहादत का स्मरण कराती हुई एक बोली देखिये—

'जैतों जाके ते तुसीं पाओ शहीदीआं शेरो !'

—ऐ नवयुवको तुम लोग जैतों जाकर शेरों के समान शहीद हो जाओ।

काँग्रेस के आन्दोलन ने पञ्जाब में अपना प्रभाव स्थापित किया ही था कि वह लोक-गीतों में भी उल्लखित हो उठो। अन्य दलों के नेता आकर काँग्रेस को कोसा करते थे क्योंकि उनमें सैद्धान्तिक मतभेद था। पञ्जाब की लोक-भाषा यह सब कैसे बरदाश्त कर सकतो थी अतएव उसने तुरत ही कहा—

'कांग्रेस क्यों भैड़ी, जेहड़ी जादी-जादी कूके !'

—वह काँग्रेस किस तरह बुरी हो सकती है जो रात-दिन आज़ादी का ही गाना गाती है।

महात्मा गान्धी का प्रभाव जनता में व्यापक हुआ और पञ्जाब का लोक भी उसकी ही बात कहने लगा। विभिन्न स्थानों पर गाँधी को विभिन्न प्रकार से स्मरण किया गया—

'खरा रुपय्या चाँदी दा, राज महात्मा गांधी दा'

—महात्मा गाँधी का शासन है, शुद्ध चाँदी के रुपये चल रहे हैं।

काँग्रेस का आन्दोलन और बढ़ा, अंग्रेज़ शासन ने देश पर अधिकाधिक अत्याचार किये, लाठी चार्ज, गोलियों तथा अश्रुगैसों का प्रयोग आम हुआ, और आन्दोलन करने वाले तथा सत्याग्रही जेलों में ठूँसे जाने लगे। गाँधी जी को भी अनेक बार जेलों का आतिथ्य काटना पड़ा ! पञ्जाब के लोक में गाँधी की जेल-यात्रा ने भी एक नई चेतना दी—लोक में खादी का प्रचार बढ़ गया।

'आप गांधी कैद हो गिआ, सानूँ दे गिआ खद्दर दा बाणा'

—गाँधी जी स्वयं तो कैद हो गये, और हमें खादी की पोशाक दे गए।

स्वतंत्रता—आन्दोलन अधिक व्यापक हुआ। देश में एक कोने से दूसरे कोने तक आन्दोलन का स्वर तीव्र से तीव्रतर होता गया और ऐसे ही

समय में श्री जिन्हा ने पाकिस्तान का नारा बुलन्द किया। पाकिस्तान मिलेगा या नहीं—इस सम्बन्ध में भी हमारा लोक-कवि शान्त नहीं, उसे भली-भाँति ज्ञात है कि जिन्हा का नारा कुछ रंग अवश्य लाएगा—वह दहाड़ कर कहता है—

'पाकिस्तान कक्खां विच लैणा एह नारा जिन्ना दा'

—पाकिस्तान तिनकों के मूल्य में लेंगे यह जिन्हा साहब का नारा है।

दूसरी ओर हमें वह भी गीत मिलता है जिसमें हमें हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान सभी में भाई-चारे की भावना प्राप्त होती है। कौन कह सकता था कि इतने स्नेह से रहने-बसने वाला लोक, एक दिन एक दूसरे के प्रति इतना भयानक और वीभत्स हो जायेगा। विवाह; शादी में, जलसे-जलूसों में, खेल-तमाशों में, मेलों में हर स्थान पर सभी साथ सम्मिलित होते थे, वहीं के लोग एक दूसरे का हनन करने को तत्पर हो जाएंगे-देखिये उन दिनों की स्मृति दिलाने वाला यह गीत कितना सशक्त है—

'इक मुण्डे दा नाऊँ फतह मुहम्मद
दूजे दा नाऊँ सरदारू।
गामा, बरकत, सौणा, चन्दन सिंह
सब दे उत्तों दी वारू।
सारे मिल के मेले जान्दे
गिद्धे दा चाऊ उभारू।'

—एक लड़के का नाम फतह मुहम्मद और दूसरे का नाम सरदार है। गामा, बरकत, सावण सिंह, चन्दन सिंह सभी के ऊपर मैं बलिहारी हूँ। सभी मिलकर मेले में जाते हैं। सभी को 'गिद्धे' का चाव है।

इसके दूसरी ओर जब देश में हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य बढ़ा, देश में पाकिस्तान का निर्माण हुआ और स्थान-स्थान पर झगड़े होने लगे, देश में अराजकता छा गई तब पञ्जाब का कवि उन झगड़ों को देख कर चीख उठा—

'इह पिटदे मुड़ घिड़ लड़दे के—जादी आऊँदी है।'

—ये लोग स्वयं रोते हैं और स्वयं बार २ लड़ते हैं क्योंकि आज़ादी आ रही है।

देखिए यह कितना तीखा और पैना व्यंग है उस आज़ादी पर जो कि हमें अंग्रेज़ों से दान मिली। किसी भी प्रदेश का लोक इतना चेतनाशील हो तो वह प्रगति क्यों न करे ? अब कुछ ऐसे गीत भी देखिये जो कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के हैं। देश में अराजकता थी। राजाओं का राज्य समाप्त हो रहा था और ऐसे ही समय में पञ्जाब के शरणार्थियों को तम्बुओं में रहना पड़ा। रोटी का मिलना दूभर हो गया था—

'राजिआँ दा राज गिआ ते, जिन्दगी दा साज़ गिया
रोटी राशटर दी ते तम्बूआँ विच रहना पिआ।'

राजाओं का राज्य चला गया है—लोगों की जिन्दगी का साज़ चला गया है। रोटी राष्ट्र की खा रहे है—हमें तन्बूओं में रहना पड़ रहा है।

देश में चुनाव ने अपना ज़ोर पकड़ा। देश भर में चुनाव होने लगे। साम्प्रदायिक-शक्तियों ने पुनः सम्प्रदाय को बल प्रधान करना चाहा। जन-संघ का प्रचार धुआँधार हुआ पर विजय हुई कॉंग्रेस की—पञ्जाबी लोक में एक मीठी बोली चल पड़ी—

'पल्ला मार के बुझा गई दीवा,
ते वोट पा गई कॉंग्रेस नूँ।'

—वह महिला जब अपना मत दान करने आई तब अपने पल्लू से वह जनसंघ का दीपक तो बुझा गई और कॉंग्रेस के बक्से में वोट डाल गई।

इसी प्रकार के विभिन्न चेतनाशील लोक-गीत समय-समय पर प्रचलित होते हैं जो कि जन-जन में स्फूर्ति, उत्साह, शक्ति स्फुरण तथा प्रगति को व्यापक बनाते हैं।

——:o X o:——

पंजाबी लोक-साहित्य में इतिहास

लोक-साहित्य यद्यपि स्वयं ही एक जीवित इतिहास है; किन्तु जब हमें लोक-साहित्य में बद्ध कोई इतिहास मिल जाता है तब तो आश्चर्य ही हो उठता है कि क्या रचयिता को यह ज्ञात था कि काल-चक्र किन्हीं विशेष बातों को ग़र्क कर देगा उस समय उसकी ही एक ऐसी रचना रहेगी जो लोगों को तत्कालीन इतिहास का दर्शन करायेगी।

लोक-साहित्य के विभिन्न अंगों में हमें इतिहास मिलता है। कहीं चिट्ठे, कहीं जंगनामे, कहीं वारें, कहीं बोलियाँ, कहीं गीत और कहीं 'अखाण' (आख्यान) हमें इतिहास से या ऐतिहासिक घटनाओं से परिचित कराते है। कहीं ऐसा साहित्य मिलता है जो प्रदेशों की विशेषता, भूगोलिक सीमा, सामाजिक रूढ़ियों तथा जातीय विशेषताओं को अंकित करता है।

लोक-साहित्य की व्याख्या करते हुए हम कह चुके हैं कि लोक-साहित्य वर्तमान का सम्बन्ध पुरातन से स्थापित करता है एवम् अतीत के इस पौधे में सदैव ही नई फ़सल मिलती रहती है। यह पौधा पानी या खाद से नहीं सींचा जाता वरन् स्मृति इसे पानी सींचती है तथा लोक-भाषा एवम् बोली इसे खाद देकर अधिक उन्नत, फलदायक एवम् उपजाऊ बनाती है।

अभी उस दिन की बात है जब मैं लोक-साहित्य संग्रहित करने के लिए बगल में झोला लटकाये उसमें कैमरा डाले 'माजरी' पहुँचा और अपनी उस अपरिचित वृद्धा माता के पास गया जो अपने जीवन का ११३ वाँ वर्ष व्यतीत

कर रही थी, चाहे वह अब उठ नहीं सकती–लकवा जो उसे मार गया था। लेटी-लेटी वह मुझे रोज़ गीत सुनाती, बोलियां डालती, अखाण सुना -सुनाकर इतना हँसाती कि मैं सुध-बुध खो बैठता और सोचने लगता कि इन लोक--कवियों में भी सूर, तुलसी या कालीदास, भवभूति के समान प्रतिभा क्यों कर है, क्यों ये लोक-कवि कहीं-कहीं उन से भी बढ़े चढ़े हैं ? क्यों नहीं वे प्रसिद्धी के पीछे भागे……अस्तु ! और उस दिन उस माँजी ने कहा––

'मेरी उमर उस समय ३०–३२ वर्ष की रही होगी जब की बात है। उन दिनों 'लोप्पों' नामक गाँव में मेला लगा करता था। सभी लोग मेले में जाते। उस साल 'हेड्डों' के सुनारों की पुत्री 'परतापी' भी मेला देखने आई। 'रपालों' के जागीरदार का पुत्र कृपाल सिंह भी मेले में आया था। अचानक ही दोनों की आँखें चार हो गईं। मेला तो उठ गया किन्तु वे प्रायः एक दूसरे से मिलते रहे। वे प्रायः 'गोसलाँ' में मिला करते। गोपाल सिंह की माँ 'अतरी' को यह बर्दाश्त नहीं हुआ कि उसका पुत्र किसी ऐसी स्त्री से मिले जो उनकी जाति की न हो। उसने गूजरों से कह कर परतापी को मरवा दिया जिस गूज्जर ने परतापी को मारा था उसका नाम 'दलेल' था। उन्हीं दिनों है गोरा साब 'बटन' यहाँ का अफ़सर था। वारब्रिटन पञ्जाब के सी० आई० डी० विभाग में सुप्रिण्टेण्डेण्ट पुलिस था। (कालान्तर में यह D. I. G. भी हुआ; पटियाला में भी रहा।) उसके पास कृपाल सिंह ने अर्जी दी कि परतापी को मरवा दिया गया है। बटन साहब ने खोज की किन्तु कोई भी सूत्र न मिला। [पंजाब में प्रायः रोज़ ही संध्या को मुँह छिपे के समय स्त्रियाँ गाँव के बाहर शौच आदि से निवृत्त होने जाती हैं। वे टोली बनाकर जाती हैं और बाहर समीप ही बैठ कर बातें भी करती हैं तथा अपने आवश्यक कार्य भी।] एक दिन बटन साहब ने स्त्रियों का वेश बना लिया। और वे गांव के बाहर उन्हीं में बैठ गये। स्त्रियों के पेट में बात नहीं रहती। स्त्रियाँ वहाँ परतापी की चर्चा करने लग गईं—वहीं बटन साहब को पता चला कि अमुक टिब्बे (टीले) के नीचे परतापी को गाड़ा गया है। बटन साहब ने कचहरी लगाई और अतरी को काला पानी तथा दिलेल गूजर को

फाँसी की सज़ा दी। गीत इस प्रकार है*—

"हेण्डों दी सुनियारी गुज्जराँ ने मार दित्ती
तम्बू बटन साहब ने लाये विच रपालों दे
हड्डु परतापी दे बटन साहब कोल जान्दे
सारी टिब्बी पट्ट सुट्टी पर ना लब्भी परतापी
हड्डु परतापी दे बटन साहब ने टोल्ले
हड्डु परतापी दे ··························

—हेंडों की सुनार-कन्या को गूजरों ने मार दिया
—'बटन' (वार ब्रिटन) ने 'रसपालों' में तम्बू गाड़ दिये
—परतापी की हड्डियाँ बटन साहब के पास जारही हैं
—सारी टिब्बी (टीला) खोद डाला, पर परतापी का चिन्ह भी न मिला ।
—पर, परतापी की हड्डियाँ बटन साहब ने ढूंढ निकालीं,

मैंने देखा माँ जी की आँखें भरी हुई थीं; मानो उनकी आँखों के सामने ये सभी घटनायें चल चित्र की भाँति गुजर रही हों। और उन्हों ने कहा, लो एक और सुनो—

जगराओं के समीप एक भरम कोट नामक गांव है जहां के 'छुरियों' की लड़की बिसनो थी। उसका पति बुग्गा मल न्हौरिया था। सिखों की तथा गोरों की लड़ाई चल रही थी। बुग्गामल सिखों की ओर से लड़ने वाला था। बिसनो का मुकलावा (गौना) आया ही था कि बुग्गेमल को युद्ध के मैदान में जाने का हुक्म सुना दिया गया। बिसनो की लाज का पहरा टूट गया, वह एक शूर वीर सिपाही की पत्नी थी। खुशी-खुशी उसने पति को तय्यार किया। बुग्गामल पगड़ी बाँध रहा था और बिसनो शीशा हाथ में लेकर उसे दिखा रही थी। युद्ध हुआ। बुग्गामल युद्ध में काम आया। बिसनो युद्ध-भूमि में जा पहुँची। बुग्गामल की लाश उठाने। कठिनाई से उसे लाश दी गई। वह

---

* उक्त घटना का समर्थन लाला शिवचन्द पुरी रिटायर्ड सुप्रिटेण्डेण्ट पुलिस पटियाला ने किया है एवम् उसका संकेत अपनी पुस्तक 'शाने पुलिस' (उर्दू) में भी किया है।

लाश देखकर रो उठी—तड़प उठी और पति के साथ ही सती हो गई। धन्य है वह बिसनो जिसने विवाहित जीवन का सुख भोगे बिना ही स्वयं को पति-परमेश्वर के साथ बलिदान कर दिया। ऐसी है यह पुण्यमयी भारत-भूमि ! लो, गीत सुनो—

"टप्प-टप्प पैण गलोट्टे, कत्तनी बिसनो दी
गड्डु के महल विच कीलियाँ बुग्गामल छड्डु चलिया
बिसनो दे हत्थ विच शीशा, बुग्गामल पग्ग बन्हदा
पराँ होके रोवे बिसनो,
असाँ लोथ बुग्गे दी चुक्कनी
केस मक्खनाँ दे पाले, मुट्ठियाँ नाल पुट्ट सुट्ट दे
केस लमकदे जान्दे, बुग्गा मल न्हौरिये दे।"

—बिसनो की सूत कातने वाली टोकरी में सूत के गलोट्टे उछल-कूद कर रहे हैं।

—महिलों में मुझे कील कर, बुग्गामल अब छोड़ कर जा रहा है।

—बुग्गा मल पगड़ी बांध रहा, बिसनो उसे शीशा हाथ में सामने रख कर दिखा रही है।

—बिसनो उधर दूर हो कर रो रही है

—हमें बुग्गा मल की लाश उठानी है

—हा, मक्खनों के द्वारा पाले गये केशों को निर्दयी लोगों ने मुट्ठियों में भर-भर कर उखाड़ दिया है,

—बुग्गा मल न्हौरिये के केश लटकते जा रहे हैं।

अब कुछ 'अखाण' (आख्यान) देखिये जिनका प्रयोग दिन-रात पञ्जाब के लोगों में होता है एवम् जो प्रादेशिक महत्व को स्पष्ट करते हैं—

'कणक मालवी, अम्ब पुआधी
रत्ता गन्ना बड़ा सुआदी।',

—मालवे का गेहूँ, 'पुआध' का आम

—तथा लाल रंग का गन्ना बड़ा स्वादिष्ट होता है

"ढाहा वे परवाहा
पुआध खक्कर खाद"

अर्थात्—'ढाहे' के रहने वाले निवासी बे परवाह होते हैं। ('ढाहा' का प्रदेश प्रधानतः खन्ना, समराला तथा माछूवाड़े को कहा जाता है।)

पुआधी के लोगों को खाद की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि वहाँ की भूमि उपजाऊ है।

'ढले' तथा 'बौदियाल' के लोगों के पास ज़मीन थोड़ी होती है, वह भी नदी के समीप होती है इस कारण वे उसमें भली-भाँति खेती नहीं कर सकते। इस कारण प्रायः गाजर या तरबूज ही बोते हैं जिनसे आय बहुत कम होती है—

"ढला पट्टिया गाजराँ
बौदियाल अधवाणे"

—'ढला' गाजरों के कारण बरबाद है,

—तथा 'बौदियाल' तरबूजों के कारण।

यही नहीं, एक और लोक गीत भी मिलता है जिसमें पिता को कहा जाता है कि ओ मेरे पिता जी तुम मेरा विवाह 'ढले' में न करना क्योंकि वहां के कष्ट मुझ से न सहे जायेंगे। गीत देखिये—

ना देवीं बाबल ढले
सिर पीड़ कलेजा हले
बाहाँ रहियां चक्की
जंघां रहियाँ ढक्की
नैण वँजाये रो—रो
सिर खुत्था पाणी ढो–ढो

—पिता जी मेरा 'ढले' में विवाह न करना

—सिर दुखने से मेरा कलेजा हिल उठता है।

—(वह गांव क्योंकि ऊंचाई पर है, पानी लाने के लिये पर्याप्त दूर जाना पड़ता है) मेरी बाहें मटके उठाते-उठाते थक जाती हैं।

—जाँघें अर्थात् पैर भी चढ़ते-उतरते थक जाते हैं।

—पानी ढो–ढो कर सिर भी हार मान जाता है।

एक और 'अखाण' देखिये जिसमें विभिन्न प्रदेशों की विशेषता का उल्लेख है—उसका उल्लेख अन्यत्र भी कर चुके हैं इस कारण यहाँ विस्तार अनावश्यक है†—

इसी पुस्तक का पृष्ठ ७५

"यद्दड़ रावी, बोंडी दुआबा
बो मारया मालवा ते राठ माझा"

कुछ जातीय 'अखाण' भी देखिये; एक समय जब गुजराँ वाला के भू-भागों में इधर-उधर से डाके इत्यादि पड़ा करते थे। अरोड़ा जाति के लोग पर्याप्त धनीमानी थे। वे लोग ज्यों ही सुनते कि गाँव में डाका पड़ने वाला है, त्यों ही भाग खड़े होते थे और आनन-फ़ानन में लाहौर पहुँच जाते थे। उन्हें इतनी दूरी भी पता न लगा करती थी—तभी से अखाण बन प्रचलित हो गया।

"लक्क बद्धा अरोड़ियाँ, मुन्ना कोह लाहौर"

—अरोड़ा यदि कमर कस ले तो लाहौर भी कोसभर दूरी से कम ही हो जाता है।

कुछ जाट लोगों के 'अखाण' देखिये। कहा जाता है कि कौआ, 'कलाल' तथा 'कमोअ' या कुनबी जाति के लोग अपना परिवार अच्छी तरह लालन-पालन करलेते हैं; दूसरी ओर जाट, भट्टी मुसलमान तथा राजपूत, एवम् 'संसार' नामक मछली (जो अपने ही अण्डे खा जाती है) अपने परिवार को बरबाद करते हैं—

"कौं कलाल कमोअ कबील्ला पालदे
जट्ट, भट्ट, संसार कबीला गालदे।"

—कौआ, कलाल तथा कमोअ कबीला पालते हैं।
—जाट, भट्ट तथा संसार कबीले को बरबाद कर देते हैं।

जाटों के सम्बन्ध में और भी कई अखाण प्रसिद्ध हैं। देखिये—

"जट्ट विगाड़े मुरशद नाल
जाँ बोले जाँ कड्ढे गाल"

---

† देखिये—"पञ्जाबी एवम् उसकी उप-भाषाओं की उत्पत्ति तथा विकास"

—जाट यदि मुरशद से बिगाड़ता है
—तब या तो वह बोलता है या गालियाँ देता है।

"जट्ट जिहा मित्तर नहीं जे फिरे ना
टिण्ड जिहा भाण्डा नहीं जे रिढ़े ना"

—जाट के समान कोई मित्र नहीं हो सकता यदि वह वचन का कच्चा न हो।

—टिण्ड (बे पैंदी का बरतन) जैसा कोई बरतन भी नहीं है यदि वह ढुल--मुल न हो।

जाट स्त्रियों के लिये भी कहा जाता है कि वह जीवन पर्यन्त काम करने में निपुण होती है—

"रन्न जट्टी, होर सब खट्टी, जाँ खान दी चट्टी"

—'जट्टी' स्त्री ही अच्छी होती है, शेष सभी निकम्मी होती हैं या खाने की चटोरी होती हैं।

जाट भले ही अपना बड़ा नुकसान कर लेगा किन्तु छोटा नुक्सान सहन नहीं करेगा, कहा जाता है—

"जट्ट भेल्ली देवे गन्ना ना देवे।"

—जाट गुड़ की भेली तो भेंट में दे देगा किन्तु वह गन्ना कभी न देगा।

जाट लोग प्रायः लड़ाई--झगड़ा करने के आदी होते हैं। उन से बिना लड़ाई--झगड़ा किये रहा नहीं जाता। इस कारण 'अखाण' प्रचलित हैं—

"जट्ट वधे ताँ राह बद्धे
कराड़ वधे ताँ जट्ट बद्धे"

—यदि जाट लोग बढ़ जायें तो मार्ग बन्द हो जाता है।

—यदि लड़ाई झगड़ा बढ़ जाये तो समझ लेना चाहिये कि जाट लोग बढ़ गये हैं।

सफेद कपड़ा न मालूम कब मैला हो जाये, मुर्गा खाने वाला मुर्गों का रखवाला नहीं हो सकता क्योंकि न मालूम कब वह मुर्गा खा जाये, इसी प्रकार जाट का भी कोई ठिकाना नहीं होता कि वह कब लड़ने लगे—

"चिट्टा कपड़ा, कुक्कण खाणा
किसे जट्ट दा नहीं ठिकाणा"

—सफेद कपड़े तथा मुर्गे खाने वाले का भरोसा नहीं ।

—ना ही किसी जाट का भरोसा होता है, कि वह कब तक लड़ाई मोल नहीं लेगा ।

जाट लोग खेती बाड़ी में चतुर होते हैं, उन जैसा कृषक कठिनाई से ही मिलता है, इसी प्रकार पञ्जाब में खानाबदोशों के समान घूमने वाले नट लोग अपने खेल की करामातें भी खूब दिखाते हैं इसी कारण कहा जाता है—

"खेती जट्ट दी, बाजी नट्ट दी"

—खेती जाट की, बाज़ी (खेल) नट का ही अच्छा होता है ।

इसी प्रकार सिख लोग भी बड़े लड़ाकू होते हैं— न मालूम कब वे लड़ने लगें—कहा जाता है—

"सिक्ख सूर सण्डे दा,
वसाह न खाइए बद्धे दा ।"

—सिख, सुअर तथा साण्ड के-

—बंधे होने का भी भरोसा नहीं होना चाहिए न मालूम कब छूट जायें ।

खत्री या क्षत्रीय जाति के लोग पहिले जैसे शूर-वीर नहीं रहे—आजका उनका प्रधानतयः व्यापार ही पेशा है—इस कारण अन्य जाति के लोग उन्हें 'झल्ला' अर्थात्—पागल कहते हैं क्यों कि उन्हों ने अपना कर्म छोड़ दिया—

"अठ्ठ चौका बत्तरी, इक झल्ला जिहा खत्तरी"

गूजर लोग भी बहुत उत्पाती माने जाते हैं—इसी कारण कहा जाता है—

"जित्थे गुज्जर देखिये, उत्थे मुट्ठिये मार"

—जहाँ भी गूजर दिखे उसे वहीं मार देना चाहिए ।

गूजरों के समान मुसलमानों में एक 'अराईं' जाति के लोग होते हैं वे भी बड़े ज़ालिम होते हैं एवम् वचन के कच्चे भी—उनके लिये कहा जाता है—

"जे बन्दा हैं माई दा,
विसाह ना खाईं अराईं दा।"

—यदि तू अपनी माँ का बेटा है
—तो अराई का विश्वास न करना।

बनिये लोग प्राय: इतवार को अपनी दुकानों को लीपते हैं। इसी कारण यह आखाण बन गया है—

"ऐतवार ताँ जाणिये, हट्टाँ लिप्पण बाणिये"

—इतवार तब मानना चाहिए यदि बनिये लोग दुकाने लीप रहे हों।

इसी प्रकार और भी अनेक कहावतें प्राप्त होती है, किन्तु स्थानाभाव के कारण एवम् विस्तार भय से हम उनका कहीं और उल्लेख करेंगे। नगरों और ग्राम्यों के भेद भी इसी प्रकार बताये गये हैं जैसे—

बसिये शहर भवाँ होवे कहर
खाइये कणक भवाँ होवे ज़हर"

—चाहे नगर में अकाल पड़ा हो किन्तु शहर में ही रहना चाहिये
—चाहे जहर ही मिला हो किन्तु गेहूं ही खाना चाहिये।

इसी प्रकार एक और अखाण भी देखिये

"वसिये शहर भवाँ होवे झुग्गी
खाइये कणक भवाँ होवे भुग्गी"

—हमें शहर में ही रहना चाहिये चाहे झोंपड़ा ही हो
—सदैव ही गेहूँ खाना चाहिये, चाहे उसकी भुग्गी ही मिले

शहर और गाँव के अंतर दर्शाने वाले और भी कई 'अखाण' मिलते हैं। एक अखाण और देखिये जिस में गांव की लड़कियों के भोले पन की तुलना नगर की चिड़ियों के साथ की गई है—

"शहर दी चिड़ी ते पिण्ड दी कुड़ी"

—नगर की चिड़िया तथा गाँब की सुन्दरी एक समान ही भोली होती हैं।

हिन्दुस्तानी लोग अधितर बोलते हैं तथा पञ्जाबी लोग अधिकतर मार पीट करते देखे जाते हैं इस कारण कहा जाता है—

"पञ्जाबी दा हत्थ हिन्दुस्तानी दी ज़ुबान
हमेशा चल्दी है"

—पञ्जाबी के हाथ तथा हिन्दुस्तानी की ज़ुबान
—सदैव ही चलती रहती है।

इसी प्रकार पञ्जाब के लोगों को सदैव ही लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी हैं—युद्ध संग्राम करने पड़े हैं—

"पञ्जाब दे जम्मे नूँ नित्त मुहिम्मा"

—पञ्जाब में पैदा हुए पञ्जाबियों का प्रत्येक दिन एक पहेली के समान होता है।

यही नहीं कुछ ऐतिहासिक स्थान भी अप्रत्याशित रूप से प्रसिद्ध हो गये हैं जिनका उपयोग लोक साहित्य में होता है—जैसे—

"जुत्ती नारोवाल दी" (नारोवाल की जूती)
"नूर महल दी सराँअ" (नूर महल की सराय)
"नाडू खाँ दा साला" (नाडू खाँ का साला)
"पटियाले शाही पगड़ी" (पटियाला नुमाँ पगड़ी)
"सिक्खा शाही" (रणजीत सिंह का शासन)
"धक्के शाही" (पोल भरा राज्य)
"नादिर शाही" (ज़ुल्मी शासन)

नादिर शाह के लिये तो एक और भी अखाण मिलता है जिसमें उसकी आज्ञा का महत्व बताया गया है—

"हुकुम नादरी, तकदीर कादरी"

—नादिर शाह की आज्ञा तथा कादरी तकदीर कभी नहीं टल सकते।

अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण का मर्मस्पर्शी वर्णन देखिये—

"खाद्दा पीत्ता लाहे दा,
रहिंदा अहमद शाहे दा"

—अहमद शाह से लड़ने के पूर्व जो खाना पीना है वह ही रहने वाला है, क्योंकि अब शक्तिशाली एवम् ज़ालिम है—लौटकर आने न देगा।

रेलों के आने का उल्लेख भी एक शताब्दी पूर्व की एक बोली में देखिए—

"रेलाँ वालया रेलाँ विच देगचे"

अंग्रेज़ों के आने पर भारतीय जनता को कुछ सुविधा मिली क्योंकि उन्होंने सड़कें बनवाईं—इसी कारण लोक-गीतों में इनका उल्लेख भी मिला—

"राजे दे राज विच टिब्बे होये
फिरंगियाँ दे राज विच सड़क बणी"

—राजा के राज्य में तो सड़कें खराब हो गई थीं
—किन्तु फिरंगियों के राज्य में सड़कें बन गईं।

अंग्रेज़ों ने युद्ध के लिये पञ्जाब के जवानों को एकत्रित कर फ़ौज में भरती किया—शिमला उनकी राजधानी थी इसी कारण उसका उल्लेख भी गीतों में है। रेल में बैठाकर पत्नी के पति को अंग्रेज ले गया है। कोई पत्र नहीं मिला पत्नी को न उसने घर पर पैसे ही भेजे वह अंग्रेज़ को फिटकार मारती है—

"रेल्लाँ वालया रेल्लाँ विच कान्नियाँ
फिट्ट तेरे शिमले नूँ घर भुक्खी जनानीयाँ"

—रेल वाले तेरी रेल में तिनके हैं
—तेरे शिमले को आग लगे जब घर में सिपाही की पत्नी भूखी है।

बोलियों में होता रहने वाला ऐतिहासिक अन्तर भी लोक-साहित्य से अछूता न रह सका और एक अखाण में वह सजीव होकर अन्तर स्पष्ट दर्शाता है—

गल्ल—कत्थ गल्ल पञ्जाबी कत्थ कश्मीरी
काला—स्याह काला पञ्जाबी स्याह फ़ारसी

—गल्ल पञ्जाबी शब्द है तथा स्याह फ़ारसी
—काला पञ्जाबी शब्द है तथा स्याह फ़ारसी शब्द है।

विगत १६१४ के महा युद्ध के समय एक गीत गाया गया। उस समय सैनिकों को युद्ध-रत होने के कारण छुट्टियाँ नहीं मिलती थीं। अतएव उनकी पत्नियाँ अंग्रेज़ों को श्राप दे रही हैं—

"साड्डा सत्थर फिरंगियां नूँ मारे
ना देंन्दा छुट्टियाँ ते ना तलबां तारे
दुश्मनां, तूँ वोहटियां वालयां नूँ क्यों रख छड्डुया है।
वे नौकर रक्खलै छड़े ते कुँवारे"

—हमारी 'हाय' फिरंगियों को मार डालेगी

—ना हमारे पतियों को छुट्टी देता है और ना ही उन्हें बरखास्त करता है।

—ओ दुश्मन, तूने पत्नी वालें विवाहित सैनिक क्यों रख लिये हैं।

—अरे ओ ! तू छड़े या कुँआरे लड़के भरती करले ।







शीघ्र ही प्रकाशित हो रही है

नाथ तथा पंजाबी साहित्य

इसी लेखक द्वारा लिखित एक खोजपूर्ण एवम्
गवेषणापूर्ण-ग्रन्थ

पुस्तक के ११ अध्याय स्वतन्त्र रूप से भी स्वयं में एक २ स्वतन्त्र पुस्तक से कम नहीं हैं। पंजाबी पर नाथों का पर्याप्त प्रभाव है, पर अभी तक नाथों के सम्बन्ध में किसी भी पंजाबी विद्वान् ने अपनी कलम नहीं उठाई। श्री० धीर ने नाथों की सांस्कृतिक परम्परा का पञ्जाबी पर जो प्रभाव पड़ा है उसका समन्वय विद्वत्तापूर्ण ढंग से किया है। विद्वानों के मन-मन्थन के लिए यह एक श्रेष्ठ ग्रन्थ है।

मूल्य ५) रु० मात्र

लेखक की अन्य कला कृतियाँ

वेनिस का सौदागर (शेक्सपियर का काव्यमय) छायानुवाद-द्वितीय संस्करण १९५५ — मूल्य २)

रंगीला चक्कर (उपन्यास) — मूल्य १।)

जवानी की आग (उपन्यास) — मूल्य १।)

साहित्य मंथन (आलोचना) — प्रेस में

मेरी आत्म स्वीकृति (लेखक के Confessions) — प्रेस में

सोहाग रात (कविताये़ं) — मूल्य १।)

मिलने का पता:—

मुख्य वितरक
राज कमल प्रकाशन लि०
दिल्ली—बम्बई

प्रकाशक:
क्रान्ति प्रकाशन,
(पंजाब लोक-साहित्य प्रकाशन से सम्बद्ध)
जी० टी० रोड, खन्ना
(पूर्वी पञ्जाब)

कृतिकार

जन्म: लश्कर-ग्वालियर सन् १९२५ ई०

शिक्षा: लश्कर, उज्जैन माधव कॉलेज तथा इन्दौर क्रिश्चन कॉलेज से द्वितीय वर्ष (कला), जे० जे० स्कूल ऑफ आर्ट्स बम्बई की प्राथमिक परीक्षा उत्तीर्ण।

कार्य: स्कूल और कालेज के प्रारम्भिक जीवन में अनेक कविता, कहानी तथा लेखादि लिखे। सम्पादन क्षेत्र में विशेष रुचि। स्कूल के आरम्भिक जीवन में हस्तलिखित पत्रों का प्रकाशन जो अपने समय की प्रमुख एवम् रुचिकर कलाकृतियां कही जाती रहीं। १९३९ से ही तुकबन्दी। १९४२-४४ 'नवयुग' (वर्तमान 'धर्मयुग') साप्ताहिक दिल्ली का सम्पादन किया। (४४-४६) 'नीरव' मासिक, साप्ताहिक का सम्पादन। (४६-४७) 'डेली न्यूज़' (मध्य भारत का प्रथम दैनिक) का सम्पादन। १३ मई ४६ को प्रेस तथा पत्र ज़ब्त हुआ। ५२-५३ में 'रंगीली कहानियाँ' लुधियाना का सम्पादन। ५३ में 'विश्व-विज्ञान' लुधियाना का सम्पादन। इसी वर्ष उज्जैन मालवा से 'महामालव' नामक प्रथम मालवी साप्ताहिक का सम्पादन-सञ्चालन किया। १९५४ से 'मस्ती' मासिक खन्ना--लुधियाना का सम्पादन कर रहे हैं जो काम तथा मनोविज्ञान सम्बन्धी प्रथम मासिक है। शीघ्र ही 'क्रान्ति' साप्ताहिक (Blitz का समकक्षी) प्रकाशित करने जा रहे हैं। जीवन में हर छोटे बड़े से सीखा सर्वश्री डॉ० शिव-मङ्गल सिंह 'सुमन', सूर्यनारायण व्यास, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', प्रभ कर माचवे तथा श्याम परमार आदि के साथ निकटतम सम्पर्क तथा कहीं कभी २ दिशा निर्देश [illegible]। सदैव से ही घुमक्कड़ जीवन। रोमांटिक जीवन का अत्यधिक प्रभाव। जीवन में हर पाप किया। इसी पाप में से एक किरण फूटी जिसने लोक-साहित्य संकलन की ओर प्रवृत्त किया। अभी तक लगभग तीन हज़ार गीत एवम् चार पाँच सौ लोक-कथादि का संग्रह किया। लोक-नृत्य एवम् लोक-कला से व्यक्तिगत अपनत्व। ४२ के आन्दोलन में कालेज छोड़ा, जिससे पुनः सम्पर्क नहीं साधा। दो बार जेल यात्रा। प्रकाशित रचनायें:—वेनिस का सौदागर (शेक्सपियर का काव्यमय छायानुवाद), १९५१; द्वितीय संस्करण १९५५; लीला चक्र (उपन्यास-१९५२), साहित्य मंथन (आलोचना-१९५२), मैं धरती पञ्जाब की (हिन्दी तथा पञ्जाबी दोनों भाषाओं में, १९५५), नाथ तथा पञ्जाबी साहित्य, (हिन्दी-पञ्जाबी, प्रेस में) मेरी आत्म-स्वीकृति-लेखक के CONFESSIONS (प्रेस में) जवानी की आग (उपन्यास प्रेस में), सोहागरात (कवितायें-प्रेस में) [illegible] मध्य भारत, मालव और विशेषतयः उज्जैन से मानसिक सम्बन्ध। इन दिनों माल[illegible]सी हो खन्ना, पूर्वी पञ्जाब में निवास कर रहे हैं।

न[illegible] से प्रका[illegible]